गंगाजल

केशवप्रसाद मिश्र

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : ३८.००
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : १९८१ / सर्वाधिकार : लेखकाधीन / आवरण : चेतन मानद / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित।

GANGAJAL (Novel) by Keshavprasad Mishra
Price : Rs. 38.00

उस सयानी लड़की को
जिसकी आम की फांक सी आँखों मे बेहद नमी थी
और हर सयाने लड़के को मुस्कराती हुई देखने की
जिसकी आदत थी
जो कभी-कभी मेरे एलेनगंज लाज के सामने से
वैसे ही गुजरती थी
वही लड़की, जो कालांतर से
सहसा, एक दिन घर से ऊब कर कही चली गयी थी
कौन जाने, अब, वह कहां और कैसे हो ?
उसी लड़की की याद को
जो इस उपन्यास के सृजनकाल मे
मेरे साथ आदि से अन्त तक रही।

और
अपनी मा को
जिसने मुझे बेहद कोमल मन दिया
और जो कहा करती थी कि धीरज कभी मत छोड़ना
और दूसरे का मन कभी मत दुखाना,
चाहे खुद, दुख के अथाह सागर मे
डूब जाना पड़े।

लेखकीय

कथा के 'पीरू बाबू', उनकी पत्नी और बेटी पार्वती तथा 'बीरेन बाबू' को मैं अरसे से जानता था, किंतु इस कथा के नायक चन्द्रमोहन से भेंट हुई, संपर्क बढ़ा और उसने जब इन लोगों से चर्चा की तो लगा कि यह कैसा संयोग है।

और जब यह कथा मेरे मानस में उभरी तो भीतर से थोड़ी खुशी भी हुई कि उन लोगों के बारे में भी लिखने को मिलेगा, जिन लोगों के साथ जिंदगी के महत्त्वपूर्ण तीस वर्ष बीते हैं। किंतु एक धर्मसंकट भी सामने आया कि पानी में पुरइन के पत्ते की तरह अपने को कैसे अलग कर पाऊंगा ? प्रयास मैंने किया और उसके लिए काफी कीमत भी चुकायी। तब भी मुझसे चूक हुई ही होगी, यह मानकर चलता हूं, क्योंकि इस विशाल जन-समूह के पूरे परिवेश को एक छोटी-सी कथा में समेट पाना किसी भी कथाकार के लिए संभव नहीं है। इसमें हर तरह के लोग हैं, लेकिन एक धरातल पर सभी समान हैं, उनका सुख-दु:ख लगभग एक है। हां, देश-विदेश को देखने-परखने के उनके दृष्टिकोण भिन्न हैं, क्योंकि वे स्वतंत्र देश के नागरिक हैं, समझदार और शिक्षित हैं। क्या हुआ—अगर वे सड़क-छाप राजनीति की चर्चाओं तक सीमित हैं। इसीलिए मेरा निवेदन है कि मैंने व्यक्ति को नहीं, उनके सामूहिक परिवेश-विशेष को देखना-समझना चाहा है कि वह बात हजार-हजार पाठकों तक पहुंच सके। कथा कहते हुए, जाने-अनजाने, किसी का व्यक्ति छू गया हो तो मैं गुनहगार हूं और क्षमाप्रार्थी भी, क्योंकि मेरा भी दूसरा वह, उन्हीं के बीच का तो एक है। उनके बगैर, न मैं होता, और न यह उपन्यास—'गंगाजल', जो इस समय आपके हाथ में है, जिसे आप थोड़ी-सी सहानुभूति से पढ़ लेंगे तो मेरा श्रम सार्थक हो जाएगा।

—केशवप्रसाद मिश्र

'उत्तर मेघ'
१२८, बाघम्बरी गृहस्थान योजना
इलाहाबाद-६

गंगाजल

कार्यालय महालेखाकार उत्तर प्रदेश का। महर्षि दयानंद और सरोजनी नायडू मार्ग के चौराहे से लगा हुआ लगभग छ: एकड़ों में फैला, ऊंची-ऊंची दो-दो, चार-चार मंजिला की भव्य इमारतों वाला कार्यालय। इसमें की पत्थरों वाली इमारत को अंग्रेजों ने बनवाया था, जिसे रिक्शेवाले अब भी पुराना हाईकोर्ट कहते है, बाकी, दो मंजिला और लिफ्ट लगी चार मंजिला इमारतें तो बाद की है। अहाते के भीतर पत्थरो वाली इमारत को आगे से छूने वाली सड़क अर्धचंद्राकार है। इसके एक किनारे पर हैं—घने छतनार छायादार पेड़, और पेडों के नीचे है बारह मासी खिलने वाले लाल अड़हुल के फूल, सीमेंट के लाल, पीले, हरे, नीले फूलों वाले बड़े-बड़े गमले, और उन पेडों से आगे है हरी-हरी दूबोंवाला बडा सा खूबसूरत लान, जिसमे है तीन ओर फूल भरी क्यारियों में घिरे हुए *बैडमिंटन, टेनिसकोर्ट और वालीबाल के मैदान*। *पूर्वी अहाते के किनारे*, बाहरी सड़क की ओर है रंगबिरंगी पत्तियों वाली झाडियां, आम, खजूर, ताड़ के पेड और बेगन वेलिया की खिली हुई हवा मे झूलने वाली टहनियां। दस बजे दिन से साढ़े पांच बजे शाम तक कर्मचारियों की चहल-पहल, साइकिल, स्कूटर और कारों से भरा हुआ, शहद की मक्खियों-सा भनभनाता, लगभग चार हजार केंद्रीय सरकार के अधिकतर बी० ए०, एम० ए० पास कर्मचारियों का यह कार्यालय, अपने में एक दुनिया समेटे हुए है, एकदम जीवंत।

इसी कार्यालय में नौकरी करने आया था लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० और 'ला' की परीक्षाएं पास करके गोरा, दुबला-पतला, भूरी-भूरी बादामी-सी आंखों वाला, क्लीन शेव्ड एक खूबसूरत नौजवान, चन्द्रमोहन सक्सेना दाहिने हाथ की उंगली में मिजराब पहने हुए, सितार बजाने का शौकीन।

पहली पोस्टिंग हुई जी० डी० डाक सेक्शन में। पोस्टिंग आर्डर लेकर जब सेक्शन में साढ़े दस बजे पहुंचा तो सेक्शन एकदम खाली था। केवल सेक्शन अफसर, लगभग पचपन सालों के पन्नालाल बनर्जी, अपनी सीट पर बैठे हुए थे। नमस्कार करके चन्द्रमोहन ने पोस्टिंग आर्डर उनके आगे रख दिया। पढ़ के पन्नालाल ने चन्द्रमोहन की ओर देखा, "बैठिए, आप मि० चन्द्रमोहन हैं ?"

"जी हां।"

"रहने वाले कहां के हैं ?"

"हरदोई का।"

"कितने साल का सर्विस है।"

"ये मेरी पहली पोस्टिंग है।"

"ओह, वेरी गुड, बहुत अच्छा सेक्शन मिला आपको। इसे जी० डी० कहते हैं, माने जेनरल डाक, इस दफ्तर का डाकघर। इसी सेक्शन में बाहर से दफ्तर की सारी सरकारी डाक आती है, और यहीं से बांटा जाती है। सुबह डाक आई, शाम तक बंट गई, एकदम पोस्ट आफिस की तरह। यहां रहने पर आपको दफ्तर भर का काम मालूम हो जाएगा कि किस सेक्शन में कौन सा काम होता है। लेकिन एक बात है," पन्नालाल बनर्जी जैसे चेतावनी देते हुए बोले, "सेक्शन वालों के बह-कावे में मत आइएगा, और मन लगाकर काम करिएगा तो मैं आपके 'सी० आर०' में फर्स्ट क्लास का इंट्री दूंगा।"

"सी० आर० और इंट्री माने ?

"अरे सी० आर० और इंट्री माने आप नहीं समझते ? खैर, समझ जाइएगा, अभी तो नौकरी शुरू किया है, सी० आर० माने 'कैरेक्टर रोल', साल भर के आपके काम का लेखा-जोखा बताने वाला कागज,

सब समझ जाइएगा, अपने आप।

तभी लगभग साठ साल के एक मोटे नाटे कद के एकदम पके बालों वाले, कमीज-धोती पहने ओपन' की तरह लगने वाले दूसरे बगाली सज्जन 'मोटू दा' पसीने से तर, हांफते हुए दाखिल हुए। सेक्शन अफसर की मेज पर रखे हाजिरी रजिस्टर में दस्तखत किया और धम्म से अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गए तो पन्नालाल फिर बोले, "यह दफ्तर विशाल है मि० चंद्रमोहन, इसमे तरक्की का बहुत स्कोप है। इम्तहान पास करते जाइए, तरक्की लेते जाइए, किसी की मेहरबानी का कोई दरकार नहीं। पहले इस सेक्शन मे जमकर काम करिए, फिर साल भर के बाद 'कनफर्मेशन टेस्ट' पास करिए, वेतन बढ जाएगा। तीन साल नौकरी करने के बाद सब-आर्डिनेट एकाउंट्स सर्विस का इम्तहान पास करिए, सेक्शन अफसर हो जाइए, फिर पांच-सात सालो मे एकाउंट्स अफसर की पोस्ट रखी है।

"टू गार्लेंड यू—माने आपको हार पहनाने के लिए।" मोटू दा अपनी जगह से बोले, "ध्यान से सुनिए मिस्टर। आपका नाम क्या है ?"

तभी सेक्शन के बाकी लोग आने लगे। एक के बाद एक। कपिलदेव पाठक, वशीलाल पाडे, रामानद तिवारी, दावे, मोती और बंधू। सभी ने हाजिरी बनाई और अपनी-अपनी जगह पर बैठे, तब साढ़े दस बज रहे थे।

कपिलदेव पाठक इनमें सबसे बुजुर्ग थे। सिर पर छोटे-छोटे बाल, छोटी-छोटी आंखें, देह पर सफेद खद्दर का धुला हुआ कुर्ता-धोती, पांवों मे चप्पल, मुंह मे पान, उम्र लगभग पचपन साल। अपनी जगह पर बैठ ही रहे थे कि मोटू दा अपनी जगह से चिल्लाए, "कस फाटक ?"

"हा मोटू दा, यार सीट पर बैठने देवो कि लगे बैलून की हवा निकालने। काम न धाम, कस फाटक ! बैलून की हवा निकली नही कि कुर्सी पर कांखने लगते हो। इधर से पर्र, उधर से पर्र !"

"हत् तेरे फाटक की, तुमको कुछ मालूम भी है !"

"क्या ?"

साल के दावे को आवाज लगाई, "अरे दावे !" ऊंची आवाज मे ही दावे ने उत्तर दिया, "हा पाठक जी।"

"अरे यार, एक और भले आदमी इस सेक्शन मे आ गए, देखो, ये खड़े हैं मि० चंद्रमोहन।" रजिस्टर मे डाक चढाना रोककर दावे बोला, "ऐसे ही भले आदमियों की तो इस सेक्शन में जरूरत है पाठक जी।"

"आओ यार चंद्रमोहन, यह लोकल डाक ग्रुप है, इस कुर्सी पर बैठो, यही तुम्हारी सीट है, इस जगह स्थानीय डाक ली जाती है। पियुन बुक पर दस्तखत देना होता है डाक लेकर, लेकिन, लिखावट से कागज की मिलान करके दस्तखत देना। यहा डाक तीन बजे तक ही ली जाती है, फिर उन्हें मार्क करके अलग-अलग सेक्शनों को भेजते है, ये सब तो ठीक-ठाक से सीख ही जाओगे, पहले लोगों से परिचय तो प्राप्त कर लो। दावे को समझ ही लिया, वे हैं मोटू दा, देखने मे मोटू दा नाटे है पर पेट ओखली की तरह, दो साल रिटायर होने को है लेकिन खाते है कि जवान मात हो जाए। देखो मोटू दा, भले आदमी चंद्रमोहन को।"

"भद्र पुरुष बोलो फाटक, तुमसे पहले देख चुका हूं। अब अपनी ही तरह इनको भी फाकीबाजी सिखा दो।" मोटू दा कांपते हुए बोले।

"तुमको भी हमीं ने सिखाया था क्या? हराम की तनखाह लेते हो, एक पैकट दस मिनट मे खोलते हो, जैसे तुम, वैसे तुम्हारे असिस्टेंट रामानंद वकील। देखो चंद्रमोहन, ये रामानंद एल-एल० बी० वकील हैं। वकालत मे जब तेज वहादुर सप्रू से भी आगे बढ गए तो इस दफ्तर में आकर नौकरी कर ली। पैंतीस साल के हो गए, अभी ब्याह नही हुआ। एक से एक बढकर फाकीबाज, एक मोटू, दूसरा वकील। कस वकील, कहा रहो यार, दफ्तर है कि खाला जी का घर, अब आ रहे हो?"

"आज थोड़ी देर हो गई पाठक जी।"

"आज क्या रोज ही देर हो जाती है तुमको, आख सेंकने के चक्कर में रहते हो? अब तो ये आदत छोड़ो यार। क्या बूढे होकर ब्याह करोगे?"

"चाहे जब करें, तुमसे मतलब।" मोटू दा बोले।

"मतलब क्यों नही है, अभी ये कर क्या रहे है?"

"सोशल सर्विस समझे फादर! जानते नहीं, अभी ये सोशल सर्विस कर रहे हैं, दो-चार साल के बाद जब ये ब्याह कर लेंगे तो इनकी बीवी सोशल सर्विस करेगी।" मोटू दा बोले।

सेक्शन में ठहाका लगा तो सेक्शन अफसर पन्नालाल बोले, "कहो वकील, ये दफ्तर है कि मजाक? यार जब चाहा आए, जब चाहा चल दिए। आप साढ़े ग्यारह बजे दफ्तर आ रहे हैं। मैं डी० ए० जी० को क्या रिपोर्ट दूंगा। रजिस्टर गंजा है, मेरी नौकरी लोगे क्या यार! एक तो तुम रोज ही गलत-सलत चिट्ठियां मार्क कर देते हो! मेरी जान आफत में पड़ी है। पेंशन की चिट्ठी फंड फंड की चिट्ठी जी० ए० डी०। देखिए मि० रामानंद आप अगर कल से दफ्तर समय से नहीं आए तो मैं आपके खिलाफ रिपोर्ट करूंगा।

"कहते रोज हो दादा, लेकिन रिपोर्ट एक दिन भी नहीं करते?" पाठक जी बोले।

वकील पाठक जी को हाथ जोड़ने लगा तो दावे चिल्लाया, "मैं तुमसे बार-बार कहता हूं वकील, कि अगर देर से आओ तो पाठक जी और दादा के लिए बाहर से पान लेते आओ लेकिन···"

"हां यार दावे, गलती हो गई, आते ही पाठक जी ने आग लगा दी।"

"देखा मि० चंद्रमोहन, ये है जी० डी० डाक, कुल मिलाकर आदमी सात आपको लेकर आठ, लेकिन एक से बढ़कर एक।"

"तो पाठक जी यहां का काम कैसे सीखूंगा?" चंद्रमोहन ने दोनों हाथ जोड़कर पूछा।

"काम यहां है क्या यार? काम तो अपने आप ही सीख जाओगे, बस एक बात का ध्यान रखना।"

"कौन-सी बात का?"

"ये दफ्तर साला जान लेवा है, जो यहां जितना अधिक काम करता उस पर उतना ही अधिक काम लादा जाता है। अधिक काम करने का इनाम कुछ नहीं। इम्तहान पास करते जाओ, तरक्की मिलती जाएगी। यहां रहना हो तो एम० ए० एस० जरूर पास करना। और इम्तहान

पास करने के लिए फाकेबाजी सीखना जरूरी है ।"

"फांकेबाजी किसे कहते है पाठक जी ?"

पाठक जी हसे, "फाकेबाजी कहते है बच्चा, कि काम करो कम, चिल्लाओ ज्यादा कि मर गए, बाप रे, इस सीट पर तो इतना काम है कि मर गए । सीट पर कम से कम बैठो, जहा कुर्सी से चिपके कि देह मे दफ्तर का घुन लगा । दफ्तर से रिटायर होकर पेंशन लेना है तो खूब फाकेबाजी करो, लेकिन पहले काम सीख लो ।"

"की मि० चंद्रमोहन ?" चश्मे के ऊपर से ताकते हुए मोटू दा बोले, "समझा । सीनियर कुलीग का सीख ग्रहन किया, इनका नाम है कपिल-देव फाटक । दफ्तर मे प्रसिद्ध, नही, सुप्रसिद्ध ।"

"जो बाकी होगा सो मोटू से सीख लोगे । ये मोटू, ए० जी० बरमा से आए थे । किसी सेक्शन मे चल नही पाए तो जी० डी० डाक मे शरण मिली । हम लोगो की बदौलत चल रहे हैं, नही तो गाडी बैठी ही समझो । अच्छा सुनो, इस दफ्तर का कायदा है कि जो सेक्शन मे नया आता है, सेक्शन वालों को एक पार्टी देता है । तो एक रुपया फी हेड का खर्च है, यानी दस रुपयों का । अब की तनखाह पाते ही पार्टी दे देना ।"

"बहुत अच्छा, पाठक जी ।"

"अब जाओ पानी पी आओ, थोडा बाहर से घूमघाम कर पान-वान खा आओ ।"

पाठक जी काम करने लगे । चद्रमोहन बाहर निकल गया, जैसे ही चंद्रमोहन सेक्शन के बाहर निकला कि नाक पर से चश्मा हटा कर पाठक जी चिल्लाए, "अरे यार दावे !"

"हां पाठक जी ।"

"अरे यार, चद्रमोहन कहा गए ? लोकल डाक वाले आने लगे और ये लड़का गायब, यार ये तो हम लोगों का भी चचा निकला ।" इस बार कुछ और ऊंची आवाज मे, सेक्शन अफसर को सुनाकर बोले, "अरे, चद्रमोहन !"

आंख पर से चश्मा हटाकर सेक्शन अफसर बोले, "कम यार

जिसके इर्द-गिर्द लगभग दो सौ आदमी घेरकर खडे हुए थे। वह कुछ मोल रहा था और भीड के लोगों में रह-रहकर ठहाके लग रहे थे। वात राजनीतिक विषय पर थी। चंद्रमोहन की जिज्ञासा बढी। दो-एक मिनट तक खडे हो चुपचाप सुनने के बाद उसने भीड में से थोडा अलग खडे सज्जन-से दिखने वाले आदमी मे बडी नम्रता से पूछा, "भाई साहब, ये कौन है ?"

उस आदमी ने चद्रमोहन को उत्तर देने की बजाय उसे ऊपर से नीचे तक गौर से निहारा तो चंद्रमोहन सहम गया। फिर भी वह जिज्ञासु भाव मे उसकी ओर ताकता रहा तो वह बोला, "आप ए० जी० मे है ?"

"जी हा !"

"नए बछेडे हैं क्या ?"

"जी हां, अभी आज ही तो ज्वाइन किया है।"

वह आदमी हसा, "तभी तो आप पी० एम० यानी प्रधानमत्री को नही जानते। ये ए० जी० ऑफिस की पार्लियामेट है और उसको एड्रेस करने वाले ये प्रधानमंत्री है।"

"प्रधानमत्री !" चद्रमोहन थोडा चकित हुआ।

"जी हा, प्रधानमत्री ! एक प्रधानमत्री दिल्ली मे रहते है, ये उन्ही का ही जमादार है। यहा ए० जी० ऑफिस की संसद मे प्रतिनिधित्व करते है। यह ससद रोज यहा डेढ मे ढाई के बीच में जुटती है, जिसे हमारे प्रधानमंत्री जी संबोधित करते हैं।"

"ये और क्या करते है ?"

"जैसे दिल्ली के प्रधानमंत्री संसद के अधिवेशन के समय पार्लियामेंट सभालते हैं, बाकी समय मे अपने सेक्रेटेरियेट का काम देखते हैं, उसी तरह ये प्रधानमत्री डेढ से ढाई तक नियमित रूप से पार्लियामेंट को संबोधित करते हैं, लोगो की जिज्ञासाए शात करते हैं, दूर करते हैं और बाकी समय का कुछ हिस्सा इस कार्यालय को भी दे देते हैं।"

"इनको किसने चुना ?"

वह आदमी इस बार ठहाका लगाकर हंसा, "अरे, प्रधानमंत्री चुना

जाता है। वह तो अपनी सार्विलियन मे बन जाता है। ए० जी०
ऑफिस के ये सरकारी कर्मचारी ससद के सदस्य है। समझे ?"

"लेकिन साहब, यहा तो अजीब ढग से बातें हो रही है।"

"यही विशेषता है इस ससद की। ससद मे होता क्या है जनाब !
ये थोडा अलग हट के है। ससद वाले पी० एम० की, पी० एम०
ससद वालो की जी० एम० डी० करने के चक्कर मे रहते है, न करें
तो चले ही न।"

"जी० एम० डी० माने ?"

"धत्तेरे की, वहा तक अपना खा के आपको मैं सब बातें समझाऊं।"

"देखिए, पढ़ते समय आपने 'एबरिवियेशन' पढ़ा होगा, यानी शब्दो
का सक्षेपीकरण।"

"हा पढ़ा है, पर जी० एम० डी० न ही पढा, न जानता हू।"

"नहीं जानते तो सीख जाइएगा। इसके बगैर दुनिया मे काम
चलता ही नहीं। दूसरे की जी० एम० डी० करिये, सब आपके आगे हाथ
जोडेगे। 'एम' माने तो 'मे' होता है, 'डी' माने डडा होता है, यानी
'मे डडा'।"

"और 'जी' माने ?"

"'जी' माने किसी और से पूछ लीजिएगा।"

"इतना तो आपने बताया, बाकी कौन बताएगा ?" चंद्रमोहन
मुस्कराते हुए बोला।

वह आदमी खास अदाज मे चद्रमोहन की ओर देखते हुए बोला,
"चूकि आप नए आए है इसलिए आपको बता देता हू—'जी' माने वह
स्थान होता है जहा से आप अपनी देह का मल त्याग करते हैं। समझ
गए ?"

चद्रमोहन आखे फाडकर उस आदमी को देखता ही रह गया, जो
खुलकर हस रहा था। चद्रमोहन भी हसते हुए बोला, "एक बात औ
बता दीजिए।"

"कहिए ?"

"ये पी० एम० तो मर्द है। अपने को औरत मानकर बं

रहे हैं ?"

"कैसे ग्रेजुएट हो यार ! इतना तो तुम्हें समझ लेना चाहिए था। दिल्ली के तख्त पर बैठे हुए प्रधानमंत्री के अनुसार इस पी० एम० का भी लिंग बदला करता है। अखबार मे लिंग परिवर्तन की घटनाएं आप पढ़ते हैं कि नहीं !"

"पढ़ता हूं।"

"तब इसमे अचरज करने की कौन-सी बात है। दिल्ली में यदि मर्द प्रधानमंत्री हुआ तो ये पुल्लिंग में रखते है, स्त्री प्रधानमंत्री हुई तो स्त्रीलिंग हो जाते है।"

"इस पार्लियामेंट का सदस्य होने की कोई शर्त है ?"

"हां !"

"क्या ?"

"जो रोज इस पी० एम० की 'जी० एम० डी०' करे। 'एम० सी०' कर सके, वही मेम्बर हो सकता है।"

भाई साहब, जी० एम० डी० का मतलब तो समझ गया, पर एम० सी० माने ?"

"यहा 'एम' का मतलब 'में' नही 'मा' होता है।"

"और 'सी' माने ?"

" 'सी' माने भी बता दू ? पहले आप बताइये कि आपकी शादी हुई है ?"

"नही !"

"तब 'सी' माने शादी होने के बाद सीख जाइएगा।" वह आदमी भी भीड मे मिल गया।

चंद्रमोहन भी प्रधानमत्री बने आदमी की बात सुनने लगा। वह दोनो हाथो से लोगो को शात होने का सकेत करते हुए कह रहा था, "आप लोग थोड़ा खामोश रहिए, आज मैं आप लोगों से बहुत जरूरी और इंटरेस्टिंग मुद्दों पर बातें करना चाहती हू।"

"वे कौन से मुद्दे है ?" भीड़ मे से कोई सरदार बोला।

"एक-दो हों तो गिनाऊं भी। अभी तो मैं विरोधी दल की पार्टियों

से ही निपट नहीं पाई। अब देश मे जयप्रकाश जी खडे हो गए, छात्रो को भडकाने लगे। छात्रो को राजनीति मे क्या लेना-देना? लेकिन नही, खामखा उन्हे सियासत मे ढकेला जा रहा है, तोडफोड कराया जा रहा है। मै तो [illegible] मे बनाने मे लगी हू, नेता लोग उसे तुडवाने मे लगे है। मै देश को ससार के महान् राष्ट्रो की बराबरी पर ले जाना चाहती हू, लेकिन फासिस्ट लोग मेरी टाग खीच रहे है…।"

"देश को पहले रोटी-कपडा मुहैया कराइये, फिर ऊचे सपने दिखाएगा। घर मे चिराग पहले जलाइये, फिर बाहर की बात करियेगा। जो आपकी खिलाफत करे वह फासिस्ट है? क्या जयप्रकाश जी फासिस्ट है?"

"आप कहना क्या चाहते है?" पी० एम० बोला।

"मै कहना चाहता हू कि जयप्रकाश जी फासिस्ट है तो आपके सूबे उत्तर प्रदेश के सूबेदार श्री बहुगुणा जी लखनऊ मे जयप्रकाश जी से मिलने कैसे गए?" इस बार सरदार फिर बोला।

पी० एम० कहने लगा, "अबे सिरफिरे, बहुगुणा जी इस सूबे के मुख्य-मत्री है, मैने उन्हे समझ-बूझकर यहा भेजा है। वे एक कुशल प्रशासक है। जयप्रकाश जी से मिले तो कौन-सी उनकी बेइज्जती हो गई। प्रशासन के लिए सभी दाव-पेच चलाने होते है।"

"तो आप भी उनसे क्यो नही मिलती?"

"आप बहुत टिपुर-टिपुर कर रहे हैं। मुझे उनसे मिलने की जरूरत क्या है? मैं ऐसे आदमी से क्यो मिलू जो देश के नौजवानो को गुमराह कर रहा है…"

भीड मे ठहाका लगा तो पी० एम० फिर बोली, "ए० जी० ऑफिस की बाबूगिरी कर, सियासत मे दखल देना तेरे भेजे के बाहर की बात है। तू क्या सियासत समझेगा…"

फिर ठहाका लगा। चद्रमोहन आगे सेक्शन की ओर बढ गया।

दो

पिछले पांच-सात दिनों से मकान की खोज में चंद्रमोहन परेशान था, लेकिन कही भी मकान का पता नही चला। लूकरगंज, राजापुर, पुराना कटरा, नया कटरा, ममफोर्डगज, जार्ज टाउन और टैगोर टाउन मे चक्कर काट आया, कहीं भी कोई उम्मीद नही दिखी। बच गया था एलेनगंज, फूलबसे घरो वाला मुहल्ला, साफ-सुथरा, मन को आकर्षित करने वाला। इतवार के दिन, इत्मीनान से चंद्रमोहन ने मकान खोजना शुरू किया। दो-तीन घटो के चक्कर के बाद मन निराश हो गया। वीमेन्स होस्टल की ओर निकलने वाली दो सड़कों पर ही पूछताछ बाकी रह गई थी। आसमान मे बादल घिर आए थे और फुहारें पड़ने लगी थी। रिसते हुए इन घने बादलो मे चलना अपने को पूरी तरह भिगो देना था। झीसियों मे देह एक चौथाई यू ही भीग गई थी। अब अधिक भीगने का मतलब अपने को बीमार डालना था। अधिक पैदल चलने से पाव भी भर गए थे और पानी की बूदें भी तेज होने लगीं तो वीमेन्स होस्टल की ओर जाने वाली एक बाई-लेन से चद्रमोहन आगे बढा। बूदें सहसा तेज होने लगी। आगे बढना एकदम कठिन हो गया तो अनाज के गोदाम वाले लाल मकान की दीवार से सटकर लंबे छज्जे के नीचे चंद्रमोहन रुक गया। सामने के दाहिने हाथ के अंतिम मकान के अहाते का फाटक खुला था, पर मकान और उसके आगे एक अजीब-सा सूनापन फैल रहा था। दीवारों पर शायद एक लंबे अर्से से पुताई न होने से वे काली पड़ गई थीं। आगे की फुलवारी में टूटी-फूटी मेड़वाली क्यारियों में फूल बेतरतीब लगे हुए थे, जिनके चारो ओर घासें उग आई थी। चंद्रमोहन चुपचाप सामने देख रहा था कि कानों में सितार की आवाज पडी। चौककर देखा, बरामदे मे ही कोई सितार बजा रहा था। पानी भी तेज होने लगा तो चंद्रमोहन अपने को रोक

न सका और दौड़कर अहाते में प्रवेश कर भीगने से बचने के लिए बरामदे में जा पहुंचा।

बरामदे की चिकनी फर्श पर शीतलपाटी बिछाकर बैठे हुए साठ साल के पीरू घोषाल सितार बजा रहे थे। खंभे से सटकर खड़े हो, जेब से रूमाल निकाल हाथ-मुंह पोंछने लगा चंद्रमोहन पीरू बाबू की ओर ताकता रहा। हाथ के इशारे से पीरू बाबू ने चंद्रमोहन को पास के तख्त पर बैठने को कहा। तख्त पर न बैठ सामने बिछा फर्श पर ही चंद्रमोहन बैठने लगा तो हाथ के इशारे से ही पीरू बाबू ने उसे रोका, पर हाथ जोड़ चंद्रमोहन ने फर्श पर ही बैठना पसंद किया।

पीरू बाबू सितार बजाने में तन्मय हो गए, चंद्रमोहन सुनने में। लगभग बीस मिनट बाद पीरू बाबू ने हाथ रोका।

"लगता है आप ठुमरी बजा रहे थे?"

"हां बेटा, हां, ठुमरी ही बजा रहा था, क्या तुम भी बजाते हो?"

"बजाना क्या हूं सीखना चाहता हूं, लेकिन किसी गुरु की तलाश है।"

"यहां कहां रहते हो?"

"रहने को मकान खोज रहा हूं, फिलहाल टिका नूकरगंज में हूं। हाल ही में ए० जी० ऑफिस की नौकरी शुरू की है, तभी से मकान खोज रहा हूं, लेकिन कहीं मकान नहीं मिला। इधर भी इसी मकान खोजने के सिलसिले में आया था।"

"रहने वाले कहां के हो?"

"हरदोई का।"

"और पढ़े-लिखे?"

"इसी साल लखनऊ से एम० ए० के बाद वकालत पास किया है।"

"तो मकान का पता नहीं चला?"

"दो-एक जगह चला, पर लोग बिना परिवार वाले को देते नहीं। शादी हुई नहीं तो परिवार कहां से लाऊं। यूं परिवार में मां है, बहन है, लेकिन आज का समाज इसे परिवार नहीं मानता, वह तो पत्नी से शुरू करता है। बहन का इसी साल यहां यूनिवर्सिटी में नाम लिखाना

चाहता था, पर मकान मिला नहीं, जुलाई बीत रही है। खोज कर हार गया।"

"तुम्हारा नाम ?"

"चंद्रमोहन।"

"आप लगता है रिटायर हो चुके हैं।"

"हां, यहां के एक लडकियों के कॉलिज में म्युजिक टीचर था।"

"तो अब चलूं।" पानी रुकने लगा था।

"अरे नही बेटा, पानी रुका कहा ? सांझ की बेला है, एक कप चाय तो पी लो।"

"नहीं, आज्ञा दीजिए। आपके मकान मे मैंने शरण ली, सितार पर ठुमरी सुनी, मन प्रसन्न हो गया, थकन मिट गई। बहुत दूर टिका हूं, करीब होता तो आपसे सीखता। अच्छा···।" चंद्रमोहन उठ गया।

"ओह, ओह, बैठो तो। मेरे साथ एक कप चाय पी लेने में कोई हानि नही है बेटा। चाय पी लो तो मैं भी एक मकान बताता हूं।"

"अच्छा एक गिलास जल पिला दीजिए।"

"हा, बैठो।" पीरू बाबू ने आवाज लगाई, "ओ···गो···एक गिलास जोल।"

लगभग ५५ साल की एक महिला सफेद साड़ी मे, गिलास में जल लिए हुए बाहर निकली तो चंद्रमोहन को देखती रह गई।

"दीए दाओ।" पीरू बाबू बोले।

तब जैसे महिला का ध्यान टूटा और उसने धरती पर बैठे हुए चंद्रमोहन की ओर झुककर गिलास बढा दिया।

गिलास पकड चंद्रमोहन ने मुह मे लगाया। महिला ने पीरू बाबू की ओर घूमकर कहा, "सुनो, देखेचे !"

पीरू बाबू ने पत्नी की ओर देखा तो उन्होंने आंखों से चंद्रमोहन की ओर इशारा किया तो समर्थन मे पीरू बाबू बोले, "हां, देखेचे (हा, मैं भी देख रहा हूं)।"

"मेई टी, एकदम प्रतिरूप।"

पानी पी धरती पर गिलास रख, चंद्रमोहन बोला,

मकान वताना चाहते थे ?"

"हा, इस मुहल्ले का वाजार और पीपल वाले चौराहे से एक सडक दक्खिन की ओर जाती है। उससे दो मकान दाहिने हाथ पर मि० वीरेंद्र वनर्जी का वडा-सा पीला मकान है। उसी का पिछला हिस्सा, यानी दो कमरो का मकान एकदम 'सेपरेट' है। उनके पास अभी चले जाओ, वे अगर घर पर हों तो उनसे कहना पीरु घोपाल ने मुझे भेजा है, तब पूछना कि उनके किराये वाला हिस्सा उठ गया या खाली है? अगर खाली हो तो मेरे पास आ जाओ, मैं चला चलूगा।"

चद्रमोहन की देह मे जैसे जान आ गई। वह हाथ जोडते हुए तेजी मे उठा और अहाते से वाहर निकल एलेनगज वाजार पहुचा। वहा से वीरेंद्र वावू के घर पहुचा। वाहर के वरामदे मे वीरेन वावू वैठे हुए थे। फाटक मे ही वरामदे की लाल फर्श चमक रही थी। लगभग दस वर्ष पहले वना हुआ मकान, किंतु साफ-सुथरा। चार बेंत की कुर्सियो के वीच वेंत का ही एक गोल मेज रखा हुआ था। वीरेन वावू तख्त पर पाल्थी मार के वैठे हुए अगूठे और तर्जनी के वीच सुघनी दवाये, नाक से सूघने की तैयारी कर रहे थे। फाटक खोल, चद्रमोहन ने पास पहुंच प्रणाम किया तो वीरेन वावू वोले, "एस ?"

"मुझे श्री पीरु घोपाल ने भेजा है।"

"की दोरकार, वोलो, वैठो वावा। क्यो भेजा ? लो, नेस लेगा ?" वीरेन वावू ने सुघनी की डिविया चद्रमोहन की ओर वढाई।

"जी नहीं, धन्यवाद।"

वीरेन वावू थोडा अचरज मे वोले, "अरे, तुम कइसा नौजवान है। आजकल का नौजवान तो वीडी-सिगरेट मे गाजा मिलाकर पीता है, जो हाई क्वालिटी का नौजवान है वह चरस पीता है और तुम, नेस यानी सुघनी नहीं लेता, हरे राम, हरे कृष्ण। फिर एक खास अदाज से चद्रमोहन की ओर देखकर वोले, "अच्छा वताओ, कइसे आया, माने हाट व्रिग्स यू हीयर ? पीरु घोपाल ने क्यो भेजा ?"

चुप हो चद्रमोहन मुस्कराते हुए वीरेन वावू के मुह की ओर देखता रहा तो वीरेन वावू फिर वोले, "अरे वावा, कुछ वोलेगा, ना खाली मेरा

मुंह ताकने को उस सितारिये ने भेजा है ?"

"आपके पास कोई मकान···।"

"ये मारा, आखिर सितारिये ने फंसा ही दिया। इतने दिन हो गए, आज तक उसने किसी को मेरे पास नहीं भेजा, आज भेज ही दिया, लेकिन उसको तुम कइसे जानता हाय ? खैर, जाने दो, जाओ पहले मकान देख लो, खाली है, लो यह ताली, पीछे का हिस्सा है।"

"पीरू बाबू ने कहा है कि यदि मकान खाली हो तो मुझे लिवा चलना।"

"ठीक है, ठीक है, लेकिन तुम पहले पसद तो कर लो।"

बीरेंद्र बाबू के हाथ से ताली लेते हुए चद्रमोहन संकोच मे पडा तो वे बोले, "जाओ, पहले मकान देख लो बाबा, पसद आ जाए तो उनको बुलाना—वी शैल सेटल द टर्मस्, तय तपाड करेगा।"

चंद्रमोहन ने ताली ले ली और बगल के रास्ते से जाकर पहले मकान देखा। घुसते ही लंबा गलियारा, उसकी बगल में लबा-चौडा एक कमरा, कमरे के आगे एक छोटा-सा बरामदा, उसके आगे रसोई, आंगन, कोने में स्नानघर। उसे आच्छादित किए हुए अमरूद का एक छतनार पेड, और वहीं से ऊपर जाने के लिए सीढ़िया। ऊपर भी एक कमरा, कमरे के एक ओर छोटा-सा बरामदा, दूसरी ओर खुली छत, लगभग छ. खाट बिछाने लायक। दो जंगलो वाला साफ-सुथरा हवादार कमरा। मन लायक मकान, चद्रमोहन ने आकाश की ओर दोनों हाथ जोडे और चुपचाप नीचे उतर गया।

बाहर निकल वह सीधे पीरू बाबू के पास पहुंचा जो अब भी बरामदे मे चुपचाप बैठे हुए थे। देखते ही बोले, "क्या हुआ ?"

"बीरेन बाबू तो हैं, और मकान भी मैंने देख लिया, आप चलकर···।"

"हा, हां चलो।" उसी तरह कुरता-धोती पहने पीरू बाबू चंद्रमोहन के साथ चल पड़े।

पीरू बाबू को देखते ही बीरेन बाबू हंसे, "ले आया सितारिया को, आओ, बैठो, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"चंद्रमोहन।"

सुनो चद्रमोहन, तुम पीरू बाबू को ले आया। तब तो मकान तुम्हें देना ही होगा। पर मुझे किरायेदार नहीं चाहिए। मेरे तीन बेटे हैं, तीनों अच्छी नौकरी में हैं। मेरी वाइफ उन्हीं के पास रहती है, इसी कारण मैं भी यहां अकेला रहता हूं। इसीलिए मुझे ऐसे आदमी की तलाश है जो मेरे पूरे मकान की देखभाल करता रहे, किरायेदार की तरह नहीं, मेरे पूरे मकान के मालिक की तरह रहे।"

मा ना मुझे विश्वास है ये लडका इसी तरह रहेगा। भले घर का लगता है, इसीलिए मैंने आपके पास भेजा है बीरेन बाबू। अभी हाल में ए० जी० आफिस में नौकरी लगी है तो मा और बहन को ले आना है। बहन का नाम यूनिवर्सिटी में लिखाना है, मकान न मिलने से परेशानी थी।

"मुझे किराया क्या देना होगा ?" चद्रमोहन बोला।

प्यार से चद्रमोहन के सिर पर हाथ फेरते हुए बीरेन बाबू बोले, "बेटा, तुम किराया क्या देगा, इस महगाई में तुम्हारा तोनखा में बचेगा क्या, फिर भी तीस-चालीस-पचास जो हो सके दे देना। मैं तुम्हें एक भद्र पुरुष समझता हू। तुम चालीस किराया देना, पर हर माह उसी से, मेरे मकान का बिजली का बिल अदा करते रहना। बीच-बीच में आने पर मैं बाकी पैसे ले लूगा। अब तुम जाओ, और सामान ले आओ। ताली रखे रहो।"

"तो मैं कुछ एडवास दू ?"

"पागल हो गए हो क्या," पीरू बाबू बोले, "तुम इतना डरता क्यों है बाबा। ताली तो तुम्हारे पास है।"

बीरेन बाबू हस रहे थे, "अभी लडका है न, मकानों की हालत भी बहुत खराब है, जाओ बेटा, एडवास मैं नहीं लेता। शाम हो गई, देख लो बल्ब वगैरह मकान में ठीक है ना, फ्यूज्ड है तो, एक-दो खरीदते आना। सब-मीटर लगा है, उसकी रीडिंग नोट कर लेना, ताकि आगे से पेमेंट करने में आसानी हो।"

चद्रमोहन ने दोनों को झुककर नमस्कार किया और तेजी से लूकर-गज के लिए चल पडा। उसी साझ चद्रमोहन लूकरगज से अपना सामान

बक्स, बिस्तर और सितार लेकर एलेनगंज के इस नए घर में आ गया। कमरों में बल्ब लगा दिए। झाड़-पोंछ-धोकर रात के दस बजे तक मकान को एकदम साफ कर दिया। सामान ही अपने पास क्या था, जो था उसे ऊपर के कमरे में रख उसी में सो गया। दूसरे दिन एक खाट, एक कुर्सी और एक मेज खरीद लाया। भोजन होटल में आरंभ किया। उसी रात मां को मकान पा जाने की सूचना देते हुए उसे लिख दिया कि किसी भी दिन वह लिवा लाने के लिए हरदोई आ सकता है।

एलेनगंज के इस नए घर में व्यवस्थित हो जाने के चार-पांच दिनों के बाद, एक दिन शाम को छ: बजे सितार लेकर चंद्रमोहन पीरू बाबू के घर पहुंचा। बरामदे में पहुंच आवाज लगाई, "घोपाल बाबू !"

उत्तर में श्रीमती घोपाल बाहर निकली। पहचान कर चंद्रमोहन ने नमस्कार किया तो बोलीं, "बेटा, जरा भीतर तो आना, मेरी मदद तो करो।

चौकी पर सितार रख चंद्रमोहन भीतर गया तो देखा, बाईस साल की एक गोरी लड़की बरामदे के फर्श पर चित लेटी है, लंबे-लंबे उसके खुले हुए बाल फर्श पर फैले हैं और लड़की का बदन रह-रहकर कांप जाता है।

"यह क्या हुआ ? ये कौन है ?"

"यह मेरी बेटी है दीपा, इसे चक्कर आ गया है, और इसके जबड़े बैठ गए हैं, मुझसे खुलते नहीं, तुम जरा कड़े हाथों से इसके जबड़े खोलो तो मैं मुंह में दवा डाल दूं।"

बगल के नल से चंद्रमोहन ने हाथ धोए और सिरहाने बैठ कर दीपा के दोनों गाल जोर से दबा दिए, जबड़े खुल गए, श्रीमती घोपाल की आंखों में प्रसन्नता भर आई।

"लाइए, दवा दीजिए।" चंद्रमोहन ने दीपा की मां के हाथ से दवा लेकर दीपा के मुंह में डाल गर्दन थोड़ा उठा के पीछे की ओर झुका दिया, दवा कंठ के नीचे चली गई।"

श्रीमती घोपाल प्रसन्न हो बोलीं, "बाप रे, मैं तो परेशान हो गई थी

कि दवा इसके गले में पहुंचे कैसे ? तुम बड़े मौके से आए। घोषाल बाबू कहीं चले गए हैं। अकेले मेरी तबियत घबरा रही थी कि आगे क्या करूं, किसे बुलाऊं, तुम न आते तो···?"

घोषाल बाबू कब तक आएंगे ?"

"आते ही होंगे बोल गए थे कि तुम आओ तो रोकूं।"

"यह रोग इन्हें कब से है ?"

"पांच-छः महीने से। एम० ए० प्रीवियस का इम्तहान होने के तीन महीने पहले शुरू हुआ था, इसीलिए फाइनल में पढ़ाई छुड़ा दी गई। पता भी नहीं चलता कि इसका आक्रमण कब कैसे हो जाता है। नहा-धोकर कंघी करने के लिए बड़े शीशे के सामने गई तो चक्कर आ गया। आओ बेटा, इसे पलंग पर लिटा दें, इसके कंधे की ओर से तुम पकड़ो, पांव मैं पकड़ती हूं।"

चंद्रमोहन ने मां की मदद से दीपा को पलंग पर लिटा दिया और बाहर जाने लगा तो बोली, "यहीं बैठो, घोषाल बाबू आएं तो उनके साथ बाहर बैठना। तुम दीपा पर नजर रखो, कहीं झोंके में गिर न जाए, मैं तब तक चाय बनाती हूं, होश में आने के बाद इसे तुरंत चाय चाहिए।"

श्रीमती घोषाल चौके में गई, इधर दीपा ने आंखें खोलीं। सामने चंद्रमोहन को कुर्सी पर बैठे देखा तो झटके से उठ बैठी, "अरे ! यह क्या ?" फुर्ती से चंद्रमोहन दीपा के दोनों कंधों पर हाथ रख दबाते हुए बोला, "अभी आप लेटी रहिए।"

आवाज सुन श्रीमती घोषाल दौड़ी आईं, "होश आ गया, आज इतनी जल्दी, पहले तो आध घंटा लगता था, आज तो दवा ने बहुत जल्दी असर किया।"

चंद्रमोहन को एक बार ध्यान से देखकर, दीपा चारपाई पर फिर वैसे ही लेट गई और आंखें बंद कर लीं। लंबे, काले घुंघराले केश चारपाई पर बिखरे थे, कुछ नीचे लटक रहे थे। चंद्रमोहन ने ध्यान से दीपा को देखा, बादाम-सी आंखों वाला गोरा, शांत, भोला चेहरा, सहानुभूति मांगता था, नपनूमी चिकनी, हर ओर से भरी-पूरी कोमल देहयष्टि,

मन को बार-बार खींचती थी। बीच में तीन-चार बार दीपा ने आंखें खोली, पर हर बार चंद्रमोहन को अपने चेहरे पर ताकते हुए पाकर, अपनी आखें मूंद ली।

तभी घोपाल बाबू आ गए, "ओह, तुम आ गए!"

"जी हां," चंद्रमोहन खड़ा हो गया।

"बैठो, बैठो, मैं एक काम मे चला गया था, दीपा को आक्रमण हो गया था क्या?"

श्रीमती घोपाल भी आ गई, "हां, लेकिन आज तो बडी जल्दी होश भी आ गया, आज दवाई चंद्रमोहन ने पिलाई, जादू की तरह असर हुआ, ये बड़े मौके से आ गया था, अकेले तो मेरे वश का था नही, एक बूंद भी दवा बाहर नही गिरी।"

"तो आज सितार लाए हो?"

"जी हां, आइए बरामदे मे ही चलें।"

"नही, बैठो बेटा, पहले चाय पी लो, फिर चलते है।" पीरू बाबू दीपा की खाट की पाटी पर बैठ उसके ललाट पर हाथ फेरते हुए बोले, "अब ठीक है बेटा?"

दीपा ने पलकों से ही ठीक होने की हामी भरी और उठ के बैठने लगी तो घोपाल बाबू बोले, "लेटी रहो, लेटी रहो।"

"नही बाबा, मैं ठीक हू, ये अटैक बहुत मामूली लगता है, आइ डोंट फील वीकनेस।"

"अच्छा तो उठकर बैठ जाओ।"

पीरू बाबू ने बेटी को सहारा देना चाहा तो उसने मना कर दिया, "मैं एकदम ठीक हूं बाबा, आराम मे हूं।"

श्रीमती घोपाल तीन प्याले चाय ले आईं। पहले चंद्रमोहन को, फिर पति को और तब दीपा को। बेटी को चाय पकड़ाती हुई वे प्रसन्न थीं, चेहरे पर चंद्रमोहन के प्रति कृतज्ञता का भाव था।

"चीनी ठीक है बेटा?" मां ने पूछा।

"कुछ कम है।"

"अरे तो बोले क्यों नही, हम लोग चीनी कम पीते हैं। मागने में

संकोच क्यों ? '

चीनी इतनी महगी है कि कम पीने की आदत डालनी चाहिए ।''

''ओ बाबा दीपा की मां बोली, 'अभी तो नौकरी आरंभ किया कितना कंजूसी करेगा कितना बचाएगा ?''

वे दौड़ के चौके में से प्लास्टिक का पीला डिब्बा उठा लाईं और एक चम्मच चीनी डालती हुई बोली 'और ?''

''इस घर में नवीन करोगे तो कैसे होगा, घर तुम्हारा है, हमारे तो कोई पुत्र नहीं ले-देके एक बेटी दीपा है ।'' दीपा की मां बोली ।

चंद्रमोहन चुप रह चाय पीकर पीरू बाबू से बोला, ''बरामदे में चलें ?''

'हां, अब चलो ।''

बरामदे में आकर पीरू बाबू के हाथ से शीतलपाटी ले फर्श पर बिछा पीरू बाबू को बिठाया, फिर खुद बैठा सितार पर से कपड़े का खोल उतारा, तारों को कसा, फिर दोनों हाथ जोड़कर पीरू बाबू को प्रणाम करके सितार बजाना आरंभ किया, पहले गत, फिर तान और झाला ।

पांच-सात मिनट सुनने के बाद पीरू बाबू बोले, ''बस बेटा बस, हाथ तुम्हारा साफ है, अभ्यास करते हो ?''

''इधर मकान न मिलने से व्यतिक्रम हो गया था, आपकी कृपा से मन लायक मकान मिल गया अब, अभ्यास फिर शुरू करूंगा । बस आपकी कृपा और आशीर्वाद चाहिए ।''

''कृपा भगवती मां सरस्वती की होगी । मैं मंगल कामना करूंगा । जाओ भीतर से मेरा सितार मांग लाओ, तुम्हें स्वर का विस्तार समझाऊं । तुम्हारे जैसे ही की तो मुझे तलाश थी ।''

दीपा अपनी मां के साथ चंद्रमोहन का सितार-वादन सुन रही थी । बाप की मांग पर वह स्वयं सितार ले आई ।

पीरू बाबू ने अपना सितार संभाला, तारों को कसा, ढीला किया, फिर स्वर का विस्तार समझाने लगे । स्वर का विस्तार करते समय खटका और मुर्की मींड से समझाने लगे ।

उस समय साढ़े सात बज रहे थे। आकाश से हल्की-हल्की फुहारें गिरनी शुरू हो गई थी। पीरू बाबू राग बागेश्वरी बजाने में तन्मय हो चले थे, विलंबित और द्रुत लय में। आध घंटे बाद तन्मयता इतनी बढ़ी कि वे देशकाल भूल गए। पतली-पतली उंगलियों में न जाने कहां से गति आ गई थी, आंखें सामने देखती हुई भी जैसे कहीं बहुत दूर देख रही थी, अंतर्गमन के न जाने किस कोने में डूबी हुई मुंह पर खुशी मिश्रित अपार सौम्यता छा गई थी। स्वर के आरोह-अवरोह के साथ उनकी आंखों का भाव देखते ही बनता था, स्वरों के सुख में पीरू बाबू आकंठ डूब गए थे—सब कुछ भूल-बिसार के।

लगभग पैंतालीस मिनटों के बाद, पीरू बाबू ने राग समाप्त किया तो जीवन के चौथे चरण में उतर चुके इस कलाकार को आदर देने के लिए चंद्रमोहन दोनों हाथ जोड़कर बोला, "इस अवस्था में भी इतनी मेहनत, इतनी साधना!"

"बिना मेहनत के कुछ उपलब्ध भी तो नहीं होता बेटा, यह तो ऐसा रस है कि इसमें जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होगा, जितनी अधिक साधना, उतनी अधिक उपलब्धि।"

"हां, पर मेहनत का फल भाग्यवानों को मिलता है।"

"ना, ना बेटा, ऐसी बात नहीं, मेहनत का फल सभी को मिलता है। एक सेकेंड की भी मेहनत व्यर्थ नहीं जाती। बशर्ते, मेहनत नियोजन से की जाए। समझदार वे होते हैं जो उचित समय के बाद अपनी मेहनत के फल की आशा करते हैं। संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो किसी के सच्ची और लगन से की गई मेहनत के फल में बाधक हो।"

चंद्रमोहन खामोश हो गया।

पीरू बाबू ने सितार पर खोल चढ़ा दी।

"तो अब चलूं?"

"ये भी कहूं।"

"मैं नियम से आने का प्रयास करूंगा, बस आपकी कृपा चाहिए, आज आज्ञा दीजिए।" चंद्रमोहन ने दोनों हाथ जोड़, झुक के पीरू बाबू को नमन किया, फिर दरवाजे के पास खड़ी श्रीमती घोषाल को नमस्कार

करके बाहर निकल गया।

दीपा के साथ पति के पास बैठती हुई श्रीमती घोषाल बोलीं, "बहुत भद्र लड़का है। कितना सुंदर है, बड़ी-बड़ी आंखें, भोला चेहरा।"

"हाथ भी बहुत साफ है," पीरू बाबू बोले, "लगन है लड़के में, अभ्यास रखता रहा तो पकड़ लेगा। लो बेटी सितार रखो, अब लेटने को जी चाहता है, पीठ मे दर्द हो रहा है।" पति के पीछे, दीपा की मां भीतर आ गई।

चंद्रमोहन घर पहुंचा तो साढ़े आठ बज रहे थे। कपड़े बदल स्नान किया, कमरों में अगरबत्ती जलाई, सरस्वती की मूर्ति के आगे नतमस्तक हो हाथ जोड़ा। फिर खाने चला गया। घंटे भर में सारे क मों से फुर्सत पा ऊपर अपने कमरे में आया—सड़क की ओर खुलने वाले दोनों बड़े-बड़े जंगले और आगे की छत की ओर के द्वार के दोनों पलड़े पूरी तरह खोल दिए। आकाश साफ हो गया था, पर हल्की-हल्की हवा के कारण बादल के टुकड़े रह-रहकर चंद्रमा को ढक लेते थे। चांदनी कभी-कभी फीकी पड़ जाती थी, अन्यथा रात में विशेष सफेदी आ गई थी। चंद्रमोहन आज अपने भीतर उमंग का अनुभव कर रहा था, मन एकदम हल्का लग रहा था। सितार बजाने के लिए मन मचल रहा था, साफ चिकने फर्श पर उसने छोटा-सा आसन बिछाया और सरस्वती की प्रतिमा को प्रणाम कर पूरब की ओर मुंह करके सितार बजाना आरंभ किया। पीरू बाबू द्वारा सिखाया हुआ स्वर का विस्तार, राग बागेश्वरी, विलंबित और द्रुतलय में। पहले चरण के अभ्यास में ही सफलता मिली, मन भीतर में हुलस गया। चंद्रमोहन रस में डूबने लगा। उंगलियां तेजी से चलने लगीं। सितार की मधुर लय उस शांत रात में हवा की लहरों पर तैरने लगी। देह की सुधि बिसार, लगभग डेढ़ घंटे तक सितार बजाता रहा। हाथ रोका तो साढ़े ग्यारह बज रहे थे। कुछ थकान-सी लगी तो उसने सितार रख दिया। मन को बेहद सुख और संतोष मिला। मन ही मन पीरू बाबू को धन्यवाद दिया, सरस्वती की प्रतिमा को प्रणाम कर आसन से उठ गया।

प्यास लग रही थी, सुराही से एक गिलास शीतल जल पी, सिर-हाने टेबुल लैंप रख, कहानी की कोई पत्रिका पढते हुए सो गया ।

तीन

सुबह छः बजे आखें खुलीं । मन बेहद प्रसन्न था, आज मां-बहन को ले आने के लिए घर जाना था । छुट्टी का दिन, इत्मीनान से नहा-धोकर, यूनिवर्सिटी रोड पर खाना खाने चला । एडल्फी की सड़क से जाने के बजाय, पीरू बाबू के घर की ओर मुड़ गया । अहाते का लकडी का पुराना फाटक खुला हुआ था । फुलवारी मे घुसते ही देखा, बरामदे के बगल वाले कमरे मे जंगले की ओर पीठ करके दीपा दीवार पर टगी लबे कोट वाली टैंगोर की बडी तस्वीर के आगे खडी है । रुखे खुले केश पीठ पर लटक रहे थे । आगे बढा, तो दीपा के मीठे कंठ से फूटा हुआ बंगला गीत का स्वर हवा में तैर रहा था । हल्के स्वर मे, तल्लीन होकर गाये जाने वाले गीत की कड़िया, एक के बाद एक निकल रही थी—

उइ आसान तलेर माटिर परे लुटिये रबो
तोमार चरन धुलाय धुलाय धूसर हबो ।
केनो आमाय मान दिये आर दूर राखो
चिर जनम एमनी करे भूलियो नाको
असम्माने आनो टेने पायो तवो
तोमार चरण······

बरामदे के तख्त पर बैठकर चंद्रमोहन चुपचाप गीत सुनता रहा। गीत समाप्त होते ही उसने आवाज लगाई, "घोपाल बाबू ?"

बरामदे मे खुलने वाले उस कमरे का द्वार खुला। सामने धुली हुई सफेद साडी में दीपा खडी थी, "अरे आप! नमस्कार, कब से बैठे है ?"

"थोडी देर हुई।"

"आवाज क्यों नही दी ?"

"सोचा, आपकी पूजा मे बाधा पडेगी।"

दीपा का मुह आरक्त हो आया, "मैं पूजा कहां कर रही थी? केवल पूजा का गीत गा रही थी।"

"तन्मयता मे गाया हुआ गीत ही तो पूजा है। यदि मन भगवान को समर्पित कर दें तो देह ही देवालय हो जाती है और उस कंठ से निकला हुआ प्रत्येक शब्द प्रार्थना नही तो है क्या ?"

ध्यान से चद्रमोहन की ओर ताक के दीपा बोली, "आप बगला जानते है ?"

"बोलना तो नही आता, समझ लेता हूं।

"लेकिन आप बैठिए तो, खड़े क्यों है ?"

"बाबा कहां हैं ?"

"बाबा और मां दोनों कही गए हैं, घटे भर बाद आएंगे।"

"आपको अकेली छोडकर ?"

"क्यो, अपने घर मे तो हूं।"

"मेरा तात्पर्य था कि कल आपकी तबीयत अचानक खराब हो गई थी तो आज आपको अकेली छोडना…।"

"यह तो जीवन के साथ लगा ही रहेगा। देह है, सुख-दुख भोगना ही होगा, तो किमी काम में गतिरोध क्यों डालें ? मा तो रुक रही थी, पर मैंने ही उसे भेजा। वहा जाना आवश्यक था। कर्नलगज के अपने दूर के संबंधी को पौत्र हुआ है। मां और बाबा दोनों को वहां लोकाचार के नाते जाना ही था। जब हम किसी की खुशी मे शामिल नहीं हो सकते तो हमारे दुख मे सम्मिलित होने कोई कैसे आएगा ?"

"दुख क्या बाट कर भोगा जाता है ?"

दीपा थोड़ा चुप लगा के बोली, "नहीं, आप ठीक कहते हैं लेकिन सामाजिक परपराओ के आधार ही ऐसे है कि सुख या दुख दोनो को अकेले भोगा नही जा सकता । दुख मे विशेषकर अपने लोगों से मिली सांत्वना के कारण उसका भार कुछ कम हो जाता है । वैसे, भीतर की पीडा के लिए तो मैं आपसे सहमत हू ।"

"आप क्यो नही गई ?"

"ऐसे मौकों की भीड-भाट मे मुझे घबराहट होने लगती है ।" कुछ रुककर उसने पूछा, "आपके लिए चाय बनाऊं ?"

"नही, मैं घर से अपने होटल जा रहा था खाना खाने, सोचा, आपकी तबीयत का हाल लेता चलू । इसी से इधर बढ़ आया ।"

दीपा थोड़ा भीतर मे छू गई । चद्रमोहन को निहारती हुई बोली, "पर, आप बैठें तो ।"

चद्रमोहन पूर्ववत् बैठ गया तो दीपा भी उसी तख्त के दूसरे सिरे पर बैठ गई ।

"यह कष्ट आपको कैसे हो जाता है ?"

"मैं खुद नही जानती ।"

"ये शुरु कैसे हुआ ।

"यह भी नही जानती । पहली बार हुआ तो नहाकर इसी तरह मैं बड़े शीशे के सामने कघी कर रही थी । तब से प्राय. जब कभी शीशे के सामने केश संवारने जाती हू तो तबीयत घबराने लगती है ।"

"अजीब बात है, शीशे के आगे गए बगैर काम भी नही चलता ।" चंद्रमोहन बोला, "औरतों को विशेषकर बाहर निकलने से पहले तो शीशे के सामने जाना ही पडता है ।"

"हा, और बिना प्रसाधन के औरतों का क्या महत्त्व ।" दीपा ही बोली ।

चंद्रमोहन ने धारा बदली, "आपने एम० ए० किस विषय मे शुरू किया था ?"

"हिंदी से ।"

बरामदे के तख्त पर बैठकर चंद्रमोहन चुपचाप गीत सुनता रहा। गीत समाप्त होते ही उसने आवाज लगाई, "घोषाल बाबू ?"

बरामदे में खुलने वाले उस कमरे का द्वार खुला। सामने धुली हुई सफेद साड़ी में दीपा खड़ी थी। "अरे आप। नमस्कार, कब से बैठे है ?"

"थोड़ी देर हुई।"

"आवाज क्यों नहीं दी ?"

"सोचा, आपकी पूजा में बाधा पड़ेगी।"

दीपा का मुंह आरक्त हो आया, "मैं पूजा कहा कर रही थी ? केवल पूजा का गीत गा रही थी।"

"तन्मयता में गाया हुआ गीत ही तो पूजा है। यदि मन भगवान को समर्पित कर दे तो देह ही देवालय हो जाती है और उस कंठ से निकला हुआ प्रत्येक शब्द प्रार्थना नहीं तो है क्या ?"

ध्यान से चंद्रमोहन की ओर ताक के दीपा बोली, "आप बंगला जानते है ?"

"बोलना तो नहीं आता, समझ लेता हूं।"

"लेकिन आप बैठिए तो, खड़े क्यों हैं ?"

"बाबा कहा है ?"

"बाबा और मां दोनो कहीं गए है, घंटे भर बाद आएंगे।"

"आपको अकेली छोड़कर ?"

"क्यों, अपने घर में तो हूं।"

"मेरा तात्पर्य था कि कल आपकी तबीयत अचानक खराब हो गई थी तो आज आपको अकेली छोड़ना…।"

"यह तो जीवन के साथ लगा ही रहेगा। देह है, सुख-दुख भोगना ही होगा, तो किसी काम में गतिरोध क्यों डालें ? मां तो रुक रही थी, पर मैंने ही उसे भेजा। वहां जाना आवश्यक था। कर्नलगंज के अपने दूर के संबंधी को पौत्र हुआ है। मां और बाबा दोनों को वहा लोकाचार के नाते जाना ही था। जब हम किसी की खुशी में शामिल नहीं हो सकते तो हमारे दुख में सम्मिलित होने कोई कैसे आएगा ?"

"दुख क्या बांट कर भोगा जाता है ?"

दीपा थोड़ा चुप लगा के बोली, "नहीं, आप ठीक कहते हैं लेकिन सामाजिक परपराओं के आधार ही ऐसे है कि सुख या दुख दोनो को अकेले भोगा नही जा सकता । दुख मे विशेषकर अपने लोगो से मिली सांत्वना के कारण उसका भार कुछ कम हो जाता है । वैसे, भीतर की पीड़ा के लिए तो मैं आपसे सहमत हू ।"

"आप क्यों नही गई ?"

"ऐसे मौकों की भीड-भाड मे मुझे घबराहट होने लगती है ।" कुछ रुककर उसने पूछा, "आपके लिए चाय बनाऊ ?"

"नही, मैं घर से अपने होटल जा रहा था खाना खाने, सोचा, आपकी तबीयत का हाल लेता चलू । इसी से इधर बढ आया ।"

दीपा थोड़ा भीतर मे छू गई । चद्रमोहन को निहारती हुई बोली, "पर, आप बैठें तो ।"

चद्रमोहन पूर्ववत् बैठ गया तो दीपा भी उसी तख्त के दूसरे सिरे पर बैठ गई ।

"यह कष्ट आपको कैसे हो जाता है ?"

"मैं खुद नही जानती ।"

"ये शुरू कैसे हुआ ।

"यह भी नही जानती । पहली बार हुआ तो नहाकर इसी तरह मैं बड़े शीशे के सामने कघी कर रही थी । तब से प्राय जब कभी शीशे के सामने केश संवारने जाती हू तो तबीयत घबराने लगती है ।"

"अजीब बात है, शीशे के आगे गए बगैर काम भी नही चलता ।" चंद्रमोहन बोला, "औरतो को विशेषकर बाहर निकलने से पहले तो शीशे के सामने जाना ही पडता है ।"

"हा, और बिना प्रसाधन के औरतो का क्या महत्त्व ।" दीपा ही बोली ।

चद्रमोहन ने धारा बदली, "आपने एम० ए० किस विषय से शुरू किया था ?"

"हिंदी से ।"

हिंदी से।

आपको विस्मय क्यों हो रहा है?

'आप हिंदी इतनी शुद्ध बोल लेती है इसी पर मुझे अचरज हो रहा था। हिंदी मे एम० ए० करने की बात सुनी तो यह अचरज थोड़ा बढ़ गया।

आप लोग अच्छी तरह बंगला लिख-पढ़ लेते हैं, तो हमें खुशी होती है। हम हिंदी लिखें तो आपको विस्मय हो रहा है। हम तो जन्म से ही हिंदी प्रदेश में रहे हैं मातृभाषा हम लोगों की हिंदी ही है। मेरे तो घर मे भी अधिकतर हिंदी बोली जाती है। बी० ए० मे मेरे नंबर हिंदी मे फर्स्ट क्लास के थे।

यह मेरे लिए विशेष खुशी की बात है। सोचता था बंगला बोलना मुझे तो आता नहीं आप लोगो के साथ मेरा निर्वाह कैसे होगा?"

बिना उत्तर दिए दीपा चुप रही तो चन्द्रमोहन ने टोका, "मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा?"

'कुछ तो कहा ही। महज मन के नेह-छोह के आगे भाषा कब व्यवधान रही है। आपने किस विषय मे एम० ए० किया?"

"अर्थशास्त्र मे।"

"नौकरी तो मिल गई, अब मुंसफी मे बैठने का इरादा है। कानून भी पढ़ लिया है? और सितार अलग से सीखना चाहते हैं?"

"हां, विरोधी तत्त्वों के सपुंजन का नाम ही मनुष्य है। जिंदगी में सीधी लकीर शायद विरले ही पाते हैं।"

"आगे आपके इरादे क्या हैं?"

"आगे की बात वे कहते हैं, जिनका भविष्य होना है। सोचती थी, एम० ए० करके रिसर्च करती, डाक्टरेट लेती, लेकिन एम० ए० का पहला साल ही करके ठप्प। एम० ए० की ही डिग्री नहीं ली तो डाक्टरेट के सपने कौन देखे? प्रारब्ध को क्या कहा जाए। बाबा कह रहे थे, आपकी एक छोटी बहन है।"

"हां, उसे और मा को ही तो लिवाने आज जा रहा हूं। यहीं एम० ए० मे नाम लिखाना है, आया था कि आज

सितार सीखने नही आऊगा । आप बता दीजिएगा ।"

"क्या ऐसा नही हो सकता कि भोजन के बाद, आप वापस भी इधर से ही हो । मै तो रोकती, लेकिन आपने अभी भोजन नहीं किया । ससार मे भोजन ही सर्वोपरि है ।"

चद्रमोहन हसा, "जीवित रहने के लिए तो है ही ।" हंसते हुए चंद्रमोहन के मोती जैसे सफेद दातो की कतार झलक गई । बडी-बडी आम की फाक जैसी आखो वाले मोहक चेहरे पर बहुत ही प्यारी और पवित्र हसी भर गई ।

दीपा मत्रमुग्ध हो उसे देखती ही रह गई । गध, रूप, रस से भरे हुए सरोवर मे खिले उस पारिजात को, एकटक···।

चंद्रमोहन चलने के लिए उठ गया तो दीपा बोली, "पर, अपने आज न आने की सूचना आप स्वत· दे जाएं तो अधिक अच्छा होगा। यू आप न आ पाएंगे तो मै कह दूगी, पर आपकी प्रतीक्षा बाबा करेंगे, वे अनुशासनप्रिय गुरु है । उनकी इस मर्यादा का सावधानी से निर्वाह करना होगा । ये अपनी ओर से मैं आपको सूचना दे रही हूं। कलाकार भावुक होता है, फिर जीवन के चौथे चरण में पांव रख चुका कलाकार तो और भी कोमल हो जाता है । इतनी जल्दी, यह सब आपसे मुझे नही कहना चाहिए था, किंतु बाबा के स्वभाव को समझने मे आपकी थोडी सहायता करना आवश्यक समझा । आपके हाथ की सफाई पर वे रीझ गए है । उनसे आपको यदि कुछ लेना है, तो पहले उन्हें आदर और स्नेह देना होगा । वे आदर और स्नेह के ही भूखे रहते हैं । बाबा और मा दोनो आपको अपने बीच पा बहुत प्रसन्न होते हैं । नही जानती, पूर्वजन्म का आपसे कौन-सा संबंध था ।"

बोलती हुई दीपा के चेहरे का उतार-चढाव, भावभंगिमा, चंद्रमोहन चुपचाप देखता रहा । जब दीपा चुप हो गई तब भी चंद्रमोहन उसे वैसे ही निहारता रहा तो दीपा हल्की-सी मुस्कराहट से बोली, "इस विषय में मुझे अब और कुछ भी नही कहना है ।"

"तब मैं जा सकता हूं और जितना आपने मुझसे कहा, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं ।" खडे होकर चद्रमोहन ने दोनों हाथ जोड़े तो

दीपा ने भी खड़ी हो दोनों हाथ जोड़ चंद्रमोहन के नमस्कार का प्रत्युत्तर दिया।

बरामदे से सीढ़ी से उतरकर चंद्रमोहन फुलवारी से होते हुए अहाते के बाहर निकल गया, लेकिन दीपा उसे जाते हुए देखती रही, तब तक, जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो गया। उसके बाद वह अपने कमरे में गई भीतर से द्वार बंद किया और आलमारी से अपनी वायलिन निकाल तख्त पर बैठकर बजाने लगी। कोमल, नरम उंगलियों से पकड़े हुए गज से वायलिन पर राग पीलू शुरू किया। भीतर से भरी हुई दीपा हल्के-धीमे स्वर में राग पीलू उभारने लगी। राग मन-प्राणों में भरने लगा। दीपा रस में सराबोर होने लगी।

लगभग आध घंटे के बाद पीरू बाबू पत्नी के साथ बेटी के लिए चिंतित मन से लौटे, लेकिन कानों में वायलिन की आवाज पड़ी तो बोले, "दीपा प्रसन्न लग रही है, राग पीलू बजा रही है, आज क्या है जो वायलिन लेकर बैठ गई ?" बरामदे में पहुंच कर श्रीमती घोषाल के आवाज लगाने पर जब उसने द्वार खोला तो उन्होंने पूछा, "भालो तो ?"

"एकदम भालो मा, तुमी आशंकित होमे गेलो की ?"

शाम को चार बजे चंद्रमोहन अटैची लिए हुए घर आया तो पीरू बाबू बरामदे में ही मिल गए, "अरे, घर जा रहे हो क्या ?"

"हां, आज पांच बजे वाली गाड़ी पकड़ने जा रहा हूं, मां और बहन को ले आने। दो दिन की छुट्टी ली है।"

"ओ, बहुत खूब, अवश्य जाओ, मां को ले आओ। यूनिवर्सिटी तो खुल गई है, लेकिन लड़कों के उपद्रव के मारे तो पढ़ाई नहीं हो रही है, और इंदिरा सरकार भी उनका दमन करने पर लगी है। सुना है छात्रों की क्लास में घुस-घुस कर के पुलिस वालों ने पिटाई की है। तुम कह रहे थे कि बहन का नाम लिखाना है।"

"हूं, नाम तो लिख गया, मैंने फीस भी जमा कर दी। पढ़ाई आज नहीं तो कल चालू होगी ही।"

भीतर से मां के साथ दीपा भी निकल थी। चंद्रमोहन चलने

के लिए घोपाल वाबू के पाव छू, दीपा की मा के पावों की ओर झुका तो वे दो कदम पीछे हट गईं और चंद्रमोहन के कंधे पकड़ती हुई वोली, "सुनो वेटा, मेरे पाव मत छुओ। मैं तुम्हे ऐसे ही आशीष देती हूं कि तुम खूब फलो-फूलो, बस मेरी आंखो के सामने रहो, मैं इतना ही चाहती हूं। उस जनम मे न जाने कौन-सी चूक हुई थी कि मेरा एकमात्र पुत्र चला गया। तुम्हे देख मन को बड़ी सात्वना मिलती है। पाव छूने के लिए घोपाल वावू काफी है। जितना उन्हें सम्मान देते हो, उतना पर्याप्त है, मैं तो उतने से ही जुडा जाती हू, क्योकि उनके आधे की हिस्सेदार हूं।" श्रीमती घोपाल ने प्यार से चंद्रमोहन के सिर पर हाथ फेरा और बड़ी ही वत्सलता से उसे निहारकर उसकी पीठ थपथपाई। वह बरामदे से वाहर हो गया। जब अहाते के वाहर हो मुख्य सड़क की ओर मुड़ा तो दीपा की मा वोली, "वडा प्यारा लडका है। वह मां धन्य होगी जिसने ऐसा पुत्र जना है। जैसे गगाजल हो, सुखद, शीतल, पावन और निर्मल...।"

चौथे दिन सुबह मां और बहन शारदा को लेकर चंद्रमोहन इलाहाबाद वापस आ गया। घर को देखकर मां और शारदा दोनो खुश हुईं। इतनी जल्दी और इतना अच्छा मकान आजकल शहर में मिल गया, इस वात से शारदा की मा बेहद खुश थी। चद्रमोहन ने मकान मिलने की सारी कथा मां को बता दी।

शाम को दफ्तर से लौटने के बाद सितार ले पीरू वावू के घर पहुंचा। दीपा आगे की फुलवारी की क्यारी मे से घास निकाल रही थी। पीरू बाबू बरामदे में बैठे हुए थे और बगल मे उनकी पत्नी भी थी। चंद्रमोहन ने पीरू बाबू के पैर छू प्रणाम किया, मां को हाथ जोड़ा तो वह आशीष देती बोली, "मा-बहन को ले आए ?"

"हां मां, ले आया। आज सुबह ही तो आया हूं। देर होने से बाहर-बाहर ही दफ्तर चला गया था।"

"चलो तुम्हें भोजन का आराम हो गया।"

सब आप लोगों की कृपा है।"

"भीतर से शीतलपाटी लेकर बैठो।" पीरू बाबू बोले, "अपनी पकड़ सुनाओ। देखूं स्वर विस्तार में कहां तक पहुंचे?"

दीपा की मां ही उठ के भीतर से शीतलपाटी ले आईं। जंगले के पास बिछा, फुलवारी की ओर मुंह करके चंद्रमोहन सितार ले बैठ गया। दीपा क्यारी में खुरपी चलाती रही। चंद्रमोहन ने सितार बजाना आरंभ किया।

अलाप सुनते ही पीरू बाबू उछल गए, "वाह बेटे! क्या कहना, ऐसी पकड़। चंद्रमोहन प्रसन्न हो हाथ चलाने लगा। दीपा फुलवारी में से बरामदे में चली आई और खंभे से कंधा टेककर खड़ी हो गई। सराहना से पीरू बाबू ने बेटी की ओर देखा। आंखों से ही सराहना करके दीपा भीतर हाथ धोने चली गई।

लगभग पैंतालीस मिनट सितार बजाने के बाद चंद्रमोहन ने हाथ रोका तो पीरू बाबू ने उठकर उसकी पीठ ठोकी। सिर-माथे पर प्यार से हाथ फेरा फिर तख्त पर बैठकर बीड़ी सुलगाते हुए बोले, "भगवान ने चाहा तो तुम बहुत जल्दी मुझसे आगे निकल जाओगे। ईश्वर करे कि तुम जल्दी आगे निकलो, मेरी हार्दिक इच्छा है।"

चंद्रमोहन ने झुककर कृतज्ञ भाव से उन्हें हाथ जोड़े, फिर सितार पर खोल चढ़ाते हुए बोला, "दीपा की तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है बेटा, अच्छी है।" श्रीमती घोषाल बोल पड़ीं, "उसके बाद से तो कोई 'अटैक' नहीं हुआ। डाक्टर भी कह रहा था कि हालत बहुत अच्छी है।"

"दवा तो चल ही रही होगी?"

"हां, दवा तो आती है, पर डाक्टर कहता था—इसमें दवाई विशेष काम नहीं करती, जितना कि मानसिक उपचार। रोगी को अधिक से अधिक प्रसन्न और चिंतामुक्त रहना चाहिए।"

"हां, डाक्टर ठीक ही कहता है पर दीपा को यह कौन समझाए! शायद उन्हें एम० ए० न करने का दुख है। लेकिन मैं कहता हूं यूनिवर्सिटी की एक और डिग्री ले ही लेने से अंतर क्या पड़ जाता है?"

"आहा, ठीक कहते हो बेटा, यही बात तो मैं भी उससे बोलती हूं कि हर किसी को अपने भाग्य से संतोष करना चाहिए। जीवन मे सभी को सभी कुछ नही मिलता और पढाई-लिखाई का भला संसार में कही अंत है ? मैं तो कहती हूं कि तबीयत ठीक हो जाए तो आगे फिर नाम लिखा लेना।"

तभी दीपा चार कप चाय बनाकर एक थाल में रखकर ले आई। एक बाप, एक मां को दे चंद्रमोहन के आगे ले गई तो चंद्रमोहन हाथ जोड़ते हुए बोला, "मैं तो घर मे चाय पीकर आया हूं।"

"एक कप और पी लेने में कोई हर्ज नही है।" दीपा ने धीमे से कहा।

चंद्रमोहन ने दीपा की ओर देखा तो उसे चाय का प्याला ले ही लेना पडा।

दीपा की आखों मे कृतज्ञता का हल्का-सा भाव आया। वह स्वयं भी प्याले की चाय ले मां के पीछे खड़ी हो पीने लगी।

घर आया तो रात को भोजन करते समय मां ने सविस्तर नौकरी का हाल सुन के पूछा, "सितार सीखने कहा जाते हो ?"

"पीरू बाबू के ही यहा तो मां।"

"वे क्या कुछ इसके बदले में लेंगे।"

"नही, नहीं मां, तुमने भी क्या सोचा, वे एक गुनी आदमी हैं, वे चाहते हैं कि उनका गुन कोई उनसे सीखे, वे तो खुद एक परोपकारी व्यक्ति है।"

"तुझे कही न कही कोई सहायक मिल जाता है, लेकिन मुझे यह नौकरी नही रुचती। नौकरी वाली परीक्षाओं मे बैठना तो है ?"

"केवल मुंसफी ही मेरे मन में बसी है मा, यह दफ्तर भी बुरा नही है।"

"हा, सोचती हूं कि अगर शारदा की बात लखनऊ वाले पक्की कर लेते तो अगले साल इसका ब्याह कर देते। कम से कम इस परेशानी से तो मुक्ति मिल जाती।"

"वे लोग शायद मान लें पर, उनकी शर्त है कि लड़की एम० ए०

पास जरूर हो।"

"ब्याह अगर वे लोग, एम० ए० के पहले साल के बाद कर लेते हैं तो दूसरा साल तो ब्याह के बाद भी हम पूरा करा देंगे। देखें भगवान की क्या इच्छा है?"

"इधर मेरी छुट्टी भी तो नहीं है मा।"

"हा यह तो ठीक है बेटा, लेकिन इसी मे तो सभी कुछ करना होगा। किसी शनिवार की रात वाली गाडी से चले जाओ और इतवार के दिन-भर बातचीत करके सोमवार की सुबह वापस लौट आओ।"

चद्रमोहन चुप रहा तो मा बोली, "क्या यह सभव नहीं है?"

"सभव-असभव की बात मैं नहीं सोचता मा, शारदा का मन देखता हू, वह चाहती है कि एम० ए० कर लेने के बाद ही यह शादी-ब्याह हो तो अच्छा है।"

मा चुप लगा गई तो चद्रमोहन ने ही टोका, "क्यो, कुछ कहना चाहती हो?"

"मैं अकेली चाह करके क्या कर सकती हू बेटे, सभी कुछ तुम लोग को करना है और उसी हिसाब से सभी कुछ होना है। मैं तो इतना ही कह सकती हू कि जीवन का अनुभव भी विशेष माने रखता है, जो तुम लोगों को अभी बिलकुल नहीं है, कम से कम इस पहलू का। जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं। अपने दोनो भाइयो का उदाहरण तुम्हारी आखो के सामने है। कब, कौन, क्या, कर बैठे कहा नहीं जा सकता, इसलिए सोचती हू कि तुम लोग एक राह से लग जाते तो इस मन को सतोष रहता।"

"इतना चिंतित मत हुआ करो मां, भगवान पर भरोसा रखा करो सभी कुछ वही नियमित करता है, तुम्ही तो कहती हो, दूसरो को सीख देती हो। अपनी बार भूल जाती हो? मै अगले शनिवार को ही चला जाऊगा। यह मत सोचो कि शारदा के ब्याह की मुझे चिंता नहीं है, करना मुझी को सब-कुछ है, और वह सभी तुम्हारी इच्छानुसार ही होना है, तुम मन मे धीरज रखा करो।"

मा भीतर से प्रसन्न हो गई।

चद्रमोहन उठ गया ।

जिंदगी चल निकली । दफ्तर-घर, शाम को सितार सिखाना, रात को मुसफी की तैयारी मे चद्रमोहन नियमित हो जुट गया । लगभग पद्रह दिनो के बाद जब सुबह दस बजे दफ्तर पहुंचा तो सेक्शन अफसर बोले, "मिस्टर चद्रमोहन, यू हैव ट्रासफर्ड फ्रॉम दिस सेक्शन ।"

"कहां दादा ?"

"वर्क्स ऑडिट कोआर्डिनेशन । वहा जाकर रिपोर्ट करिए, लीजिए ये ट्रांसफर आदेश ।" और श्री पन्नालाल ने चद्रमोहन को तबादले का आदेश पकड़ा दिया ।

"कमाल है, मर-मर के यहा काम सीखा और अब ट्रासफर्ड ।"

"की मिस्टर चद्रमोहन, इस दफ्तर का यही तो खूबी है । कहो कि जान बची तो लाखो पाए ?" मोटू दा बोले ।

"कस वकील ?"

"हा पाठक जी ?"

"चद्रमोहन बदल गए यार ।"

"बहुत अच्छे आदमी रहे पाठक जी ।" वकील बोले ।

"मर गए क्या यार ?" चंद्रमोहन बोला ।

"इस सेक्शन से तो मर ही गए ।" वकील बोला ।

"तुम अमृत पीकर आए हो क्या ?"

"इनको दूसरी जगह पूछेगा कौन यार ।" दाबे बोला, "ऐसा कोढी आदमी दूसरे सेक्शन में भला चल सकता है ?"

"अच्छा यारो, राम राम !" चंद्रमोहन ट्रासफर आर्डर ले चल पड़ा । वर्क्स ऑडिट कोआर्डिनेशन डब्लू नौ सेक्शन मे पोस्ट किया । वहां के भी सेक्शन अफसर एक बंगाली थे, मि० चटर्जी । इस आडिट सेक्शन मे जब चंद्रमोहन पोस्टिंग आर्डर लेकर पहुंचा तो सेक्शन अफसर की बगल मे बैठे हुए लगभग पचपन साल के बड़ी दाढ़ी वाले मौलाना फकरुद्दीन खां चंद्रमोहन के हाथ से कागज पकडकर बोले, "लीजिए चटर्जी

बाबू, एक नए आदमी आ गए मि० चंद्रमोहन।"

चश्मे के उधर से मि० चटर्जी ने चंद्रमोहन की ओर ताका, "हिया आइए तो मिस्टर।" पोस्टिंग आर्डर पढ़कर चटर्जी बोले, "मि० चंद्र-मोहन, कितने सालो का नौकरी हाय?"

"साल! अरे दादा, माह पूछिए, अभी तो पहला महीना चल रहा है।"

"ओह ओ, यार डब्लू० एम० वाले सब 'रा हैंड' मेरे ही सेक्शन में भेज देते हैं। इसके अगाडी कहा था।"

"जी० डी० डाक सेक्शन।"

"ओह, कोपिलदेव फाटक के साथ, यार तब तो तुम ट्रेंड होगा, एक-दम एक्सपार्ट!"

"किस चीज मे दादा?" चद्रमोहन बोला।

"फाकीबाजी में।"

"अभी तो सीख रहा था कि बदली हो गई दादा।"

"बाकी हिया सीख जाएगा। हिया भी एक से एक लोग हैं, मि० फकरुद्दीन से तुम मिल ही चुके। बाकी लोगों से पहिचान होगा ही। खैर ग्रुप पाच खाली है, आप उसी मे काम करिये और काम आपको मि० भोटनागर सिखाएगे। अरे, भोटागर!"

"हां दादा।"

"अरे भाई, मि० चोंद्रोमोहन को शिष्य बनाना होगा। यह स्मार्ट मालूम देता है, ऑडिट करना सिखाओ यार, लेकिन लपक ऑडिट नेही भाई। जाओ मि० चोंद्रोमोहन, भोटनागर के पास जाओ, और यह हाजिरी का किताब, इस पर अपना नाम लिख के 'साइन' कर दो।"

रजिस्टर मे नाम लिख, दस्तखत कर चद्रमोहन अपनी सीट पर बैठा। फिर सेक्शन के लोगो से परिचयात्मक बातें करता रहा।

आज चद्रमोहन दफ्तर आया तो सेक्शन अफसर मि० चटर्जी बोले, "अरे भाई चोंद्रोमोहन।"

"हा दादा ।"

"यार हिया आओ, कभी-कभी हमारे पास भी बैठा करो। तुम तो सीट पर कभी मिलते ही नही।"

"वाह दादा, वाह ! मेरा काम भी कुछ वाकी है कि बस आप इल्जाम लगाना जानते हैं।"

"बेशक, बेशक। यह बात तो हम मानता है, तुम्हारे ग्रुप का काम एकदम अपटूडेट है। यही मैं कल बी० ओ० मे तुम्हारी प्रशंसा मे बोला था कि इस लड़के ने इतना जल्दी काम पिकअप कर लिया है कि क्या कहने। यही तो मैं भी बोलता हूं यार कि अपनी सीट का काम फिट रखो, फिर चाहे जितना फांकीबाजी करो। हे-हे-हे, क्यो मियां फकरुद्दीन।"

"अमां दादा, इन लौंडो के आगे हमेस हामी भरवाते हो ? ये तजुर्बे बताने के लिए तुम्ही काफी हो।"

चटर्जी हंसा, "स्साला, यह भी क्या दोफ्तर है। एक से एक फांकीबाज, एक से एक ट्रिकबाज, एक से एक विद्वान्, कोवी, लेखक, म्युजिशियन, चोर, डकैत, सब इस दफ्तर मे भरे पडे है। जुआरी, शराबी-कवाबी सब साला भरा पडा है। अच्छा चोंद्रोमोहन, यार मैं चाहता हूं कि हेड थ्री का काम तुम सीखो, यू आर इनटेलिजेंट मैन। इसमें घूम-घूमकर भी काम करना पडता है। तुमको वही अच्छा भी लगता है, सो यार···।"

"अरे दादा ! अभी एक काम तो पूरी तरह सीख नही पाया, दूसरा लाद दिया।"

"ओय बाबा, क्या बोला—लादा तो गदहा पर जाता है। यार, यू आर याग हैंडसम मैन। क्यो मिया ?"

"क्यो नहीं, क्यों नहीं।" फकरुद्दीन बोले।

"यार चोंद्रोमोहन, तुम पहले अपना शादी करो, तुमको जरूरत नेही पड़ता ? देखो मियां फकरुद्दीन के रिटायरमेंट में केवल पांच साल हाय और इन्होंने अभी हाल मे तीसरा शादी किया हाय तो, तुम तो अभी नौजवा न हाय।"

"अभी शादी किया है ?" चंद्रमोहन अचरज में बोला।

"वाह ! आश्चर्य क्यों करता है बाबा। क्या हम मिथ्या बोलता हाय, तुम खुद मौलाना से डिटेल में बात करो, लेकिन हीयां नेहीं, इस बारे में इनके घर पर जाकर बात करना होगा। क्योंकि इनके घर पर तुम हर तरह से हैल्पफुल भी साबित होगा।"

"क्या चटर्जी बाबू, आप भी इन लौंडों से मजाक करते रहते हैं।"

चटर्जी कुटिल मुस्कराहट से बोला, "यार हम क्या बोला, और बोला तो क्या कुछ गोल्ती बात बोला ?" सेक्शन में ठहाका लगा।

"अच्छा यार चोंद्रोमोन, अब काम का बात सुनो—बगल के सेक्शन मे बाबू साहब बैंठते हैं ?"

"कौन बाबू साहब ?"

"अरे, कौन बाबू साहब, डब्लू० ए० डी० में तो बस एक ही बाबू साहब हाय—बाबू कोमलाकांत। हेड थ्री का मास्टर, तुमको इतना दिन आय को हो गिया और बाबू साहब को नहीं चीन्हा। यह फाइल ले लो और उनके पास जाओ। पोरिचय प्राप्त कोरो। उन्हीं से यह काम भी सीखना होगा। लेकिन पहिले उनका शिष्य बनना होगा। 'डिसायपुल' मोस्ट फेथफुल डिसायपुल।" फिर उंगली दिखाते हुए बोले, "वो देखो, बाबू साहब अपनी सीट पर बैठे है। पोपले मुह में नकली दांत, धसी आखें, हाथ की टेढ़ी उंगलियों में हरदम बीड़ी, लेकिन चेहरे पर हर घड़ी हंसी। जाओ, तुम्हारे ही जैसे नौजवानों से बाबू साहब खुश रहते है।"

चंद्रमोहन बाबू कमलाकांत के पास पहुंचा। लगभग पचपन साल के बाबू कमलाकांत बीड़ी सुलगा रहे थे। चंद्रमोहन करीब जा बोला, "बाबू साहब, नमस्कार।"

"जयराम जी बाबू साहब, कहिये।" बाबू साहब ने कहा।

"आपके ही पास आया हूं बाबू साहब।"

"तो बैठिए बाबू साहब। मेरे पास तो लोग दिन-भर आते रहते हैं, आपने कैसे तकलीफ की ?"

"कुछ पूछने, कुछ सीखने बाबू साहब।"

"वाह् बाबू साहब, तो कौन-सी नयी बात लेकर आए है। दिन-भर लोग पूछने ही तो आते है मेरे पास। और मेरे पास धरा क्या है, वे ही इलायचीदाने। यहा बैठकर दिन-भर इलायचीदाने ही तो बाटता रहता हूं। बोलिए, आपको कितने दाने चाहिए ?"

"आप जितना दे सकें बाबू साहब।"

बाबू साहब ठठाकर हंसे, "वाह् बाबू साहब, यह तो आपने आते ही शह दिया—अच्छा खैर, कोई बात नही, आपका शुभ नाम ?"

"चंद्रमोहन, डब्लू० नौ सेक्शन से आया हू।"

"कहां तक पढ़े है बाबू साहब ?"

चद्रमोहन उत्तर देने मे थोड़ा झिझका तो, बाबू साहब बोले, "हुजूर आला, मैंने अर्ज किया कि आप कहा तक पढे है ?"

"एम० ए०, एल-एल० बी० पास हू बाबू साहब।"

"ओह !" बाबू साहब फिर हसे, नकली दातो की क्तार चमक गई, फिर बायें हाथ की अगुलो से सदा रिसने वाली बाई आंख के कोने का पानी पोछते हुए बोले, "बाबू साहब, आप मेरा मतलब नही समझे।"

"यानी।" चंद्रमोहन हल्की विस्मयता मे बाबू साहब को ताकता रहा।

"बताइए बाबू साहब बिना पैलगी के कहीं आशिष मिलता है ?"

"एकदम नही। लेकिन बाबू साहब, मा-बाप तो बिना पैलगी के ही अपनी सतान को आशीष देते है।"

"वाह् बाबू साहब, आप तो बैठकबाज मालूम पडते है।"

"यानी ?"

"यानी नहले पर दहला रखने वाले बाबू साहब।"

"अरे नही बाबू साहब !" चद्रमोहन हाथ जोडते हुए बोला, "आप बड़े है बाबू साहब।"

"मेरा मतलब था कि आपने एकाउंट कोड कहा तक पढ़ा है ?"

"एकाउट कोड ! यह क्या होता है बाबू साहब।" चंद्रमोहन बोला।

''एराउट रोड का नाम नहीं सुना। 'हेड थ्री' का काम सीखने चले है। आपकी सर्विस कितने सालों की है?''

'साल नहीं बाबू साहब केवल महीनों की।''

''अरे! और आप हेड थ्री का काम सीखने आ गए। चटर्जी ने भेजा है। यानी अपनी जान बचाना है। आइए चलिए, आपके सेक्शन चलना है। जरा इनसे दो बातें तो कर लें, फिर गाड़ी आगे बढ़ेगी।''

आगे-आगे बाबू कमलाकान्त, पीछे-पीछे चन्द्रमोहन सेक्शन पहुंचे। देखते ही चटर्जी चैतन्य हुआ, 'आइए बाबू साहब।''

'बाबू साहब तो आ ही गए चटर्जी साहब, लेकिन आपके सेक्शन के खिलाफ हेड थ्री में बहुत भारी बैलेंस आउटस्टैंडिंग है, और डी० ए० जी० ने उन सभी सेक्शन वालों की लिस्ट मांगी है जिसके खिलाफ हैभी बैलेंस है। आज तो हमको रिपोर्ट करना ही होगा।''

''अरे, बाबू कोमलाकान्त, हमारा रिपोर्ट क्यों करेगा, हम तो आपको आदमी दिया।''

''खाली आदमी से क्या होगा, आदमी के साथ औरत भी तो चाहिए चटर्जी बाबू, नहीं तो आदमी निशान कहां लगाएगा, बैलेंस कैसे क्लियर होगा?''

''क्या मोजाक करते हो यार कोमलाकान्त, बुढ़ापा आया, अब तो आदत छोड़ो।''

''आदत या नौकरी चटर्जी बाबू।''

''अरे बाबा, नौकरी छोड़ने को हम बोलेगा?''

''तो बिना आउटस्टैंडिंग आइटम्स के लिस्ट के, बैलेंस कैसे 'क्लियर' होगा? लिस्ट कहां है?''

चटर्जी ने अपना माथा ठोका, ''बाप रे, गोजब कर दिया बाबू कोमलाकान्त, ये क्या कहते हो?''

''कहना क्या है—जैसा तेरा दाल-भात, वैसा मेरा फातिहा। क्यों मियां फखरुद्दीन!''

सेक्शन में ठहाका लगा तो चटर्जी बोले, ''तो चोंद्रोमोहन को इसी-लिए तो दिया है कि इनसे लिस्ट बनवाइए।''

"यह देखिए, हम लिस्ट बनवावें कि आप अपने हर डिवीजन के फार्म ७१-७२ से देखकर लिस्ट तैयार करिये और तब मेरे पास एडजस्टमेंट के लिए आइए चटर्जी बाबू, यह हेड थ्री है, लपक ऑडिट नहीं है। इसमें उंगलियां टेढ़ी हो जाती हैं, देखते है न मेरी उंगलिया। और भेजा भी तो एकदम इस मासूम लडके को, जो आज है कल किसी कंपीटीशन मे आया, नौकरी छोड़ के चल देगा। कमलाकांत की सारी मेहनत बेकार। अरे भाई, आदमी दो तो पांच-सात सालों की सर्विस वाला, जिसे अब इस दफ्तर मे टिकना हो।"

"बेशक, बेशक बाबू साहब ." फखरुद्दीन बोले।

चटर्जी जल गया—तो ठीक है मिया फखरुद्दीन, आपको ही काम करना होगा।"

"यह लीजिए।" फखरुद्दीन मिया बोल पडे।

बाबू साहब हंसते हुए बोले, "या तो उगता हुआ, या डूबता हुआ, तीन साल रिटायर होने को है, मिया फखरुद्दीन से हेड थ्री का काम लोगे बडे बाबू, इस उम्र मे यह काम!"

"इसी उम्र में तो तीसरी शादी किया है…"

"वह अपने लिए थोडे किया है चटर्जी बाबू।"

सेक्सन मे फिर ठहाका लगा।

बाबू कमलाकांत ने जेब से माचिस और बीडी का बंडल निकाला। एक चटर्जी को दिया, दूसरा अपने मुह मे लगा सुलगा के एक कश लेते हुए बोले, "एक किस्सा याद आ गया यारो, अगर इजाजत हो तो अर्ज करूं।"

"जरूर बाबू साहब, जरूर।" सेक्शन के सभी लोग बोल पड़े।

"क्यों मिया फखरुद्दीन, इजाजत है?"

"अरे बाबू साहब, हमसे आप एक साल सीनियर है। आपको इजाजत हम देंगे, लेकिन चला डालिए ईंट-पत्थर, देखा जाएगा।"

बाबू साहब मुस्कराते हुए बोले, "एक राहगीर था, उसे कहीं जाना था। उम्र लगभग पच्चीस-तीस की होगी। पैदल चलते-चलते एक गाव के पास सांझ हो गई तो उसने सोचा, अब रात को यहीं रुक जाना

चाहिए। गाव के बाहर एक छोटी-सी झोपड़ी थी, वहा चिराग जल रहा था। वहा जाकर देखा कि लगभग तीस साल की हीं एक अच्छी-भली स्वस्थ औरत झाड़ू लगा रही है। उससे कहा, 'मैं राहगीर हूं, मुझे रात-भर को रुकने की जगह चाहिए। यदि आपकी आज्ञा हो तो यहीं रुक जाऊं। इस महुए के पेड तले मैं बाटी-बाटी सेक लूगा।'

औरत ने बनखी स ताक कर पूछा, 'और जाना कहां है?'

'यही जो सामने पहाड दिखाई पड रहा है उसी को लांघ के उस पार जाना है, उस पार। मै बहुत तडके चल भी दूगा।'

'अच्छी बात है रुक जाओ। पर खाना मेरा ही खाना होगा। तुम अपना नही बना सकते क्योंकि तुम मेहमान हो। लो यह बाल्टी-लोटा और कुए से जाकर एक बाल्टी पानी ले आओ। हाथ-मुह भी धोते आना, फिर मै खाना बनाऊगी। वैसे कौन जात हो?'

'ब्राह्मण हू।'

'पडित, तब तो बहुत अच्छा है पडित महाराज, उठा लो यह बाल्टी, रस्सी और लोटा।

पडित जी ने बाल्टी, रस्सी और लोटा उठाया, प्रसन्न मन से कुएं पर जाकर हाथ-मुह धोया और एक बाल्टी पानी ले आए। फिर उस औरत ने खाना बनाकर पडित जी के आगे रखा। थके-मादे पडित जी ने प्रेमपूर्वक भोजन किया। पडित जी को खिलाकर, औरत ने स्वयं भी खाया और खाट बिछाती हुई बोली, 'यहां एक ही बात की थोड़ी असुविधा होगी पडित जी।'

'क्या? अब असुविधा किस बात की। इतना बढिया आपने भोजन कराया और सोने के लिए खाट दे रही है।'

'यही तो समस्या है।'

'समस्या क्या है?'

'खाट मेरे पास एक ही है, मुझे जमीन पर सोने की आदत नही है, और आप मेहमान ठहरे, आपको जमीन पर मै सोने नही दू।'

'तब कैसे होगा?' पडित जी थोडी परेशानी मे पडकर बोले, 'मुझे जमीन पर सोने की आदत है, मैं सो रहूगा।'

'सो तो ठीक है, पर मैं तो मेहमान को जमीन पर नही सोने दूंगी।'

'तब कैसे होगा ? मैं आपके साथ एक खाट पर कैसे सो सकता हूं ?'

'इसमे हर्ज क्या है ?'

राम राम, ना ना, यह मुझसे नही हो सकता ?'

'तब ?'

'तब कोई उपाय लगाइये, कोई और तरीका सोचिये, जिससे बांध और बन दोनो की रक्षा हो जाए।'

औरत पल-भर रुक कर बोली, 'एक उपाय है।'

'क्या ?'

'मैं दोनो के बीच मे एक तकिया रख देती हू, फिर तो कोई हर्ज नही होगा। तकिये के एक ओर आप सोएगे, दूसरी ओर मैं सोऊंगी।'

'हां-हा, यह ठीक है।' "

बाबू कमलाकांत ने पल भर को चुप लगा अपनी कुटिल मुस्कराहट से फकरुद्दीन की ओर ताका तो सेक्शन के और लोग बोले, "तो आगे क्या हुआ बाबू साहब ?"

"बताओ तो फकरुद्दीन, क्या होगा ?"

"अमा, तुम्ही बताओ कमलाकांत, मुझे क्यो मजबूर करते हो ?"

"मजबूर ! अरे यार, घर में भी मजबूरी और यहा भी—लाहौल विला कूवत।" फिर ठहाका लगा तो बाबू साहब कहने लगे, "हुआ क्या बाबू साहब, पडित जी थके तो थे ही, तकिये के एक ओर, खाट की पाटी की ओर मुह करके सो गए। और सवेरे एकदम भोर मे उठकर उस औरत को जगाने लगे। औरत चुपचाप सुनती हुई भी आंखें मूदे पडी रही तो तीसरी बार झकझोरकर जगाते हुए पंडित जी बोले, 'देखिए, उठिए देर हो रही है, मुझे जाना है।'

अपनी आंखें खोलती हुई औरत पंडित जी की बाह पकडती हुई बोली, 'इतने सवेरे।'

'जी हा, मुझे पहाड़ लांघना है।'

'पहाड लाघना है !' औरत अचरज मे बोली ।

'आपको तो रात ही बताया था कि पहाड लाघना है ।'

तब औरत धीरे-धीरे बोली, 'अरे उल्लू के पट्ठे, जो आदमी रात मे छोटी-सी नदिया नही लाघ सका, वह पहाड क्या लाघेगा ?' "

सेक्शन मे बडी जोर का ठहाका लगा । कुछ देर के बाद जब लोगो की हसी बद हुई तो बाबू साहब फिर कहने लगे, "तो मियां फकरुद्दीन, यहा दफ्तर मे हेड थ्री की पेयरिंग तो होती नही, इस उम्र मे नयी बीवी क्यो लाए हो ? वहा घर मे पेयरिंग कौन करता है ?" फिर ठहाका लगा ।

"अरे बाबू कमलाकात, कुछ तो शर्म-हया करो यार, इन नये-नये लौडो के आगे जो मन मे आता है बकते रहते हो ।"

बाबू साहब उठते हुए बोले, "अगर गलत कहा हो तो माफ करना मौलाना, पर कहा मैने कुछ भी गलत नही—यू, हाथी घूमे गांव-गांव, जिसका हाथी उसका नाम ।"

फिर हसी का फव्वारा सेक्शन मे फूट पडा । बाबू कमलाकांत मुस्कराते हुए चले गए । उस समय बारह बज रहे थे । लोग काम करने लगे और डेढ बजते ही लच को उठ गए ।

साझ को दफ्तर से चद्रमोहन घर लौटा तो देखा, मा गलियारे मे बैठी हुई है और शारदा नीचे के कमरे मे, अपनी चारपाई पर लेटकर कहानी की कोई पत्रिका पढ रही है । चद्रमोहन आज दफ्तर से घंटा भर पहले चला आया था । आते ही मा बोली, "आज जल्दी चले आए ?"

"हा मा, आज काम कम था इसलिए जल्दी चला आया ।"

"चाय का पानी चढाऊ ।"

"शारदा तो आ गई है, वह चढाएगी । अरे शारदा···।" चंद्रमोहन ने आवाज लगाई ।

"अरे मैं चढाती हू, अभी-अभी उसके साथ पढने वाली कोई लड़की आई थी । चाय-वाय बनी थी ।"

"कौन लडकी थी शारदा ?"

"मेरी क्लासफेलो है, रेनुका राय, होस्टल में रहती है, पीलीभीत की रहने वाली है। वहां के ए० डी० एम० की लड़की है।"

"ओह, बड़ी जल्दी तुमने दोस्ती कर ली।"

"तुम्हारे कमरे में गई थी, तो तुम्हारा सितार देख बोली, भाई साहब सितार बजाते है क्या ? मुझे सितार बहुत अच्छा लगता है, एक दिन मैं सुनने आऊंगी।"

"हुए्।" चंद्रमोहन ने हल्के से झिड़का।

"यह देखो अम्मा, वह तो इनका सितार सुनने को कह रही थी और ये झिड़क रहे हैं।"

"और नहीं तो क्या ? लौंडियों को कुछ तमीज भी होती है ? इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ने क्या चली आई, मानो रविशंकर की फैन हो गई।"

"अरे उसके पास भी सितार है, वह भी बजाती है।"

"यहां पर है ?,'

"नहीं, घर है।"

"तोप दाक आई है कि नहीं।"

शारदा रुआसा मुह बनाकर हट गई तो मां बिगड़ी, तुझे प्यार से बोलना भी नहीं आता, फुसलाना तक नहीं जानता।"

चंद्रमोहन हसने लगा, "तुम समझती नहीं अम्मा, असल मे लड़कियां प्राय: उल्लू हुआ करती है। फैशन मे चूर, और झूठ बोलने मे नंबर एक। डिप्टी कलेक्टर की बेटी है। पीलीभीत से यहां क्या चली आई मानो सभी गुन की मलिका हो गई। सितार बजाना, बच्चों का खिलवाड़ है क्या ? एड़ी का पसीना चोटी जाता है, तब इसका क, ख, ग आता है।"

"अच्छा तू कपड़े उतार, हाथ-मुह धो। शारदा, इसकी धोती ला दे।"

शारदा ने आंगन मे फैली हुई धोती ला दी तो चंद्रमोहन ने कपड़े बदले और चौके के आगे चिकने चबूतरे पर पाल्थी मारकर बैठ गया तो मां ने चाय का प्याला पकड़ा दिया। चाय की पहली चुस्की ली, तो मा

बोली, "शनीचर की रात लखनऊ आएगा ?"

"जरूर आऊंगा।"

मां खुश हो गई, "सोचती हूं कि यदि बात पक्की हो जाए तो इस जाड़े में काम निपट जाए, मन को शांति मिले।"

"अशांति की तो कोई बात है नहीं मां।"

"तुम इसे नहीं समझोगे बेटे, वक्त का कोई भरोसा नहीं, जितनी तेजी से भाग रहा है। जो काम निपटता जाए, उसे निपटाते चलो। मैं किसी भी तरह तुम पर कोई भार नहीं डालना चाहती। कायदे से तुम्हारा ब्याह ही पहले होना चाहिए, क्योंकि तुम बड़े हो। पर, यदि शारदा का ही हो जाए तो अति उत्तम।"

चाय पी, हाथ-मुंह धो, कपड़े बदलकर चन्द्रमोहन बोला, "तो मैं सितार बजाने जा रहा हूं, मां।"

"जाओ, पर जल्दी आना, क्योंकि आने पर ही रोटियां सेकूंगी। जब तक तुम नहीं आते शारदा भी खाना नहीं खाती।"

"नहीं, नहीं, शारदा को खिला दिया करो। हम-तुम साथ-साथ खाया करेंगे, मन लगने की बात है मां—किसी दिन जम गए तो देर भी हो जाती है। स्कूल-कालेज तो है नहीं कि घंटा पूरा हुआ, उठ चले, सिखाने वाले के मन के अनुसार भी चलना पड़ता है। यह संयोग की बात है कि ऐसा अच्छा सिखाने वाला मिल गया है। अन्यथा, काफी रुपए देने के बाद भी ऐसा गुरु नहीं मिलता। उसका भी मन रखना पड़ता है जवान लड़का, उनका जाता रहा है। पति-पत्नी न जाने क्यों मुझे अधिक स्नेह देने लगे हैं। ले-देकर एक बेटी है, उसे मूर्च्छा का रोग है। पीरू बाबू की पत्नी तुमसे मिलने को कह रही थी—किसी भी दिन तुम्हारे पास आएगी।"

"यह घर देखा है ?"

"पीरू बाबू ने ही तो यह घर दिलाया है, भूल गईं क्या ? इसके मालिक से उन लोगों की बड़ी मैत्री है। पीरू बाबू यदि न रहते तो, भला मुझे यह मकान मिल सकता था।"

"अच्छा जाओ, पर बेटा बहुत सोच-समझकर धरती पर कदम

रखना होता है—नही तो राह मे कांटो की कमी नही। तुम्हारे परिवार का इतिहास तुम्हारे सामने है। नाव तुम्हारे ही सहारे है, पतवार तुम्ही हो, बोझ भी तुम्ही पर है, खेवनहार भी तुम्ही हो।"

चंद्रमोहन सितार उठा चुपचाप घर से बाहर निकल आया।

चद्रमोहन, पीरु बाबू के घर पहुचा तो साझ के लगभग छः बज रहे थे। बरामदे की सीढ़िया चढ़ते समय देखा, बरामदे में खुलने वाले आज दोनो द्वार बद थे। सोचा, सितार की आवाज पर रोज की तरह पीरू बाबू स्वतः निकल आएंगे। अतः बिना आवाज लगाए रोज की तरह वह जंगले के पास रखे तख्त पर बैठ के सितार के तारों को कसते हुए सुर ठीक करने लगा कि बड़े कमरे का द्वार खुला और दीपा बाहर निकल आई, "अरे, आप कब आए ?"

"नमस्कार।" चद्रमोहन ने दोनों हाथ जोड कर कहा, "अभी आया हूं।"

नमस्कार का प्रत्युत्तर देने के लिए झुककर बेहद विनम्रता से हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए दीपा सहज मुस्कान से बोली, "किसी के घर में घुस गए और पुकारा तक नहीं।"

संकोच मे भरकार चद्रमोहन बोला, "इसके लिए मुझे खेद है, हालांकि ऐसा कई बार हुआ है। पर आज तक किसी ने टोका नही था। शायद इसी मे भटक खुल गई थी, किंतु इस भूल के लिए क्षमाप्रार्थी हूं।"

"टोकने का अवसर ही आपने कहां दिया था ?"

"नहीं, मैं तो स्वय ही स्वीकार करता हूं कि ऐसा आज पहली बार नही हुआ। चूंकि, कभी आप द्वारा टोका नही गया, इसलिए मन मे ऐसी बात कभी नहीं आई कि मेरा इस तरह से इस घर मे चले आना आपत्तिजनक भी हो सकता है। अच्छा किया आपने, यहा मैं रोज सितार के कान उमेठता हू आज आपने मेरे कान उमेठ दिए।"

"अरे, अरे। आप यह क्या कर रहे है ?"

"जो सहज और स्वाभाविक है ? क्या मैं कोई दूसरी भूल तो नहीं कर रहा हूं ?"

"अब मुझे ऐसा ही लग रहा है, मैं अपने शब्दों को वापस लेती हूं।"

लगता है घर में आज बाबा और मां दोनों में से कोई नहीं है।"

दीपा के मुंह पर बड़ी प्यारी मुस्कान बिखर गई, "यह आप कैसे जान गए ?"

चंद्रमोहन कपड़े का ओहार सितार पर चढ़ाने के लिए ठीक करने लगा तो दीपा बोली, "लेकिन आप कर क्या रहे हैं ?"

"सितार भीतर रख के घर चलने की तैयारी कर रहा हूं।"

"क्यों।" दीपा कुछ घबराहट में बोली, "बाबा जाते समय बहुत जोर देकर मुझसे बोले थे कि गंगाजल आए तो उससे कहना कि सितार जरूर बजाए।"

"गंगाजल ! कौन 'गंगाजल' !"

"ओह ! अभी आपको यह भी नहीं मालूम ? मां और बाबा आप ही को तो 'गंगाजल' कहते हैं।"

"मुझे।"

"हां, आपको ही।"

"लेकिन क्यों, मेरा नाम चंद्रमोहन है, उसे पुकारने में उन लोगों को कोई कठिनाई पड़ती है क्या ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है," दीपा पहली बार चंद्रमोहन से आंखें मिलाती हुई बोली, "मां कहती है गंगाजल से घर पवित्र रहता है। आप जब से इस घर में आने लगे हैं, यह घर पवित्र हो गया है क्योंकि इस घर की परेशानियां अपने आप कम हो रही हैं।"

"जैसे ?" चंद्रमोहन ने हंसी करना शुरू किया।

दीपा सामने फुलवारी में लगे दालचीनी के पेड़ पर आंखें टिकाती हुई बोली, "जैसे मेरी बीमारी को ही लीजिए, मैं पहले से बहुत अच्छी हूं।"

"आप पहले से अच्छी हैं, यह एक बहुत अच्छी बात है। इसकी मुझे भी खुशी है, लेकिन क्या आपको भी लगता है कि आपका यह अच्छा होना मेरे आने के कारण है ?"

इस बार दीपा ने आंखें मूंद ली और जैसे अपने अत.क्षितिज मे पलभर देखने के बाद पलकें खोल बोली, "मा और बाबा दोनों की देह का अश मैं हू, जो बातें वे स्वीकार करते है उसमे तर्क करने को मेरे लिए गुजाइश कहा है ?"

"लेकिन आप पढी-लिखी लडकी है, ससार का तो यह नियम है ही कि दो के कारण तीसरे की सत्ता अपना स्वतत्र रूप लेती है, उसके व्यक्तित्व और बुद्धि का अलग रूप होता है, विकास होता है ।"

"हा, मैं जानती थी कि आप यही प्रश्न करेंगे, लेकिन आप यह भी तो अस्वीकार नही कर सकते कि हर किसी के जीवन मे एक ऐसा समय आता है जहा उसके सारे तर्क व्यर्थ हो जाते है, विश्वास करना पड़ता है । समर्पित होना पडता है । शायद इस मन के कारण ही बुद्धि का वहा कोई जोर नहीं चलता ।"

चद्रमोहन हसा ।

"आप हंसे क्यो ?"

"इसलिए कि आदमी के विश्वासो के लिए कोई बहाना चाहिए ।"

"बहाना नही, आधार कहिए । बताइए न, आपने किसी लता को बिना किसी आधार के ऊपर चढते देखा है ?"

चद्रमोहन खामोश रहा तो दीपा फिर बोली, "क्यो, चुप क्यों लग गए, आप को कुछ कहना होगा ।"

"कहूं क्या, कहां पुनीत-पावन गंगाजल और कहा मैं, सैकड़ों दुर्गुणों से भरपूर ।"

"दुर्गुण किसमे नही होते, क्योंकि हर चीज के दो पहलू होते हैं । आप में यदि दुर्गुण हैं तो उस पहलू मे इस घर को कुछ लेना-देना नही है । स्वीकारा तो वह पहलू गया है जो वास्तव मे शुभ है, मगलकारी है, जिसने इस घर के नए विश्वासों को एक आधार दिया है ।"

इस बार एक-एक शब्द को तौल-तौल कर चंद्रमोहन कहने लगा, "गंगाजल जितना पवित्र होता है उससे अधिक विनाशकारी । क्या कभी सोचा है कि गगाजल जहां उफनता है वहा की धरती को ध्वंस करके ही हटता है, और हटने के बाद भी वहा की धरती, बचे हुए जल की सडन

की दुर्गंध मे डूब जाती है ।

"तब वहा गंगाजल नही होता," अपनी ओर देखते हुए चंद्रमोह
की आखो मे ताक कर अपना सिर हिलाती हुई दीपा कहने लगी, "सड़न
की वह दुर्गंध भी क्षणिक होती है, बाद मे वहा की धरती कितनी उर्वरा
हो जाती है कितनी प्राणदायिनी । यही नही, हमारा आपका, सभी
कुछ जो अशुचि अपावन होता है, अन्ततोगत्वा गंगाजल मे ही विलय
होता है । उस मा की पावन, पवित्र गोद मे तिरोहित होता है । वह
मा ही है जो सभी कुछ आत्मसात कर लेती है ।"

निरुत्तर हो चंद्रमोहन बोला, "मेरे बारे मे आप जो सोचें पर मैं
उस लायक हू नही ।"

मेरे सोचने-समझने मे, बाहर की किसी भी स्थिति मे कोई अंतर
नही पडता । किसी भी काम मे कोई बाधा नही पडती, वैसे मेरी
बिसात ही क्या है कि आपके बारे मे जो सोचू वह आपसे कहने का
साहस भी कर सकू ।"

"अब तक आपको जिस रूप मे देखता आया हू, आज तो उससे आप
एकदम भिन्न लगती है ।"

'अब तक आपसे कुछ कहने-सुनने का मौका ही कहा मिला । आज
न जाने कैसे, इतना साहस कर गई ।"

चंद्रमोहन दीपा का मुह ताकने लगा । पलभर दोनों एक-दूसरे क
देखते रहे । आकाश मे बादलो की गर्जन बढती जा रही थी । पर्त के
पर्त काले घने बादल इधर-उधर दौड रहे थे । हवा तेज होने लगी, देखते-
देखते बौछारें शुरू हो गई । एकाएक हवा का तेज झोंका आया और
आधा बरामदा भीग गया । सितार उठा चंद्रमोहन खड़ा हो गया तो
दीपा बोली, "उठिए, भीतर चलिए, अन्यथा यहा भीग जाएगे ।" दीपा
दरवाजे पर खडी हो, सकोच मे पड चंद्रमोहन से बोली, "आइए, भीतर
आइए, घर पराया नही है ।"

विवश हो चंद्रमोहन कमरे मे दाखिल हुआ । द्वार के पास दीवार से
सितार खडा करके वही कुर्सी पर बैठते हुए बोला, "एकाएक बादल घिर
आए ।"

"बरसात के मेघों का क्या भरोसा।"

चंद्रमोहन हंसकर चुप लगा गया तो दीपा बोली, "हंसे क्यों ? मैंने क्या कुछ गलत कहा ?"

"कालिदास का 'मेघदूत' पढ़ा है ?"

इस बार दीपा मुस्कराई, "आप यही कहेंगे न, निर्वासित, विरही यक्ष का कितना बड़ा उपकार इन मेघों ने किया था। उसकी भार्या तक उसका संदेश ले जाने का दायित्व इन मेघो को ही सौंपा गया था।"

"क्या बरामदे में हम लोगों का बैठना भी किसी को बुरा लगा, जो रस की फुहारों में हमें भिगोने चले आए।"

जैसे बादलों की ओट में चंद्रमा निकले और चांदनी बिखेर जाए, दीपा एकाएक ऊपर से नीचे तक खिल गई। मन-प्राण से गद्गद हो सामने बैठे हल्की मुस्कान में ताकते हुए चंद्रमोहन की ओर पलभर को सम्मोहन में बंधकर ताकती ही रह गई। फिर, जैसे अपनी स्थिति का बोध हुआ, सम्मोहन टूटा और बोली, "चाय तो पीएंगे ?"

"नहीं, मैं चाय पीकर आया हू ?"

"किंतु मैंने तो नहीं पी।"

"तो अपने लिए बना लें, मैं बैठा हूं।"

दीपा चली गई तो चंद्रमोहन फिर बरामदे में निकल आया। पानी की बौछार उसी गति से लगातार गिर रही थी। सामने, इमली के पेड़ों की डालियां झूले की तरह हिल रही थीं। सड़क की बत्तियां जल चुकी थीं। किंतु बरस रहे काले बादलों के कारण ऊपर से जल के साथ अंधकार भी बरस रहा था। चंद्रमोहन बौछारों से बचने के लिए एक खंभे की ओट में सटकर खड़ा हो गया। लगभग दस मिनट तक पानी का बरसना देखता रहा कि पीछे हाथ में चाय का प्याला लिए हुए दीपा आ पहुंची, "अरे, आप यहां चले आए, कमरे में ऊब लग रही थी क्या, या भीगना ही अच्छा लगता है ! लीजिए चाय, और भीतर चलिए।"

"मैंने तो कहा था कि मैं चाय पीकर आया हूं, आप केवल अपने लिए बना लें।"

"हां किंतु चाय ही एक ऐसा विष है कि हम जानबूझ कर बार-बार पीते हैं। लीजिए प्याला पकड़िए।" दीपा ने प्याला चंद्रमोहन की देह से एकदम सटा दिया। चंद्रमोहन ने दीपा की ओर देखा, तो वह नीचे देखने लगी। विवश हो चंद्रमोहन ने प्याला पकड़ा तो दीपा बोली, "चलिए भीतर, बैठकर चाय पीजिए।"

"किंतु बरसते बादलों को देखना मुझे बहुत सुखद लगता है। आप भी चाय का प्याला लेकर यहीं आ जाएं और हम दोनों इसी जगह खड़े होकर चाय पीएं क्या ऐसा नहीं हो सकता ?"

"हां क्यों नहीं सकता, आप चाहें तो दालचीनी के पेड़ तले भी खड़े होकर चाय पी सकते हैं, शायद वहां और सुखद लगे। कोई रोक-टोक या व्यवधान भी डालने वाला नहीं है।"

"खुले में बरसते जल के नीचे। ठंडा और गर्म एक साथ, यह कैसा होगा ?"

"यह तो आप जानें, जिसके मन में पानी में भीगते हुए चाय पीने का सुख लेने की बात आई है। जहां आप खड़ी हैं और बाहर दालचीनी के पेड़ तले खड़े होकर चाय पीने में थोड़ा-सा ही तो अंतर है।"

चंद्रमोहन चुप लगा गया। दीपा भीतर से अपनी चाय उठा लायी और तख्त पर बैठती हुई बोली, "यह अशोभन है, किंतु विवशता है। मैं यहां बैठ जाती हूं और आप वहां भीगते हुए चाय पीएं और विरवासी मेघों से चाहें तो संदेश भी भेजें।"

चंद्रमोहन ने दीपा की ओर देखा तो चाय का घूंट ले मुस्कराती हुई दीपा बोली, "क्या ऐसा नहीं हो सकता ?"

"मैं किसे संदेश भेजूं, मेरा अपना कौन प्रतीक्षारत है जिसे मेरी आवश्यकता है। हां, इंद्र ने मुझे कुछ देर को बंदी जरूर कर रखा है।" चाय का खाली प्याला तख्त पर रखते हुए चंद्रमोहन बोला, "न तो मैं यक्ष हूं और न मेरी कहीं कोई प्रिया है। यदि होती तो खुद से दूर्व-काल बरसना न [illegible] मेघों के भरोसे बैठा रहता।"

चाय का प्याला तख्त पर रखती हुई दीपा खुलकर हंस पड़ी। मोती से सुघर-सलोने दांतों की कतार झलक गई। दीपा ऊपर से नीचे

तक गद्‌गद हो गई। खुशी की लहर मे आकंठ डूब गई। बहुत दिनो के बाद आज मन का भारीपन जैसे दूर हो गया। देह भीतर से एकदम हल्की लगने लगी।। प्रसन्नता का वेग समाप्त हुआ तो बोली, "आज आप सितार नही बजाएंगे ?"

"नही, आज बजाने का मूड नही है, सुनना चाहता हू आज, तुम कुछ बजाओ।"

"आप कैसे जानते है कि मैं भी कुछ बजाती हू ?"

"इतना बडा आदमी जो दूसरों को गुनी बनाता है, उसकी अपनी बेटी कुछ न जानती हो, यह कौन विश्वास करेगा ? क्या ऐसा हो सकता है ?"

"लेकिन आप मेरी बात का विश्वास करेंगे ?"

"अविश्वास की गुजाइश भी तो नही दीखती।"

"मैं सितार नही बजाती।"

"तो क्या बजाती है ?"

चुप हो दीपा, चद्रमोहन का मुह निहारने लगी। दोनो एक-दूसरे को एकटक देखते रहे, फिर सहसा दीपा उठ गई। जाते हुए चाय के दोनों प्याले लेती गई। वापसी मे अपने कमरे से वायलिन और गज उठा लाई।

"आहा !" चंद्रमोहन खुशी से बोल पडा, "मेरा अनुमान एकदम सही निकला ! यह हो ही नही सकता। हो कैसे सकता है कि इतने बड़े कलाकार की बेटी कुछ न जाने।"

नारी सुलभ लज्जित मुस्कान से वायलिन पर गज फेर कर दीपा बोली, "क्या सुनियेगा ?"

"अपने मन मे आप जो सुनाएं।"

दीपा ने पलभर को चद्रमोहन की आखों में देखा, फिर वायलिन पर गज चलाने लगी। बरसते बादलों की धार मे दबी हुई हवा की लहरो पर निकलने वाली राग खम्माच की ठुमरी तैरने लगी। ठुमरी की मिठास चंद्रमोहन के प्राणों में भरने लगी। कुशल, मधे हाथ मे निकलने वाली गत, मन को खीचने लगी। चंद्रमोहन की आंखें कभी गज चलाती

हुई दीपा की उंगलियों पर, कभी आत्मविभोर हो रही उसकी रह-रहकर मुंद जाने वाली आंखों पर टिक जाती और, जब कभी दाद देते समय दीपा की आंखें चन्द्रमोहन से मिलती तो दीपा को लगता, जैसे वह किसी नए लोक में आ गई है। दीपा ठुमरी की गत बजाती रही और चन्द्रमोहन सुध-बुध बिसार, मंत्रमुग्ध हो, ठगा-सा, खोया हुआ, चुप-चाप बैठा रहा। दीपा झाला पर आ गई थी। ललाट पर पसीने की काफी बूंदें उभर आई थीं। लगभग पैंतालीस मिनट बाद दीपा ने हाथ रोका। आंखें मूंद कर चन्द्रमोहन अनायास बोल पड़ा, "वाह, क्या कहने, आप धन्य हैं। नमन के योग्य हैं।"

"नहीं-नहीं, यह क्या आप बड़े हैं, मुझे आशीष दीजिए, मुझे वही चाहिए ?"

"आयु में छोटे-बड़े होने की बात यहां नहीं है दीपा जी, कला की मर्यादा का प्रश्न है। आपको नहीं मैं आपकी कला को नमन करता हूं। यद्यपि वह आप से कहीं भी अलग नहीं है, सोने में सुगंध भरने वाली उसकी कलाकारिता और गढ़न ही तो होती है।"

"ओहो, किंतु मुझे, मेरी सीमा में रखना होगा। मेरा देय, मुझे सोच-समझ के देना होगा।"

उस समय रात के साढ़े आठ बज रहे थे, पानी थमने का कोई आसार नहीं लग रहा था, यद्यपि काफी कम हो गया था। दीपा ने वायलिन को एक बार प्रणाम किया और उसे कपड़े की खोल में रखकर बोली, "इसे भीतर रख आऊं ?"

"हां रख आओ, तो मैं भी अब जाऊं।"

"इस बरसते मेंह में, यहां क्या भीग रहे हैं ?"

दीपा भीतर वायलिन रखने गई। इधर रिक्शे से पीरू बाबू पत्नी के साथ आ पहुंचे।

"ओह, देखो।" पीरू बाबू मुस्कराते हुए पत्नी से बोले, "मैंने कहा था न कि गंगाजल जरूर होगा, दीपा को अकेली छोड़कर नहीं जाएगा।" फिर बरामदे में आकर घुटने के नीचे की गीली धोती निचोड़ते हुए बोले, "घनघोर वृष्टि हुई, लगता था, हम लोग घर वापस

नही हो पाएंगे—संयोग की बात है कि यह रिक्शा मिल गया। दीपा को लेकर उसकी मां बहुत चिंतित थी, पर मेरा मन कहता था कि तुम होगे अवश्य—सितार बजाया ?"

"नही, आप तो थे नही, सुनाता किसे ?"

"अभ्यास में सुनने वालों की क्या आवश्यकता ? खैर !"

"अच्छा, अब मैं चलूंगा—सितार यहीं रख देता हू।"

"हां, ये छाता ले लो।"

चद्रमोहन छाता ले निकल पड़ा।

चार

दफ्तर में मन बझ गया। कब दफ्तर आया, कब लंच हुआ, कब पांच बजे, कुछ पता ही नही चलता। आफिस की भीड़-भाड़ और शोर-शराबे में चद्रमोहन जैसे खो गया। तीन-तीन इमारतों में काम करने वाले लोगों के बीच में दिन चिड़ियों की तरह फुर्र से उड जाता।

एक दिन ढाई के बदले चंद्रमोहन लंच करके तीन बजे लौटा। सेक्शन में दाखिल हुआ ही था कि सेक्शन अफसर चटर्जी मुस्कराया, "ई साला दोफतर है ना कि जोलसाघर।"

"क्या हुआ दादा ?" चापलूस फकरुद्दीन ने आग में घी डालने की कोशिश की।"

"हुआ क्या ? मैं कहता हूं कि कुछ तो भोगवान से डरो,

जिसका खाते हो उसका नमक अदा करो, पर कौन सुनता है। जिसको देखो वही फार्गिबाज। जैसे कालिज युनिवर्सिटी जुलाई में खुला नहीं कि झगड़ा हड़ताल फिर दूसरा जुलाई आ गिया, ई साला ए० जी० आफिस का नोकरी भी उसी माफिक है। गर्मी में खस की टट्टी में बैठो, बरसात में पानी से बचो चाय-पान की दुकानों में डटो, प्याले के प्याले पेट में जहर ढकेलो। जाड़ा आया, क्रिकेट कमेंट्री सुनो। चाय की दुकानों के सामने यू० एन० ओ० की मीटिंग में वाल्र्ड का पॉलिटिक्स डिस्कस करो।"

"उसके बाद दादा ?" फकरुद्दीन बोले।

"उसके बाद धूप में देह सेकेगा।" चटर्जी बोले।

"देह या आंख ?" तिवारी बोला।

"अरे भाई, जिसको आंख सेकने का दोरकार होगा तो सेकेगा ही, उसे थोड़ा कइसे रखेगा। यह तो भाथी है भाथी, इसको गोरम रहना ही चाहिए।"

"खोखी लोग धूप में बैठकर स्वेटर बुनती है, चाट खाती है, चाय पीती है, हम लोग क्या करें दादा। काम कैसे करें? तनखाह से पेट तो भरता नहीं, तो लोग धूप सेकते हैं।"

"खोखी लोग बड्डे या खोखी लोग का अम्मा। हम तो सबके लिए बोलता है के पेट कइसे भरेगा? चादर के बाहर पैर फैलाएगा तो पेट भर ही नहीं सकता। नए लौंडे फैशन में चूर, पहले यूल ब्रूनर का कापी किया सिर घुटाया, अब बड़ा-बड़ा बाल बढ़ा के हिप्पी बन गिया। ब्लाउज और बुश्शर्ट के कपड़े के डिजाइन में कोई फर्क नहीं। लड़का भी बुश्शर्ट और लोरकी भी बुश्शर्ट और बेलबॉटम, जिस माफिक लड़का उस माफिक लोरकी। पहिचान करना कठिन। मोहगाई साला कमर तोड़े है। साला पहले अलीगढ़ी पायजामे वाली पतलून की मोहरी बनता था, अब साला अट्ठाईस इंच चौड़ा मोहरी। वहीं चौंद्रोमोहन हम कुछ गोलत बोला ?"

नहीं दादा, आज लंच करके लौटने में देरी हो गई।" चंद्रमोहन मुस्कराते हुए बोला ?

"अरे चटर्जी बाबू, जनाब चन्दरमोहन म्यूजिशियन हैं, सितार बजाते हैं, शायरों की तरह किसी खयाल में डूबे होंगे।" मियां फकरुद्दीन बोले।

चंद्रमोहन जल गया, "शायर और संगीतज्ञ में फर्क क्या है, आपको कुछ मालूम भी है !"

"ये लीजिए," हवा में एक हाथ उठाकर, सेक्शन-भर वालों की ओर ताककर मौलवी बोले, "फर्क क्या है जनाब—एक ही चिड़िया के दो नाम हैं।"

"इतनी अक्ल होती तो इस उम्र में आपको आंवले के मुरब्बे पर चांदी का तबक चढ़ाके खाने की नौबत आती ?"

सेक्शन में दसों आदमियों का ठहाका लगा। मौलवी फकरुद्दीन झेंप मिटाते हुए बोले, "निहायत बदतमीज आदमी हो तिवारी, जो मन में आता है, बक देते हो ? अपने तो अपने, इन लौंडों को भी लिफ्ट देते हो।"

चंद्रमोहन कुछ ताव में आ गया, "घर पर बीवी को खुश करने के लिए मियां, लौंडों का गू साफ करते होंगे, यहां लिफ्ट पर एतराज है। वाह रे चचा गालिब''' वरना हम भी आदमी थे काम के।"

इस बार दूसरा ठहाका जोर का लगा।

खुलकर रस लेकर हंसते हुए चटर्जी की ओर ताककर मौलवी बोले, "चटर्जी साहब, इस नौकरी के पांच-सात साल और हैं, सोचता था, अल्ला-ताला की दुआ से ठिकाने से कट जाती। लेकिन इन लौंडों के मारे तो नाक में दम है।"

"फिर भी आदत से बाज नहीं आते मौलवी साहब।" चंद्रमोहन ने फिर रगड़ा।

"हद हो गई चटर्जी साहब, सेक्शन में बैठना दुश्वार है।"

"आप लोगों को क्या दुश्वारी है जनाब मौलवी साहब, एक-दो-तीन बीवियां रखिए—दर्जनों लौंडे-लौंडिया पैदा करिए, रोक तो हम लोगों पर है। ग्वाले की एक गाय, न लगे तो भूखा खाय। ऊपर से साला फेमली प्लानिंग, पचास-पचास, साठ-साठ रुपये पर नसबंदी। सीधे नहीं

तो देते । आप लोगों को ये जज्बे हिंदुस्तान में ही हासिल है जनाब—शुक्रिया अदा कीजिए इंदिरा सरकार का जो दो आंखों से ताकती है।"

वाह ! क्या बात है चंद्रमोहन —यार, तुमने तो आज कमाल कर दिया । खामोश रहोगे तो आंखों में मुस्कराते हुए । और बोलोगे तो अच्छों-अच्छों की जुबान बंद कर दोगे ।"

मैं क्या कुछ गलत कह रहा हूं तिवारी जी, सरकार की दो आंखों से देखने का फल देश के सामने आएगा ही, ऐसा नहीं कि न आए। इन लोगों की आबादी बढ़ रही है मुस्लिम मजलिस और मुस्लिम लीग जैसी साम्प्रदायिक संस्थाओं ने महज अपनी आबादी के बल पर एक पाकिस्तान बनाया, देश के टुकड़े कराए, वही सिलसिला फिर पनप रहा है । उत्तर प्रदेश के पिछले चुनाव की हालत आपने देखी है, मुस्लिम वोटों के लिए कांग्रेस किस हद तक नीचे झुकती जा रही है—झुकी है, आपने देखा है, घड़ी के पेंडुलम की तरह है ये वोट, आज आपसे कतरा रहे हैं और आप हाथ जोड़े उनके पीछे-पीछे भाग रहे हैं । कल उनके अपने प्रत्याशी होंगे, चुनाव जीतेंगे—उनमें नए जिन्ना पैदा होंगे, वे अपनी शर्तें रखेंगे और फिर इतिहास दोहराया जाएगा ।"

"कैसे झुकेंगे जनाब ।" मौलवी फकरुद्दीन बोले ।

"जैसे आज उर्दू भाषा के सवाल के आगे झुके है जनाब ।"

"क्या मतलब । क्या आप इन्कार करते है कि आज मुसलमानों की एक पीढ़ी हिंदी पढ़कर तैयार हो गई ।"

"बेशक, तैयार हो गई ?"

"उसके बाद अब फिर से उर्दू पढ़ने-पढ़ाने का नया सिलसिला जारी हो रहा है । बुनी हुई खाट उधेड़ कर फिर से बुनी जा रही है ।"

"तो आपको उर्दू भाषा से एतराज है ?" मौलवी बोले ।

"जी नहीं, भाषा से तो कभी किसी को एतराज नहीं हो सकता, एतराज है वोट पाने के लिए इस उर्दू भाषा को मोहरा बनाए जाने से । अरे जनाब ! भारत में सवालों की क्या कमी है जो एक सवाल आप और जोड़ रहे हैं ?"

"वल्लाह, क्या कहने।" मौलाना फकरुद्दीन बोले, "आपकी तजवीज समझ में नही आई मि० चंदरमोहन।

"आपकी समझ मे अभी नही आ सकती मौलवी साहब ! जगाया सोए को जाता है, जागे को क्या जगाना।"

"यह तो आप सही फरमा रहे है, लेकिन आप इसे थोड़ा खोलकर कहें।"

"मेरे खोलने से ही आप समझेंगे जनाव ? ये क्या आप नही जानते कि जिस राष्ट्र की एक भाषा नही होती उसके टुकड़े हो जाते हैं।"

"जैसे ?" मौलवी बोले।

"जैसे भारत से पाकिस्तान बना।" चंद्रमोहन बोला।

"पाकिस्तान महज भाषा की बुनियाद पर नही बना, अगर आप ये बात नही जानते चदरमोहन साहब, तो मैं आपसे अर्ज करूंगा कि आप हिंदुस्तान की तवारीख पढ़ने की तकलीफ गवारा करें। जनाब वह आबादी के कारण बना।"

"तो पाकिस्तान से बांगलादेश कैसे बना ?" चंद्रमोहन ने तुरंत सवाल किया।

"वो-वो-वो…।" मौलाना हकलाने लगा।

"वो-वो-वो क्या जनाब मौलाना साहब, हकीकत को आप नजरें-अंदाज नही कर सकते। बांगलादेश महज भाषा के कारण बना है। बांगलादेश के मुसलमान बंगला बोलते है, पाकिस्तानी उर्दू बोलता है। यह भाषा का ही सवाल है जिसने पाकिस्तान को दो टुकड़ों में बांट दिया, अपने दिमागे शरीफ में पक्की रोशनाई से दर्ज कर लीजिए।" सेक्शन मे एकदम खामोशी थी, सभी चंद्रमोहन का मुंह ताक रहे थे। चंद्रमोहन धाराप्रवाह बोलता जा रहा था, "खुजली में खाज की तरह पाकिस्तान हमारा पड़ोसी है, यह हमे चैन से कभी भी बैठने नही देगा। कब इससे ठन जाए, हम कह नहीं सकते। फिर युद्ध का आह्वान होगा। जाहिर है, हमारा बलिदान होगा, देश के लिए हम चुप नही बैठ सकते, देश सर्वोपरि है। चीन-पाकिस्तान का गठबंधन और भी खतरनाक है। आज छोटे पैमाने पर हुआ है, कल बड़े पैमाने पर होगा। देश को

युद्ध में लड़ने वाले जवान चाहिए, और यही युद्ध खिंच गया तो वही हालत होगी जो हिटलर के समय जर्मनी की हुई थी।

यानी देश में 'मैन पावर' की कमी पड़ गई थी ?" तिवारी बोले।

"कमी अरुण जहिए तिवारी जी अकाल। महाभारत के युद्ध में अठारह अक्षौहिणी पुरुष मारे गए, इन पुरुषों की विधवाओं का क्या हुआ होगा, आप कल्पना कर सकते हैं। यदुवंश और कुरुवंश में हाहाकार मच गया था। नव के राज्य, काशी, मद्र पांचाल, अवग, प्राग ज्योतिष, सभी स्थान विधवा स्त्रियों के काम की आग में तप उठे थे। झुंड की झुंड काम से पीड़ित स्त्रियां पुरुषों की खोज में निकलती थीं। कहीं एक पुरुष दिख जाता तो उस पर दस औरतें टूट पड़ती थीं। अनुमान लगाइए, दस औरतों के बीच एक मर्द की क्या हालत होती होगी ?"

"काश। उन दिनों कहीं मौलवी फकरुद्दीन दिख जाते।" तिवारी बोल पड़ा।

सेवशन में समवेत ठहाका लगा।

"लाहौल वेलाकूवत, अमां यार तिवारी तुम तो मेरे पीछे पड़ गए हो ?"

'और आगे का हाल, तो आप देख ही रहे हैं, सरकार, नसबंदी कराने पर तुल गई है। जबर्दस्ती लोगों की नसबंदी की जा रही है। क्वारे, ब्याहे, सभी की नसें काटी जा रही हैं—चाहे, पति-पत्नी को कोई लड़का-लड़की हो या नहीं। राज्य के मास्टरों को, आफिस के बाबुओं को, कर्मचारी औरतों को सरकार का आदेश है कि एक आदमी जब तक तीन केस नसबंदी के न दे, उसे तनख्वाह मत दो। तीन बच्चों से अधिक वाले परिवार को राशन मत दो। लोगों के लाइसेंस का नवीनीकरण मत करो। ये हाल है हमारी सरकार का, भगवान जाने आगे क्या होगा ?"

"देश में आबादी बढ़ती जा रही है, खाने को है नहीं, लोगों को रोजगार नहीं मिलता, काम नहीं मिलता, नौकरी नहीं मिलती। किस कदर लोग बेकार हैं ये आप सोच भी नहीं सकते मि० चंदरमोहन।"

"सोच तो आप सकते हैं मौलवी साहब और आपकी सरकार सोच

सकती है। २८-२९ साल आजादी को होने को आए और आप की सरकार बेरोजगारी की समस्या दूर न कर सकी, देश को आत्मनिर्भर नही बना सकी। जरा तशरीफ ले जाइए देहातों मे, तो खेतों मे काम करने वाले मजदूर नही मिलते और आप है कि आबादी कम करने की सोच मे है।"

"मजदूरो की कमी नही है जनाब चंद्रमोहन साहब, वे मजदूर शहरो की ओर भाग रहे है, तो देहातो मे मजदूर मिले कैसे ?"

"शहरो को भागें न तो पेट कैसे भरें ? खेतो मे न सिंचाई के साधन, न बीज, न खाद, तो भगवान के भरोसे खेती नही हो सकती। नेहरू के जमाने से ही सरकार ने सारा धन बडे-बडे शहरो मे मिलें, कल-कारखाने खुलवाने मे लगा दिया, खेतीहरो को एकदम नजर अंदाज कर दिया, वो कल आपके सामने आएगा ही। मरिए भूखों, खाइए विदेशी अनाज, लीजिए कर्जा। नेहरू जी ने औद्योगिकीकरण किया, इंदिरा जी आटोमिकीकरण कर रही है—कि मेरा देश भी अब एटम बम बनाने में सक्षम है, समर्थ है, न हेवी वाटर है, न आपके पास कोई उसका विकल्प है ? लगा तो दिया तारापुर में आटोमिक प्लांट, लेकिन मुंह ताकिए अमेरिका का कि 'यूरेनियम' मिले, 'हेवी वाटर' मिले, तब आपकी गाड़ी आगे बढे।"

"आपका मतलब है कि नेहरू जी ने कुछ नहीं दिया ?" मौलाना फिर बोले।

"किया क्यो नही, कश्मीर का हिस्सा पाकिस्तानियों को दे दिया, भारत का कुछ हिस्सा चीन को दे दिया और भारत को [illegible] की जगह साइकिल युग मे ला दिया। नेहरू जी की यही देन है कि भारत भिखारी का भिखारी देश रह गया। और एक [illegible] देश ऐसा है जिसने नदी की धारा मोड़ दी। नेहरू भारत के भीतर देश को संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों की कतार में खड़ा कर दिया। आप अपने में फूले रहिए। कोई आपको किसी से कुछ समझना नहीं है, मौलवी साहब।"

इस बार मौलाना मुस्कराते हुए बोले, "यार चंद्रमोहन, तुम तो

वर्षों का छला निकले। अब मेरी एक बात का जवाब दे दो तो जानूं।"

"आपकी बात का जवाब देने में अगर बात कुछ बने तो दूं, वैसे फर्माइए ना।"

"इस देश के संविधान में सबको हक बराबर है?"

"बेशक है।"

"लेकिन हरिजनों को और पिछड़ी जातियों को हक अधिक क्यों है? नौकरी में रिजर्वेशन की बात तो समझ में आती है, लेकिन, नौकरी के बाद उन्हें प्रामोशन इत्यादि में अधिक हक मिलना कहां तक वाजिब है? हम आज नौकरी शुरू करें तो मुस्तकिल होते-होते पांच साल लग जाते हैं और एक हरिजन ने नौकरी शुरू की नहीं कि उसी दिन से मुस्तकिल बना दिया गया, ऐसी ज्यादती क्यों?"

"अब आए राह पर आप जनाब मौलवी साहब! ये सवाल उन नेताओं से आप क्यों नहीं करते जो आपके पास वोट मांगने आते हैं। लेकिन आप उनसे सवाल कर ही नहीं सकते क्योंकि आपकी नियत अब भी साफ नहीं है, आप तो अब भी मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस की तरफदारी चाहते हैं- -वोट मांगने वालों से अपनी बातें मनवाते हैं और ये कांग्रेसी सरकार आप लोगों के आगे झुकती चली जा रही है। न जिंदा रहे आज सरदार पटेल। पता चलता, आप लोगों को। मेरा मतलब केवल उन मुसलमानों से है जो अब भी पाकिस्तान की ओर ताकते हैं।"

"आप भी तो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ बनाते हैं, हिंदू महासभा बनाते हैं।"

"इसीलिए तो आर० एस० एस०, हिंदू महासभा, कम्यूनल संस्थाएं कही गई हैं, जबकि मुस्लिम लीग और मुस्लिम मजलिस बिल्कुल नहीं, राजनीतिक दल हैं। हाय रे इस देश की सरकार।"

"इसका हल भी आपकी आंखों में है।"

"हां है, इस देश से जाति-पाति को खत्म करो, वर्ना इस देश की आने वाली तमाम सियासती जिंदगी में हरिजन और मुसलमानों के कास्टिंग वोट होंगे, इनके आगे हर पार्टी की सरकार को झुकना होगा। वर्ना आप चैन से न रहेंगे, न रहने देंगे।"

"अच्छा भाई बोद, ई सरकारी दोफ्तर है, ना कि पोलिटिकल माजलिम।

"अच्छा हम तो चले चटर्जी बाबू।"

"अरे सुनिए तो?"

"अब रोकिए मत चटर्जी बाबू। पाच बजने वाले हैं। इन लोगों का क्या भरोसा। चलते-चलाते कुछ और शुरू कर देंगे तो भद्द हो जाएगी।"

पांच बजने लगे। चटर्जी हाथ की घडी देखते हुए बोले, "लेकिन यार चोंद्रोमोहन, तुम तो छुपा रुस्तम निकला। आज तो मियां फकरुद्दीन को खूब जलवा दिखाया—हे-हे-हे···" चटर्जी हसते हुए अपनी मेज की ड्रार में ताला लगाने लगा।

कई दिनो के बाद आसमान साफ हुआ था। पिछले पाच-सात दिनो की लगातार वृष्टि के कारण आसानी से निकलना कठिन हो गया था। लगभग चार दिनो के बाद आज चद्रमोहन पीरू बाबू के यहा सितार बजाने पहुचा। दीपा जैसे प्रतीक्षा कर रही थी। चंद्रमोहन अहाते के फाटक के पास पहुचा तो दीपा कमरे से निकल बरामदे में आकर खड़ी हो गई। चद्रमोहन के पहुचते ही हल्की-सी मुस्कान के साथ बोली, "देहरी तो पर्वत भयो···"

उसी सहज मुस्कुराहट के साथ चद्रमोहन बोला, "पिछले दिनो की लगातार वृष्टि ने ही विवश कर दिया था। बहुत प्रयत्न किया था आने का, देह तो छाते की आड़ मे आ सकती थी पर सितार कैसे आता?"

"हां,सितार तो छाते की आड़ मे बच नही सकता था और बिना सितार के यहा आने मे सार्थकता क्या थी?"

दीपा के इस अप्रत्याशित व्यंग्य को चद्रमोहन ने पकड़ा। उसने दीपा की आंखों मे देखा, बड़ी-बड़ी करुणामयी आखों में एक अजीब तरह की शिकायत भरी हुई थी।

तख्त पर सितार रखते हुए स्वीकारोक्ति के स्वर मे बोला, "बाबा कैसे हैं, मां कैसी है, आप कैसी रहीं, यह कुछ भी पिछले पाच-छः दिनों मे मैं जान न सका।"

"बाबा बीमार है, कल से बुखार मे लेटे है, मां की भी तबीयत

ठीक नहीं है, आइए भीतर चलिए।"

भीतर जाकर देखा पीरू बाबू बरामदे की एक खाट पर चादर ओढ़कर लेटे हैं। प्रणाम कर बगल की एक कुर्सी में बैठ गया तो बोले, "कल से बुखार आ गया है और बदन में दर्द है। चलने-फिरने को मन नहीं होता—तो चार-पांच दिन तो नागा हो गया होगा।"

नहीं, घर पर ही अभ्यास करता रहा।"

"यह बहुत अच्छा किया, आज हमारे पास यहीं बैठकर अभ्यास करो मेरा भी मन बहलता रहेगा।"

आंगन में ही शीतलपाटी बिछाकर चंद्रमोहन सितार बजाने लगा। पीरू बाबू दीवार से पीठ टेक ध्यानपूर्वक सितार सुनते रहे। बीच-बीच में चंद्रमोहन को निर्देश और प्रोत्साहन देते रहे। चंद्रमोहन को भी आज विशेष रस मिला, पीरू बाबू के नए निर्देश से। दो-एक पुरानी कठिनाइयां दूर हो गईं। हाथ खुल गया, चंद्रमोहन आज विशेष रूप से पीरू बाबू के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

सितार को कपड़े की खोल में रखने लगा तो दीपा की मां ने चाय का प्याला लाकर उसके आगे रख दिया। चंद्रमोहन हाथ जोड़ते हुए बोला "मैं चाय पीकर आया हूं, मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।"

दीपा की मां पति को चाय दे चंद्रमोहन के पास लौटकर बोली, "सुनो बेटा, हम लोगों के जीवित रहने का सहारा केवल यह चाय है, हमारे पास दूसरा कुछ भी नहीं है जिससे हम तुम्हारा सत्कार कर सकें।"

"मेरा अलग से सत्कार करने का प्रश्न कहां उठता है? मैं तो यहां सितार सीखने आया हूं। आप लोगों के स्नेह और कृपा का पात्र बनकर वह मिलता रहे, मेरे लिए बहुत है।"

"इसीलिए यह आवश्यक है बेटा कि हम जो कुछ भी खाएं-पिएं, साथ बैठकर मिल-बांटकर। तुम शायद अनुमान नहीं लगा सकते कि जब तुम हम लोगों के बीच होते हो तो हमें कितनी प्रसन्नता होती है। सच कहती हूं, तुम उतना सोच भी नहीं सकते।"

चाय का प्याला उठाकर, दीपा की मां ने चंद्रमोहन के होंठों से छुआते हुए कहा "चाय पीकर मेरा एक काम कर दो।"

चंद्रमोहन को चाय का प्याला पकड़ना पड़ा। दीपा की मां भी वहीं बैठकर चाय पीने लगी। चाय पीते-पीते बोली, "मेरी देह में आज पीड़ा है, कहीं जाने को मन नहीं होता, बाबा की दशा तुम देख ही रहे हो। दीपा को आज डाक्टर के पास जाना है। परसों ही जाने की पारी थी, पर दो दिनों में इस वृष्टि के मारे निकलना असंभव हो गया। अगर तुम इसके साथ चले जाते तो हम लोगों पर एक उपकार होता। डाक्टर लगभग साढ़े सात बजे अपने चेंबर मे आते है, पहले पहुंच जाओगे तो छुट्टी भी पहले ही मिल जाएगी। मेरे लिए भी कुछ गोलियां ले आनी हैं। बाबा की भी दवा लानी है। अगर हां कहो तो दीपा तैयार हो जाए।

"इसमें ना की भी संभावना होगी, यह आपने कैसे सोच लिया, मुझसे पूछने की तो बात ही नही थी। सीधे आपको आज्ञा देनी थी।"

दीपा की मा मुस्कराई, और दीपा से बोली, "कपडे बदल लो।"

लगभग दस मिनट में कपड़े बदलकर दीपा चलने को तैयार होकर आ गई। चंद्रमोहन और दीपा ने पलभर एक-दूसरे को देखा। फिर कमरे के कोने में सितार खडा करके चंद्रमोहन दीपा के आगे-आगे मकान के बाहर निकलने लगा तो बरामदे में आकर दीपा की मां दोनों का जाना देखती रही।

मुख्य सडक पर पहुंच कर रिक्शे की प्रतीक्षा मे दो-तीन मिनट रुकने के बाद भी कोई खाली रिक्शा नही मिला तो दीपा बोली, "यहा रुके रहने से तो कहीं अच्छा है कि हम पैदल चलते रहें। आगे रिक्शा मिल जाएगा तो ले लेंगे।"

"अरे, मैं तो आपके बारे में सोच रहा था कि पैदल चलने मे असुविधा होगी।"

"असुविधा! घर की चहारदीवारी में बंद रहने के लिए पैदल चलने की सुविधा ही कहां मिलती है। पढ़ने जाती थी तो कुछ चलना-फिरना भी हो जाता था, बीमारी आई तो चलने-फिरने की भी सुविधा छिन गई।"

"तुम्हे कोई बीमारी-वीमारी नही है, बेकार मे अपना

खराब किए रहती हो।" चंद्रमोहन ने दीपा को हल्की-सी झिड़की दी जो दीपा को बहुत अच्छी लगी, खासकर तुम से संबोधित होना। उसने चलते-चलते चंद्रमोहन की ओर कनखियों से देखा, और धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "मन के विश्वासों को कोई आधार तो चाहिए ही, कोई कहने-सुनने वाला होना ही चाहिए। घर में होती हूं तो अपनी संतान के प्रति मां और बाबा के सहमे हुए, चिंतित चेहरे बार-बार यह बोध कराते रहते हैं कि जैसे मुझे कुछ है।"

"लेकिन यह गलत है।"

"हो सकता है, पर मां-बाप की वत्सलता के आगे इसे नकारा भी तो नहीं जा सकता। जिस पिंड को उन्होंने अपने रक्त से सींचा हो, उसके प्रति चिंतित होना सहज है, फलाफल तो अपने भाग्य से भोगना पड़ता है।"

"किस डाक्टर के यहां चलना है?"

"कटरे में एक डाक्टर दास बैठते हैं।"

"तब तो हम लोग पैदल भी चल सकते हैं।"

"क्यों नहीं? सुनिए! क्या आपके कोई भाई हुआ ही नहीं?"

"आज यह बात तुम्हारे मन में कैसे आई?" चंद्रमोहन ने पूछा।

"अकेली संतान को बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ता है।"

"लेकिन जीवन में चलना तो अकेले ही पड़ता है, शायद वही सार्थक होना है। विवशता में यदि कोई साथ देने वाला न हो तब एकला चलो की बात सामने आती है, अन्यथा सभी भार स्वयं ही वहन करना कहां की बुद्धिमानी है—खासकर पुरुष के लिए, जिसे द्वंद्वों के बीच जीवित रहना होता है और जिसे जीवन में बहुत कुछ करना होता है।"

चंद्रमोहन बगल में चलती हुई दीपा की यह गहरी बात सुनकर उसका मुंह देखने लगा। श्वेत परिधान में करुणामयी यह दीपा क्या कह गई?

"क्या मैंने कुछ गलत कहा?"

"नहीं।"

"तो चुप क्यों हो गए?"

"सोच रहा था कि घर के भीतर तुम्हे कोई शाप लग जाता है, तुम सिमट कर जैसे संपुट मे बंद हो जाती हो।"

"जो हो, पर अपने उस परिवेश पर मेरा जोर ही कितना है। नसीब की बात मैंने इसीलिए पहले ही कह दी थी। लेकिन आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नही दिया। असल में मा भी एक दिन बाते चला रही थीं, पर मुझे क्या मालूम जो मैं कुछ कहती।"

चंद्रमोहन थोडा रुक कर बोला, "मेरे दो बड़े भाई और थे। सबसे बड़े भाई नहाते हुए नदी मे डूब गए और दूसरे ने आत्महत्या कर ली।"

"आत्महत्या ?" दीपा चौंक कर बोली, "क्यो ?"

"एक लडकी को पाना चाहा था, पर पा न सके, रात में नीद आने वाली कई गोलिया खाकर सो गए।"

"सभी भाइयो का रूप-रंग एक ही था ?" दीपा कुछ कदम चलकर बोली।

"वे लोग बेहद सुदर थे। जिन्होने विष खाया, वे तो सबो मे सुदर थे। सुघर सलोने, कम बोलने वाले। अम्मा उन्हें मानती भी बहुत थी। उनकी मृत्यु के बाद छ महीने तक अम्मा का दिमाग विक्षिप्त हो गया था। यह हम लोगो की तकदीर थी जो वे सुधर गई, अन्यथा पता नही हम लोगो का क्या होता।"

"किसी को न पा सकने का प्रतिफल जीवन का अत ही होता है!"

"यह मैं कैसे कहू। पर जिस लडकी से वे ब्याह करना चाहते थे वह उनने सुदर नही थी। वे तो हसो के राजकुमार थे, वैसे लड़की भी कम सुदर नही थी।"

रात के आठ बज रहे थे। बादल छट जाने से गर्मी बढ गई थी। खंभो के बल्बो पर कीडो की भरमार थी। यूनिवर्सिटी के फाटक के सामने छोटे से पार्क मे जल रहे कवर से ढके हुए नीले बल्ब के चारो ओर बड़े-बड़े असख्य कीड़े मडरा रहे थे। हालैंडहाल होस्टल की चहारदीवारी से सटकर दीपा के साथ चंद्रमोहन कटरे की ओर बढ रहा था। सुदरलाल होस्टल के सामने से ही लड़कों की जमात

यूनिवर्सिटी रोड की दुकानों की ओर जाती हुई मिलने लगी तो चंद्र-मोहन और दीपा एक-दूसरे की ओर देखकर चुप लगा गए। यूनिवर्सिटी रोड के चौराहे से वे दाहिनी ओर मुड़ गए, जहा से डॉ० दास के चैंबर तक पहुचने में केवल पाच मिनट लगते थे।

दवाइयों की उस बडी दुकान मे जहा डॉ० दास बैठते थे बेहद भीड़ थी पर मरीजो को देखने का डाक्टर का तरीका इतना अच्छा था कि किसी भी मरीज को डाक्टर तक पहुचने मे ३० मिनट से अधिक नही लगते थे। दस पुरुष, दस स्त्रियो को वे पारी-पारी से निपटाया करते थे। कक्ष से निकलकर बरामदे मे प्रतीक्षा करने वाले रोगियों को आने का वे स्वयं इशारा करते रहते। कंपाउंडर जिसका आवश्यक होता नापक्रम लेकर चिट पर लिखकर, रोगी को थमा देता। भीतर जाने पर डाक्टर दास, रोगी से ही पहले सब सुन लेते, फिर अपनी ओर से पूछते और तब यदि जरूरत होती तो परीक्षा करते, नही तो पर्चा लिखकर रोगी को दवा लेने के लिए कक्ष से बाहर भेज देते, फिर दूसरे रोगी से निपटने का क्रम चलता।

चद्रमोहन के साथ दीपा प्रतीक्षा करने वाले लोगों के बीच कु पर बैठ गई। लगभग पद्रह मिनट मे डाक्टर दास अपने कक्ष से बाह आए। दीपा ने नमस्कार किया तो उत्तर दे पूछ बैठे, "बाबा कहा है?"

"बाबा और मा दोनो बीमार है।"

"फिर किसके साथ आई हो ?"

चद्रमोहन की ओर इशारा करती हुई दीपा बोली, "आपके साथ।"

डॉ० दास ने पलभर को चद्रमोहन को घूरकर देखा, फिर रोगियो को कक्ष के दरवाजे के पास चलने का इशारा करते हुए बोले, "उठो चलो भीतर, आप भी चलिए।"

दीपा और चद्रमोहन को डाक्टर ने अपने कक्ष मे पहले बिठा लिया। दीपा डाक्टर की मेज के सामने बैठी, चद्रमोहन दाहिने हाथ। डाक्टर ने हाल पूछना शुरू किया तो दीपा बोली, "मैं बहुत अच्छी हूं डाक्ट साहब।"

"यह तो देखकर ही लगता है कि तुम एकदम अच्छी हो। दरअसल

तुम्हे तो कुछ हुआ ही नही था । यह तो पेट की गडबडी से गैस दिमाग पर चढ जाती है जिससे ये सारी परेशानियां खडी हो गई थी । लेकिन इधर पिछले दिनों जितनी तेजी से तुम्हारे स्वास्थ्य मे सुधार हुआ है वह बहुत ही शुभ है, पिछले दो महीने से बहुत अच्छा चल रहा है किंतु हल्की-फुल्की दवाइयां अभी चलेंगी ।"

फिर डाक्टर ने उसके पर्चे पर पुरानी कुछ दवाइया काटकर एक-दो नई जोड़कर पर्चा वापस किया तो दीपा बोली, "और मा-बाबा, के लिए ?"

"बाबा का यह पर्चा है, मा को जो गोलियां दी थी उसका कवर ये है । मां ने यही गोलिया मागी है । बाबा के बदन का दर्द और बुखार अभी गया नही । उन्हें आप जो देना चाहें दें ।" दीपा खामोश हो गई तो डॉ० दास पीरू बाबू का पर्चा देखने लगे और उसमे कुछ और दवा जोड, दीपा को वापस करते हुए बोले, "जाओ, दवाइया बनवाओ और बाबा अच्छे हो जाएं तो कहना, मा के साथ आकर मुझसे जरूर मिल लें—मुझे उन लोगों से कुछ काम है ।"

दीपा नमस्कार करके चलने लगी तो चंद्रमोहन भी उठा और हाथ जोड़े तो डाक्टर दास बोले, "आप थोड़ा रुकिए, दीपा तब तक दवा ले रही है—जाओ दीपा, तुम दवा बनवाओ, इन्हे अभी भेजता हूं ।"

दीपा डाक्टर के कक्ष के बाहर निकल गई तो चंद्रमोहन की ओर मुखातिब हो बोला, "आपका शुभ नाम ?"

"चद्रमोहन ।"

"यहा क्या करते हैं और रहते कहां हैं ?"

"मैं यहां ए० जी० आफिस में नौकरी करता हूं । रहता इन्ही के मकान मे कुछ दूरी पर हूं । पीरू बाबू ने ही लगभग दो महीने पहले मुझे एक मकान दिलवाया । उनकी कृपा के लिए मैं कृतज्ञ हूं ।"

"तो आपका उनके यहा जाना-आना होता है ?"

"जी हां, लगभग रोज ।"

"किसलिए ? देखिए मेरी बात का बुरा मत मानिएगा, ये सब निजी बातें हैं—और मुझसे क्या मतलब, फिर भी पूछ बैठा ।"

अपनी उसी शान मुद्रा मे धीर-गभीर स्वर मे परिस्थिति से एकदम अछूते ढग मे चद्रमोहन बोला, "आप जानते ही होगे कि पीरू बाबू कितने कुशल सितार-वादक है, मैं उनके यहा रोज शाम को सितार सीखने जाता हू।

बहुत ठीक। पीरू बाबू बेहद अच्छा सितार बजाते है। उनका नाम है और आप उनसे सितार सीख रहे है यह आपके भाग्य की बात है?"

'डाक्टर यदि अनुचित न हो तो मैं जानना चाहूगा कि दीपा के इस रोग का कारण क्या है?''

डाक्टर दास मेज पर के पेपर वेट को अपनी अगुलियो मे नचाते हुए बोले, इस रोग का एक ही कारण होता है—मानसिक। यह देह मे कम होता है, मन मे अधिक, अग्रेजी मे इसे फ्रस्ट्रेशन डिजेक्शन कह सकते है। शायद आपको नही मालूम कि इस लडकी का दो बार ब्याह लगा और दोनो बार पैसो के अभाव के कारण कट गया। ऐसी सुदर, पढी-लिखी लडकी के लिए ऐसा ही सुदर और पढा-लिखा वर भी तो चाहिए। हो सकता है, कुछ उसका भी फ्रस्ट्रेशन हो, ब्याह के बाद यह रोग अपने आप चला जाता है, लेकिन तब तक कोई न कोई ऐसा पुरुष उसके सपर्क मे जरूर रहे जो उसके मन लायक हो, उसे पसद हो। आप तो यह समझते ही है। देखिए न, दीपा तभी से नारमल है जब से आपका इस घर मे आना-जाना शुरू हुआ है।"

'लेकिन डाक्टर ...''

'मेरा मतलब यह है मि० चद्रमोहन कि ऐसी खूबसूरत लडकी को आप यदि चाहे तो बचा सकते है और यदि आपने तनिक भी किसी ओर से डोर कमी तो दीपा के लिए मानसिक आघात घातक ही होगा। दीपा आपका सपर्क पाकर प्रसन्न है, सतुष्ट है, यह मैंने तनिक देर मे जान लिया। मैं यहा का डाक्टर हू मि० चद्रमोहन, पर दीपा के वास्तविक डाक्टर आप है, यह कभी भी मत भूलिएगा। आपकी कोई आतरिक विवशता हो, तो भी मेरी प्रार्थना है कि आप यह नाटक करते रहे। यू, ऐसी लडकी सौ मे एक होती है, यह आपको देख के कह रहा हू। अच्छा आप जाइए।''

डाक्टर ने घंटी बजा दी। दूसरी रोगिणी कक्ष मे दाखिल हो गई।

चंद्रमोहन बाहर निकला तो देखा, दीपा बेंच पर चुपचाप बैठी हुई थी। करीब जा बोला, "दवा बनी ?"

"अभी कहां, इतनी भीड है।"

"पर एक बार पता लगाना चाहिए था।"

"इस भीड में मेरा साहस नही हुआ, बैठ गई। दवा बन जाएगी तो आएगी ही, आइए आप भी बैठिए।" दीपा दे सरककर बगल में बैठने को चंद्रमोहन के लिए जगह कर दी।

चंद्रमोहन हंसते हुए बोला, "एक बार देख लू।" चद्रमोहन भीतर कंपाउंडर के पास जा ही रहा था कि दवा बन के आ गई। कंपाउंडर ने नाम पुकारा तो दीपा ने दस का नोट चंद्रमोहन को पकडा दिया।

दवा ले बाहर निकले तो दीपा ने पूछा, "डाक्टर ने आपको क्यों रोक लिया था ?"

"उसने समझा, शायद मुझे भी कुछ दिखाना है।" चद्रमोहन जल्दी मे कह गया।

"पर आपको तो दिखाना-विखाना था नही।"

"नही।"

"तो फिर इतनी देर आपसे क्या बातें होती रही ?"

"मुझसे पूछते रहे कि मै क्या करता हू और तुम्हारे घर कब से जाने लगा हू, और क्यो जाता हूं। जब बताया कि सितार सीखने जाता हूं तो बेहद खुश हुआ। बाबा की बडी प्रशसा करने लगा। आओ रिक्शा ले लें।"

"नही, किसी कासमेटिक्स की दूकान पर चलते तो थोडा अपने प्रयोजन का सामान ले लेती।"

"क्या लेना है ?"

दीपा मुस्कराई, "यही हेयरपिन, बटन, हुक, तागा इत्यादि।"

"चलो।" चद्रमोहन ऐसी एक दूकान के सामने रुक गया और दीपा से बोला, "जाओ तुम भीतर से खरीद लाओ, मैं यही खडा हूं, यदि पैसे बचें तो मेरे लिए एक शेविंग क्रीम ले आना, इरेस्मिक की।"

दीपा दूकान मे चली गई और वहां से, आइब्रो पेंसिल, ललाट पर टीका लगाने वाली पेंसिल, हेयरपिन, बटन, रील, और एक-दो साबुन तथा इरैस्मिक शेविंग क्रीम खरीदकर लगभग आधा घंटा में लौटी।

"अब एक रिक्शा ले लें, देर काफी हो गई है।"

"हां!"

चंद्रमोहन जब रिक्शा पर दीपा के साथ बैठा तो कुछ देर चलने के बाद दीपा बोली, "एक बात पूछूं?"

"पूछो।"

"छिपाओगे तो नहीं, या मिथ्या तो नही बोलोगे?"

"मिथ्या कम बोलता हूं।"

"डाक्टर मेरे बारे मे क्या कह रहे थे?"

चंद्रमोहन ने मुस्कराते हुए दीपा की ओर देखा, "तब से यही सोच रही थी?"

"हां, वह भी इस कारण कि डाक्टर ने मेरे बारे में अवश्य ही आपसे कुछ बातें की होगी। पर आपने अपने मन से कुछ नही बताया।"

"पर बताने को समय ही कहां मिला, तुम्हें बताने के लिए ही तो डाक्टर ने मुझसे कहा था, फिर तुम्हे कैसे नहीं बताता।"

"कहा क्या था?"

"कह रहा था कि तुम्हे हुआ कुछ भी नही है, तुम एकदम ठीक हो। बस तुम्हें हर समय प्रसन्न रहना चाहिए, मन पर तनिक भी बोझ नही होना चाहिए, हसते-बोलते रहना चाहिए। तुम्हारा असली उपचार यही है।" दीपा चुप रही तो चद्रमोहन ने पूछा, "तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया।"

"विवशता के आगे कोई उत्तर भी होता है?"

"विवशता किस बात की है?"

"मेरे पास कौन है जिससे हंसूं-बोलू, कोई सुनने वाला भी तो हो। घर मे रहती हूं तो अहाते के सूनेपन के सिवा कुछ दिखता ही नहीं। आप आने लगे हैं तो नयापन मिला है, लेकिन वह भी कितनी

देर का। क्योंकि आप भी तो अगम, अथाह सागर-से लगते है। कितना तो सोचती हूं किंतु आपसे कहने का साहस ही नही होता।"

बोधिसत्व की-सी शांत मुद्रा मे चद्रमोहन आगे देखता रहा। रिक्शा फाफामऊ रोड पर आ गया था, के० पी० यू० सी० होटल के सामने। बाईं तरफ यूनिवर्सिटी के खूबसूरत सीनेट हाल की इमारत पर नजर गई जिसके कंगूरों और छतों पर चांदनी बरस रही थी। धवल चादनी। सिनेट हाल की घड़ी में नौ बजने वाले थे। चद्रमोहन दीपा की बात का उत्तर नही देना चाहता था। उत्तर देने के लिए उसके पास कुछ था भी नहीं, तभी भरी हुई एक ट्रक, घरघराती हुई ढेर-सा डीजल का धुआं छोड़ती हुई बगल से गुजर गई। धुए के अंबार मे रिक्शा ढंक गया, दीपा ने हाथ का रूमाल नाक पर लगा लिया। किंतु जल्दी से अपना रूमाल पतलून से निकाल न पाने के कारण, चद्रमोहन ने दीपा के आंचल से ही अपना मुह ढंक लिया। धुएं का प्रभाव खत्म हो गया तो साड़ी में बसी इत्र की गंध देह-मन मे भर गई। चंद्रमोहन ने मुह पर से आंचल हटाया तो देखा, दीपा उसे निहार रही है, आखों से न जाने क्या कहती हुई, क्या पीती हुई···! सड़क पर, अहाते के आगे घर के फाटक के सामने जब रिक्शा रुका तो उस समय नौ बज चुके थे। आगे-आगे हिरनी-सी प्रसन्न दीपा और पीछे अपनी सौम्य मुद्रा में चद्रमोहन दाखिल हुआ। पीरू बाबू और उनकी पत्नी प्रतीक्षा कर रहे थे। चंद्रमोहन को बैठने के लिए आदर से कुर्सी सरकाती हुई दीपा की मां बोली, "कोई कष्ट तो नही हुआ बेटा?"

"नही, कष्ट किस बात का?"

"डाक्टर साहब कुछ कह रहे थे?" पीरू बाबू ने पूछा।

"तबीयत सुधरने के बाद कहा है आप लोग उनसे एक बार मिल जरूर लें।"

"पीरू बाबू कुछ सोचकर बोले, "और दीपा के बारे मे भी कुछ कहा?"

"हां, कह रहे थे कि दीपा को हुआ तो कुछ भी नही है, उन्हें टहलने, घूमने और प्रसन्न रहने की आवश्यकता है। आप दोनों की

दवाए भी हैं खाने की विधि आप लोग जानते ही हैं।"
हा हा।
तो मुझे अब आज्ञा है ?"
'हा बेटा बडी कृपा की तुमने, आज बडी देर हो गई, मा प्रतीक्षा करती होगी।" दीपा की मा बोली।
"हा आप भी यही सोच रही हैं, अच्छा नमस्कार।" दीपा भी वही खडी थी। चद्रमोहन के नमस्कार का अपनी मा और बाबा द्वारा आशीष देना देखती हुई।
चद्रमोहन अपने घर पहुचा तो मा गलियारे मे बैठी हुई धीमे-धीमे हाथ मे पखा झल रही थी। शारदा कमरे मे पढ रही थी। बेटे को देखते ही बोली "आज कहा देर कर दी बेटा ?"
"आज देर हो गई अम्मा, पीरू बाबू तीन दिन मे बुखार में पड़े हैं, उनकी पत्नी भी कल से अस्वस्थ है। कोई दवा लाने वाला नही था। सो उन्ही के लिए दवा लाने चला गया था। सितार बजाना तो सात बजे ही समाप्त हो गया था। दवा लाने गया तो वहा बडी भीड थी। देर वहीं हो गई, सोचा था जल्दी आ जाऊगा पर आ नहीं पाया।"
"मैं तो बहुत चितित थी कि आखिर तुम आए क्यों नही !"
"हा, मैं तुम्हारी चिंता को समझ रहा हू। पीरू बाबू की पत्नी भी यही कह रही थी, लेकिन करता क्या, लाचार था।"
"अच्छा चलो, कपडे उतारो, खाना खाओ।"
'शारदा खा चुकी है ?"
"नहीं, मैंने कहा कि तू खा ले तो बोली—भइया को आ जाने दो जल्दी क्या है।"
हल्की-फुल्की बातचीत के साथ भोजन समाप्त होते-होते लगभग ग्यारह बज गए। चद्रमोहन ऊपर अपने कमरे मे गया तो उस समय साढे ग्यारह बज रहे थे। बिस्तर पर लेटा तो थके होने के बावजूद, नीद नही आई। दीपा के आचल से निकलने वाली गंध अब भी जैसे अगल-बगल महक रही थी। बार-बार उसने सोने की कोशिश की प

आंखें मूंदने पर घंटे-दो घटे पीछे का वह सभी कुछ और भी स्पष्ट दीखने लगता । वह वडी देर तक विस्तर पर करवटें बदलता रहा ।

पांच

कल, डूबते दिन से लेकर रात के नौ बजे तक चद्रमोहन के साथ दीपा थी, उसका रूप था, गध थी और देह का सुखद स्पर्श था । आज उगते सूरज मे अपनी देह मे हल्की-हल्की पीडा थी, आखो मे रात के सम्मोहन की खुमारी थी, रात में देखे गए किसी वेहद मीठे सपने की याद थी । वडे प्यार से रखे गए ललाट पर किसी के हाथ के दबाव से आखें खुली तो देखा, सिरहाने मा बैठी है । स्नेहभरी-ममतामयी आखो वाली मां । चंद्रमोहन उठकर बैठ गया ।

"आज क्या बात है बेटा, जो इतनी देर तक सो रहा है ?" मन-प्राणों पर वत्सलता की फुहारें बरस गई, "तबीयत तो ठीक है ?"

"हां मां, तबीयत एकदम ठीक है, न जाने क्यों रात नींद देर से आई !"

"अभी और सोएगा ?"

"नही मा, आज इतवार है, कमरे की सफाई करनी है, बाजार जाना है, शारदा सिनेमा देखने को कह रही थी।"

"हा, हा ।"

"तो सोचता हू दिन के साढ़े तीन बजे वाला शो उसे दिखा लाऊं ।

चलो नीचे चलें।"

"बाहर छत पर आया तो साफ आसमान के नीचे चटख, तेज धूप फैल रही थी। झांककर देखा तो पाल बाबू और बूढ़े सक्सेना साहब गाय लेकर आने वाले ग्वाले का इंतजार कर रहे थे। चंद्रमोहन नीचे उतर गया और नहाने से पहले अपने कमरे को दो बाल्टी जल से धोकर दोनो खिड़किया और दोनो दरवाजे खोल दिए। फिर स्नान कर साइकिल मे तरकारी खरीदने कटरा चल दिया। जी हुआ, दीपा की ओर मुड़ जाए। पर मन की इस प्रबल इच्छा को दबाकर, एडल्फी की बगल से ही कटरे की ओर मुड़ गया।

सब्जी लेकर लौटते, नहाते-खाते तक एक बज गया। सभी लोग खा-पीकर, नीचे के कमरे मे आराम कर रहे थे। मां अपनी खाट पर लेटी थी, चंद्रमोहन बहन की खाट पर और शारदा जंगले पर बैठी हुई बातें करती हुई बाहर देख रही थी, तभी किसी ने जंजीर खटखटाई।

"महरी आ गई क्या, आज बड़ी जल्दी आ गई। शारदा, दरवाजा खोल दे।"

"शारदा ने बाहर खुलने वाले छोटे से जंगले से झांककर देखा। फिर मा के पास आकर बोली, "अरे ये तो कोई और है ? दो बंगाली महिलाएं। मा बेटी लगती है।

चंद्रमोहन चौंका, चारपाई से उठकर जंगले से झांका तो देखा, दीपा और उसकी मा खड़ी है।

"जाओ-जाओ, द्वार खोलो।" शारदा से मा बोली और स्वयं भी उठकर गलियारे की ओर गई।

द्वार खोल शारदा ने दोनो को हाथ जोड़े, फिर शारदा की मा और दीपा की मा ने एक-दूसरे को नमस्कार किया। दीपा की मां ने शारदा के सिर पर हाथ फेरा। शारदा की मा दीपा को बाहों मे भरती हुई पीठ सहलाती हुई आशीष देने लगी। सभी आंगन मे पहुंचे तो चंद्रमोहन मुस्कराते हुए अपनी मा से बोला, "तुमने दीपा को पकड़ा, मा ने शारदा को पकड़ा लेकिन मुझे तो किसी ने पूछा ही नही।"

"अरे बेटा," दीपा की मां बोल पड़ी, "ऐसा क्यों कहते हो, तुम्हारे बाद ही सब है, लेकिन जानते हो, बेटियां पराया धन होती है और पराये धन की अधिक चिंता करनी पडती है।"

चंद्रमोहन की मा मुस्कराती हुई बोली, "इसे यह अभी क्या जानेगा ? आपने बड़ी कृपा की जो आ गई। हम लोग भी आपके यहां आने की सोच रहे थे, लेकिन अभी नया-नया घर, पास-पडोस को समझा-बूझा नही, इसलिए संकोच हो रहा था।"

"नही, नही, संकोच की कोई बात नही, इस मुहल्ले में सभी भद्र लोग है। वैसे समय तो बडा खराब है, किसको क्या कहा जाए।"

"किंतु बातें क्या खडे-खड़े होंगी, आइए कमरे में बैठें।"

"अगर घर में चटाई हो तो यहीं अमरूद के पेड तले बैठिए, यह जगह मुझे बहुत प्रिय है।"

"आप पहले भी इस घर में आ चुकी हैं क्या ?"

"हां, आज से पांच साल पहले मेरे एक सबधी रहते थे और इसी तरह घर को खूब स्वच्छ रखते थे। जब कभी दिन मे आती थी तो यहीं बैठती थी। गलियारे से स्वच्छ वायु आती रहती है। पखे की कोई दरकार नही रहती।"

शारदा चंद्रमोहन के कमरे से बडी वाली दो शीतलपाटिया उठा लाई और अमरूद के पेड़ तले मिलाकर बिछा दिया। एक ओर मा के साथ दीपा बैठी, दूसरी ओर मा के साथ शारदा बैठी। बैठते ही मां ने टोका, "तुम बैठोगी या चाय-वाय बनाओगी ?"

"नही, नही, चाय की चिंता मत करिए, अभी-अभी भोजन किया है। चाय की कौन-सी बेला हो आई है ?"

तभी महरी आ गई। शारदा की मा खुश हो बोली, "बड़े मौके से आई, आज तनिक तेजी से हाथ चलाओ, हमारे घर अतिथि आए है।"

दीपा की मा बोली, "बस थोडी दूर पर रहते है, अगल-बगल होते तो दिन मे बार-बार आते।"

"इसके बाबा की तबीयत कैसी है ?"

"आज तो काफी ठीक है, कल ये ही तो दवा ले आए थे। मैं भी

ठीक नहीं थी लेकिन आज पूर्ण निरोग हू । दीपा कई दिन से कह रही थी, यहा आने को । आज मन थोडा हल्का रहा तो सोचा, आप के दर्शन कर आऊ उस मा के दर्शन जिसने गगाजल-सा पवित्र बेटा जना है ।' दीपा की मा ने चद्रमोहन की ओर देखा ।

बेटे की सराहना से प्रसन्न हो मा बोली, "बेटा आपका है ।"
हम दोनो का है, आप विश्वास करिए, इसे देखने से मन नहीं अघाता और वैसी ही रूपवती बेटी ।"

बेटी तो आपकी भी रूप मे किसी से कम नहीं है ।" चंद्रमोहन की मा बोली, 'भगवान ने एक बेटा देकर छीन लिया ।"

दीपा की मा की आखे भर आईं । आचल से आंखो की कोर पोछती हुई बोली देने और लेने वाला, दोनो ही एक है तो रोना क्या, पर मन नहीं मानता । पिडदान और तर्पण के लिए कुल की एक कडी तो चाहिए ही ।'' दीपा की मा ने आखें मूद ली ।

शारदा उठी और दीपा की उगली पकडती हुई बोली, "आप मेरे साथ आइए चलिए ऊपर भाई के कमरे मे बैठें, यहा तो इन लोगों का रोना-धोना लगा रहेगा ।'

दीपा को लेकर शारदा ऊपर के कमरे मे चली गई । दीपा ने चप्पल कमरे के बाहर ही उतार दी तो शारदा बोली, "आपने चप्पल क्यों उतार दी ?"

मुझे कोने मे रखा सितार दिख गया तो समझ गई कि यह पूजा का कमरा होगा ।"

पलभर शारदा ने दीपा की आखो मे देखा, "आप लोग कला की इतनी पूजा करती है ? बदले मे सरस्वती आप लोगो को देती भी है ।"

हमीं लोगो को क्यो, जो भी पूजा-अर्चन करता है सभी को मां देती है । तख्त पर बैठती हुई दीपा ने देखा, "आलमारी की बगल मे साधार दीवी म बोधिसत्व के धड तक की शीशे मे मढी तस्वीर टगी हुई थी जिसकी आखो मे अपार करुणा फूट रही थी । दूसरी दीवार पर टगी हुई चद्रमोहन की उसी मुद्रा की तस्वीर की ओर इशारा करती हुई बोली यह तस्वीर किसने खीची है ?"

"क्यों ?" शारदा ने पूछा।

"चेहरे की आकृति में तो भगवान ने इतनी समानता दी है किंतु तस्वीर की मुद्रा भी एक-सी उतरी है। निश्चय ही यह किसी कुशल कलाकार के हाथों की देन है।"

"हां, आप ठीक कहती हैं। भइया जब लखनऊ में पढ़ते थे तो वहीं के किसी बड़े फोटोग्राफर ने यह तस्वीर खींची थी। आप सुनकर हंसेंगी, कि वह फोटोग्राफर कोई और नहीं भइया का 'रूम मेट' था। उसी ने दोनों तस्वीरें भइया को भेंट की थी। वह आगे पढ़ने के लिए अमरीका चला गया। भइया यहां चले आए। कभी-कभी उसकी चिट्ठियां आती है तो भइया को 'माई डियर लार्ड बुद्धा' से ही संबोधित करता है।"

"जो एकदम उचित है।" दीपा बोली।

"ऐसा कइयों ने कहा है।" फिर एकाएक बात बदलकर बोली, "सुना है आप वायलिन बहुत अच्छा बजाती हैं।"

"नहीं, नहीं, बहुत अच्छा तो नहीं बजाती, बस बजा लेती हूं।"

"हमें नहीं सुनाइएगा ?"

"क्यों नहीं, लेकिन कभी घर तो आओ, उधर से ही पढ़ने भी जाती होगी।"

"पर मैंने घर देखा कहां है। एक बार देख लूंगी, आते-जाते, जब जी चाहा मिल लिया। मुझे सितार और वायलिन बहुत अच्छे लगते हैं। सीखना चाहती थी पर मां ने मना कर दिया। बोली—जो सीख रहा है उसे ही सीखने दे। और गाती भी तो बहुत अच्छा है ?"

"अरे, ये किसने कहा, कभी आपके भइया के आगे तो मैंने गाया ही नहीं, उन्होंने कहा था क्या ?"

"नहीं, नहीं।" शारदा हंसती हुई बोली, "उन्होंने तो केवल वायलिन वाली बात कही थी, बाकी तो मैंने अंदाज से 'पलूक' मारा था, क्योंकि बंगाली परिवार की लड़कियां प्रायः गाती हैं। कंठ और केश दोनों ही उनके कोमल होते हैं। एक तो देख ही रही हूं, दूसरा मान लेती हूं।"

दीपा मुस्कराई, "भाई जितना ही खामोश, बहन उतनी ही चुलबुली ।"

"अरे, उनकी बात मत करिए. वे तो सचमुच भगवान बुद्ध हैं, हम और आप आज से एक-दूसरे के लिए 'तुम' हैं । क्यों, है न ?"

"बेशक ।" दीपा भी उसी अंदाज से बोली ।

"तो हाथ मिलाइए ।"

दीपा ने अपना दाहिना हाथ, शारदा की ओर बढ़ा दिया । शारदा दीपा की कोमल हथेली पकड़ के उसे चूमती हुई बोली, "भइया इन्हीं उंगलियों की तो मुझसे प्रशंसा कर रहे थे । कोमल, नरम उंगलियां, गज चलाते थकती नहीं ? तो हम लोग इस दोस्ती को 'सेलेबरेट' करेंगे, आओ नीचे चलें ।" शारदा नीचे तेजी से उतरी, तब तक महरी ने बर्तन मांज लिए थे, "और भइया ?" जाते ही मां से पूछा ।"

"भइया अभी बाहर गए हैं, आ रहे हैं ।"

"बाहर गए हैं । घर में मेहमान आए हैं, और पूछा भी नहीं कि मिठाई-विठाई लानी है । बाहर चले गए, अजीब बात है, दूसरों का ख्याल करना पता नहीं उनको कब आएगा ? बड़ी मुश्किल से इलाहाबाद में तो मुझे एक दोस्त मिली है और मैं मुंह मीठा किये बगैर चली जाने दूं ।"

"दीपा से दोस्ती भी कर ली ?" शारदा की मां बोली ।

"दोस्ती ही नहीं, पक्की दोस्ती ।"

"अभी आ रहा है, तो मिठाई मंगा लेना ।"

तभी चंद्रमोहन आ गया, प्लास्टिक की जालीदार नीले रंग की डोलची में मिठाइयां और पान के दोने रखे ।

"लो भइया आ गए ।"

शारदा लपक कर डोलची पकड़ के देखती हुई बोली, "देखें तो क्या लाए हो !" फिर मिठाइयां देखकर प्रसन्न हो बोली, "तुम कैसे जान गए कि मुझे मिठाइयों की जरूरत है ?"

"क्योंकि आज घर में दीपा आई है उससे दोस्ती जरूर कर ली होगी ।"

शारदा दीपा का मुंह ताक हंसती हुई बोली, "देखा, मेरे भाई को कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती । खुश है तो धरती-आसमान एक कर देंगे, नाराज हो गए तो दुनिया इधर से उधर हो जाए, अपनी बात से टलेंगे नही ।"

"अच्छा जाओ, चाय-वाय बनाओ, बोलो कम ।" चंद्रमोहन ने धीरे से गंभीर स्वर में कहा ।

शारदा जीभ काटती हुई चौके मे घुस गई । चाय का पानी चढा, बीच में शीतलपाटी के ऊपर अखबार बिछा, उस पर कप-प्लेट, चीनी, चम्मच और मिठाइया रख दी ।

"इतनी तैयारी करने की आवश्यकता, चौके मे से ही चाय बनाकर, ले आ के सबको पकड़ा देती ।" दीपा की मां कहने लगी ।

"आप जानती नही हैं, इसकी अजीब-सी एक आदत है—इसके पास अगर कोई इसके मन का आ गया तो घर-आंगन एक कर देती है—कहा उठाएं, कहा बिठाएं, क्या खिलाए, क्या पिलाए । और कही, यदि उल्टा हुआ तो ऐसा मुह बिचका के मन मार लेती है कि जैसे इसकी देह मे उठने-बैठने की भी ताकत न हो । आज दीपा को देखकर फूली नही समाती ।" शारदा की मां बोली ।

"दीपा और उसकी मां दोनो प्रसन्न हो शारदा की ओर देखने लगीं ।

थोड़ी देर में चाय बना के बीच मे रख दी । फिर प्यालों में भरने लगी । प्याले चार ही सामने देख दीपा बोली, "और मा किसमें पीएंगी ?"

"अम्मा गिलास मे पीएगी, कप मे नही पीती ।"

"क्यो ?" दीपा ने पूछा ।

"चूकि ये चीनी मिट्टी के बने होते है और चीन ने भारत पर हमला किया था ।"

दीपा चंद्रमोहन दोनो एक साथ हंसते हुए, एक-दूसरे की ओर ताकने लगे । दीपा की मां हंसती हुई बोली, "जिसके घर में यह बहू बन के जाएगी उसका घर भर जाएगा ।"

"आप ठीक कहती हैं, पर यह पहले जाए तो।"

"जाना ही पड़ेगा, क्योंकि कमाने वाले अकेले भइया और ऐसी विकट महगाई।" शारदा स्वयं बोल पड़ी, "पर अभी थोड़ी देर है, जरा एम० ए० पास कर लू।"

"लीजिए, खाइए।" शारदा की मां बोली।

"नही, मैं खाऊंगी कुछ भी नही। हा, चाय पी लूं तो पान खाऊंगी।"

"यह कैसे होगा, कुछ तो खाइए ही।" शारदा की मां बोली।

"नही, मैं तो अभी भोजन करके आ रही हूं। हम लोगो की अवस्था बार-बार मुंह जूठा करने की अब कहा रही?"

"ये कैसे कहूं, आप पहली बार मेरे घर आई हैं, मुंह मीठा तो करना ही होगा।" शारदा की मा ने हाथ जोड़ दिए।

"जुड़े हुए हाथ पकड़ती हुई दीपा की मां बोली, "ऐसा न करिए, मैं आपका मन रख देती हूं।" फिर प्लेट उठा चंद्रमोहन की ओर बढ़ाती हुई बोली, "तुम अलग ही बैठे रहोगे या पास भी आओगे! मेरे घर तो चाय पीते नही, क्या अपने घर भी नही पीओगे? यहा आओ।"

मुस्कराता हुआ चंद्रमोहन पास आकर बैठा तो दीपा की मां एक मिठाई उठा उसके मुह से लगाती हुई बोली, "मुंह खोलो।"

"आप खाइए, मैं भी खाऊंगा। मेरे लिए तो अलग प्लेट मे रखी है ही।"

"नहीं, नही, पहले इसे तो खा लो।"

चंद्रमोहन ने मिठाई खा ली तो दीपा की मा ने शारदा और दीपा की प्लेटों में मिठाइयां डाल दी और एक मिठाई खुद खाने लगी। फिर सबने चाय पीना शुरू किया।

चाय पीते-पीते शारदा दीपा से बोली, "अब तीन बजे वाले सिनेमा हम लोग जाएंगे, क्या तुम भी चलोगी?"

"आज तो बाबा के पास रेडियो स्टेशन से आमन्त्रित अतिथियों के बीच, पुष्पोद्यान में संगीत और वाद्यवृन्द के कार्यक्रम का निमंत्रण आया है। मालविका कानन और प्रसिद्ध वायलनिस्ट श्रीमती एस० राजम के कार्यक्रम हैं।"

"तव तो हम लोग भी चल सकते है ।"

"क्यों नही ?" दीपा वोली ।

"कितने वजे से है ।"

"साढे छ: वजे से ठीक आरंभ हो जाएगा और सवा छ: वजे तक वहा बैठ जाना होगा ।"

"क्यों अम्मा, हम लोग भी जाए ।"

"जाओ, पर लौटोगे कितने वजे ?"

"दस के पहले समाप्त क्या होगा ।"

"तो हम लोग साढे पाच वजे तुम्हारे घर आएंगे । क्यो भइया, चलोगे न ?"

"तुम्हारी तवीयत है तो चल सकता हू ।"

"वैसे मन तो नही था ।" शारदा ने व्यंग्य किया, "सुनती हो अम्मा, सितार के आगे तो खाने-पीने की सुधि नही रहती, ऐसी वायलनिस्ट आई है तो ये मान जाएगे ?"

चाय के वाद पान खाकर दीपा की मां वोली, "अव आज्ञा दीजिए ।"

"फिर कव आएंगी ?"

"आप जव आज्ञा करेंगी या जव भी मन कर गया, लेकिन कभी आप भी तो मेरा घर पवित्र करिए ।"

"मेरे आने से घर क्या पवित्र होगा ?"

"जिसका सुत ऐसा पवित्र, उसकी जननी कैसी होगी, क्या यह कहने की वात है ! आपकी कृपा तो करनी ही होगी ।"

"मैं आऊंगी, पर इतना ऊंचा स्थान मुझे न दीजिए ।"

"आना ही होगा, यह आपकी वहुत वड़ी कृपा होगी ।"

सड़क तक उन लोगों को शारदा के साथ चंद्रमोहन पहुंचा आया । घर मे लौटे तो मा दीपा के वारे मे कहने लगी, "वड़ी सुदर लड़की है, देह-मुह, नाक-नक्श कितने सुंदर है । स्वभाव मे भी वैसी शात धीर-गंभीर । पर भगवान ने यह मूर्च्छा का विकट रोग दे दिया । यह रोग तो मुह की कांति ही हर लेता है, देह का रक्त पानी हो जाता है ।

रेशम की चादर मे टाट की पैवंद, ऐसे सुघर-सलोने मुह पर उदासी और चिंता की ऐसी रेखाएं।"

"यह रोग होता क्यो है मा ?" चंद्रमोहन ने पूछा।

"किसी भी रोग का कोई ठोस कारण होता है भला। रोग तो रोग, अपना-अपना भाग्य, लेकिन लोग कहते हैं, बहुत अधिक चिंता ही मानसिक विकार उत्पन्न कर देती है। वैसे, किसी-किसी को शादी-ब्याह मे पहले यह रोग हो जाता है और शादी-ब्याह के बाद अपने-आप चला भी जाता है, जब लड़की मां बन जाती है। लेकिन दीपा को देखकर दया आती है। वैसे पीरू बाबू की आमदनी का साधन क्या है ?"

"मकान के पिछले हिस्से मे दो किरायेदार हैं। उनसे किराया आ जाता है और पीरू बाबू को शायद कुछ पेंशन भी मिलती है, बाकी मैं कुछ नही जानता।"

"भले लोग हैं, उसकी मां तो तुझे बहुत प्यार करती है।"

"नही, पीरू बाबू भी बहुत स्नेह देते है मा।"

लगभग चार बजने को हुए तो शारदा बोली, "भइया, अब तो तैयार होओ, चलो।"

"अभी से वहां चलकर पानी पीटेगी क्या ?"

"अरे भाई, अभी कुछ देर हम लोगों को यहां से निकलते लगेगी। कुछ देर दीपा के घर लगेगी। चलते-चलाते साढ़े पांच तो बज ही जाएंगे।"

शारदा की इस जल्दबाजी के कारण चंद्रमोहन को अपने इरादे से लगभग आध घंटा पहले ही तैयार होना पडा। उसने पीले सिल्क का कुरता पहना, धुली धोती पहनी, चप्पल डाल कमरे से बाहर निकला तो शारदा बोली, "आज तो भइया एकदम कलाकार दीख रहे हो।"

"चल, चल।"

शारदा की मा हंसने लगी, "ठीक तो कहती है। सितार की पूजा करेगा तो कलाकार कहलाएगा ही, जल्दी आना।"

शारदा के साथ, जैसे ही चंद्रमोहन पीरू बाबू के घर पहुंचा कि

दीपा बरामदे में ही मिली। मुस्कराते हुए चद्रमोहन को देखती हुई बोली, "चंदन चर्चित पीत कलेवर, पीत बसन बनमाली।"

शारदा बोल पड़ी—

"एतत पनमे, विचलित पत्रे, बोलत बचन सँभार,

चल सखि उनके दर्शन करने, जापर जग बलिहार।"

एक बार दीपा की ओर देखकर चद्रमोहन धीरे से बोला, "आजकल तुम लोग 'गीत गोविंद' पढ रही हो क्या ?"

"दीपा मुस्कराकर शारदा की बाह पकडकर बोली, "इस साडी में तो खिल रही हो ?"

"लेकिन, तुम क्या पहनोगी ?" शारदा ने दीपा के कधे पर हाथ रखकर पूछा।

चलो भीतर देखना।

दीपा शारदा की बाह पकड़े हुए ही भीतर आई। बरामदे मे लेटे हुए पीरू बाबू से शारदा का परिचय कराया। चद्रमोहन के लिए पीरू बाबू के पास कुर्सी सरका, उस पर बैठने का इशारा किया। जब चंद्रमोहन बैठ गया तो वह दीपा को लेकर अपने कमरे मे चली गई।

कमरे की सजावट और सफाई देखकर शारदा बोली, "क्या कहना, अभी मुझको तुमसे बहुत कुछ सीखना है।"

"अच्छा बैंठो, मक्खनबाजी किसी और की करना, मेरे पास क्या है ?"

"तुम तो हिंदी साहित्य को छात्रा रही हो, बगला का कहना ही क्या, तुलसीदास जी ने कही लिखा है सुना ही होगा, 'मोहि नारि न नारि को रूपा' वही रूप तुम्हारे पास है दीपा, अपरूप रूप। मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर रही हूं, जो है उसे स्वीकार करती हूं।'

दीपा ने प्यार से शारदा को बाहों मे भरा और चूम लिया, "इतने दिन तक तू कहा थी ?" फिर बक्स खोल उसमे से हल्के पीले रग की बहुत ही पतली पाड वाली हैंडलूम की साडी-ब्लाउज निकालकर पहनने लगी। दीपा साड़ी का आचल पीठ पर करने लगी तो शारदा झुक कर उसकी साड़ी का फाल ठीक करने लगी। साडी-ब्लाउज पहन-

कर ललाट पर आईब्रो पेंसिल से छोटा-सा टीका बना, जब दीपा खिड़की के पास टंगे शीशे के सामने खड़ी हुई तो शारदा ने ध्यान से उसे देखा और बेसाख्ता बोल पड़ी—

रवि सुख सारे गतमभिसारे, मदन मनोहर वेषम।
नकुर नितंबिनि गमन विलंबन मनुसर तछदेयेशम
धीरे समीरे, जमुनातीरे, वसत वने वनमाली······।

शारदा मुस्कराती हुई चुप लगा गई तो दीपा बोली, "अधूरा पद ही याद है ?"

"तो क्या उन चचल करों की तलाश है ?" शारदा बेसाख्ता बोल पड़ी।

"दीपा मुस्कराती हुई बाहर निकली। आंगन में आकर देखा— आकाश में बादल पूरी तरह छा गए हैं।

"मुझे तो लक्षण अच्छे नहीं दीखते।" पीरू बाबू लेटे-लेटे ही बोले।

फिर देखते-देखते फुहारें शुरू हो गईं, दीपा का मुंह उतर गया, मेरी किस्मत ही ऐसी है।

चंद्रमोहन और शारदा दोनों आकाश की ओर देखने लगे। फुहारों की गति क्रमश तेज होने लगी, पानी ढंग से बरसने लगा।

मां आकर बेटी के सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई बोली, "हर बात में किस्मत को ही दोष नहीं देते बेटी। इस वृष्टि के साथ लाखों की किस्मत जुड़ी हुई है। देखो शायद कुछ देर में खुल जाए।"

"मान लो, आधे घंटे के बाद खुला ही तो फिर उसके बाद भी तो हम समय से नहीं पहुंच सकते। रेडियो का कार्यक्रम है, हो जाएगा।"

"किंतु ऐसी बरसात में वहां के पुष्पोद्यान में आयोजित यह कार्यक्रम होगा भी कैसे ? और आकाशवाणी के पास इतना बड़ा कोई कमरा न होगा कि इतने आमंत्रित सारे अतिथियों को एक साथ बिठा सकते ?"

"हां, यह तो तुम ठीक कहती हो ?" चंद्रमोहन बोला।

"हां, एक यह ठीक कहती है, दूसरे आप ठीक कहते हैं।" दीपा चिढ़कर बोली।

"अरे !" चंद्रमोहन हंसते हुए बोला, "मैं तो चलने के लिए घर से निकला हूं, तुम मुझे गलत समझ रही हो। अगर रेडियो स्टेशन नहीं पहुंच सकते तो चलो तुम लोगों को सिनेमा दिखा लाऊं, लेकिन वर्षा में घर से निकलोगी कैसे ?"

फिर दस-पांच मिनट तक कोई नहीं बोला। पानी क्रमशः तेज होता जा रहा था। आंगन के हौज पाइप में मोटी धार निकल रही थी, फकफक-फकफककर।

शारदा दीपा से बोली, "एक बात कहूं, मानोगी ?"

"कौन बात ?"

"कहो मानोगी, तब कहूं ?"

दीपा चुप हो, शारदा की ओर भेदभरी चितवन से देखने लगी तो मुस्कराती हुई शारदा फिर बोली, "हां, कह दो तो अभी बताती हूं।"

"अच्छा कहा हां, अब कहो।"

"जब हमारे पास इस समय कोई काम नहीं है तो दो-एक भजन ही सुनाओ।"

"मालो, मालो शारदा, तुमने एकदम ठीक कहा।" पीरू बाबू उठकर बैठ गए, "यही मैं भी कहना चाहता था पर बाबा डर के मारे नहीं कहा कि दीपा बुरा मान जाएगी। दीपा बेटा, हारमोनियम ले आओ, आज भजन ही सुनाओ।"

दीपा ने चंद्रमोहन की इच्छा जानने के लिए उसकी ओर देखा, "आज तक हमने तुमसे कभी भजन और गीत नहीं सुना है।"

दीपा चुपचाप अपने कमरे से हारमोनियम उठा लाई। शारदा की बगल में, तख्त पर बैठ हारमोनियम का सुर ठीक करके राग कल्याण में तुलसी का पद गाने लगी—

ऐसी कौन प्रभु की रीति ?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि, पांवरन पर प्रीति।

दीपा के कंठ की सुरीली आवाज आज चंद्रमोहन के लिए नयी नहीं थी, किंतु आज भजन गाते समय की तन्मयता सर्वथा नयी थी। मंत्र-मुग्ध हो दीपा के मुंह पर आंखें गड़ाए रहा। प्रशंसा से सिर हिलाते हुए

शारदा भी वैसी ही खोयी हुई उसकी बगल में बैठी रही। बेटी की तन्मयता और उसे मिलने वाली मूक प्रशंसा से पीरू बाबू भीतर ही भीतर प्रसन्न हो रहे थे। जैसे दीपा ने भजन समाप्त किया कि चंद्रमोहन बेसाख्ता बोल पड़ा, "वाह ! दीपा वाह ! मेरा अनुमान सही था, इतने बड़े कलाकार की बेटी साधारण लड़की हो ही नहीं सकती। तुम धन्य हो, मा-बाबा धन्य है।"

"नहीं बेटा, धन्य तो असल में तुम हो गंगाजल, जिसने इस घर को पवित्र किया है। दीपा को जीवनदान दिया है, हमें इतनी बड़ी चिंता से मुक्त किया है।"

"सुनो मा," चंद्रमोहन बोला, "प्रशंसा उसकी होनी चाहिए जो योग्य हो।

"आप बड़े नहीं, आप यह लखनऊ घराने का अंदाज छोड़िए और दीपा को कुछ और गाने दीजिए।"

"हां दीपा, कुछ और गाओ। अब एक सूरदास का पद···।"

दीपा ने हारमोनियम संभाला और सूरदास का पद आरंभ किया—

ऊधो मन न भए दसबीस
एक हु तो सो गयो श्याम संग को अवराधे ईस ?
मन न भये···।

ठुमरी की तर्ज पर गाया हुआ सूरदास का पद, पीरू बाबू के उस घर-आंगन में छा गया। उस घर को पवित्र करने की जो बात दीपा की मां ने चंद्रमोहन से कही, उसमें आगे की बात दीपा ने स्वयं कह दी। दीपा को बांहों में भरते हुए शारदा बोली, "तुम इतना अच्छा गाती हो, भइया ने कभी भी यह नहीं बताया।"

"मैं जानता ही नहीं था, तो बताता क्या ?"

"रेडियो स्टेशन पर मला इतना मजा आता।" शारदा बोली, "फिर यह तो कार्यक्रम रेकार्ड भी किया जाएगा, किसी न किसी दिन बजेगा ही, रेडियो पर आएगा ही।"

"हां, वह तो होता ही है, फिर घड़ी देखी—नौ बज रहे थे। अब चला जाए।"

"अरे वैठो अभी, दस कदम पर तो घर है, आज मेरा घर तुम लोगों के कारण कितना भरा-पूरा लगता है।"

"नहीं मा, अब जाने दो।" शारदा वोली, "घर पर मा अकेली ही तो होगी। आज तो खूब मन वहला, अब तो आना-जाना लगा ही रहेगा। दीपा को मला मैं अब छोडने वाली हू।" फिर दीपा को पकड-कर जैसे गले मिलती हुई वह उठ खडी हुई।

"पीरू वावू को प्रणाम कर वे वाहर निकले तो सडक तक छोडने के लिए दीपा आई। चलते हुए शारदा वोली, "अच्छा दीपा, पढकर लौटते समय कल आऊंगी।

छः

ढाई वज रहे थे। सेक्शन के लोग लच मनाकर अपनी सीटों पर जम गए तो सेक्शन अफसर चटर्जी चश्मे के ऊपर से ताकता हुआ वोला, "अरे डायरिस्ट वावू, लेटर रिपोर्ट का क्या हाल है? किसके नाम कितना वाकी है? जरा 'रफ' रिपोर्ट दीजिए तो।"

"डायरिस्ट ने चटर्जी को 'रफ' रिपोर्ट का रजिस्टर पकड़ा दिया। चटर्जी वोल-वोलकर पढने लगा—मौलाना पाच, गिरधर गोपाल सात, सिनहा नौ, चंद्रमोहन ग्यारह, दूवे सात, खन्ना तीन, भारमा पाच, वावा सैंतालीस चिट्ठी। आउट स्टैंडिंग कइसे लेटर रिपोर्ट जाएगा वावा। अब की डी० ए० डी० का रिपोर्ट है, क्यो मौलाना फकरुद्दीन?

"घबराता क्यों है दादा, चला जाएगा ?" थोड़ा रुककर फिर बोले, अभी दो दिन बाकी हैं, इस बीच सब हो जाएंगे।"

"का यार चंद्रमोहन ? सबसे बेसी तुम्हारे नाम बाकी है।"

"देखते तो हैं दादा कि सबेरे से शाम तक जुटा रहता हूं।"

"जुटा रहता तो अब तक फीनिश हो गया होता, एकदम खलास। दस बजे दोफ्तर आएगा, ग्यारह बजे तक पानी पीएगा, पान खाएगा। फिर इधर-उधर चक्कर काटकर खोसी लोगों को ताकेगा, आंख सेंकेगा। तब आके थोड़ा बहुत कागज उल्टे-पुल्टेगा, फिर एक बाजा नहीं कि लंच, और तीन बजे तक इमली के पेड़ तले, पुलिया पर बैठकर यू० एन० ओ० की मीटिंग में बहस करेगा, वर्ल्ड पोलिटिक्स डिस्कस करेगा, भाखन देगा—लौटानी में एक राउंड फिर आख गोरम करेगा।"

"आखें सेंकने लायक खोसी लोग दफ्तर आता है दादा ?"

"क्यों, ह्वाट इज राग वीद द आफिस ? दोफ्तर में कमी क्या है ? सब किसिम का लोग तो यहां भरा है—कवि, लेखक, जुआरी, शराबी, खूनी, फिलासोफर, मुजिशियन और नेता।"

"पाच हजार आदमियों की जमात कम नही होती चटर्जी बाबू।" मौलाना बोले।

"अब तो कोई नया-नया ग्रेजुउट लोग आया है, ये तो किसी का सुनता ही नहीं।" चटर्जी फिर बोला।

"क्या कहते है दादा, आप हम लोगों को नाहक बदनाम करते हैं, इतना काम करते है फिर भी आप लोग खुश नही, क्या चाहते हैं, इतने रुपयो मे जान दे दें।" चंद्रमोहन बोला।

"इतना रुपिया," चटर्जी ने मुह बनाया, "मोशाय, आपका दिमाग ठिकाने में है ? यह नौकरी न मिला होता तो बाहर दो कौडी को मोहंगा होता।"

"यह लीजिए, आप दसवा दर्जा पास करके एक हजार बटोरें, एम० ए० पास करके हम दो कौडी को महंगे है, उल्टा चोर कोतवाल को डाटे।"

चटर्जी चिढ़ गया, "हमारी तो कट गई मि० चोंद्रामोहन, आखिरी

एक्सटेंशन पर चल रहा हूं, लेकिन तुम तो अभी परमानेंट भी नहीं हुआ। कैरेक्टर रोल मे एक खराब इंट्री मिला कि दिन मे ही आकाश का तारा नजर आने लगेगा ?"

तभी बी० ओ० का चपरासी सलाम लेकर आया। चटर्जी कुछ जरूरी कागज और फाइलें उनके पास भेज रहा था। उठ खड़ा हुआ और चलते समय मौलाना से बोला, "मौलाना साहब, यार ये फाइलें और ये कागज, जरा देखकर बी० ओ० के पैड मे रखकर भिजवा देना, मुझको तो बुला लिया वहा, देर लग जाएगा। कागज कुछ जरूरी हैं, समझे।"

मौलाना को खुद जल्दी भागना था। चटपट कागजों को पैड मे रखा और बोले, "यार तिवारी, चपरासी के हाथ इसे बी० ओ० के पास भिजवा देना, नही तो यह खूसट लौट आएगा मो मुझे पांच बजे तक रुकना पड़ेगा। शुक्रिया यार, शुक्रिया, घर पर बड़ा जरूरी काम है।"

मौलाना सेक्शन के बाहर हुए, इधर तिवारी ने हाजिरी का छोटा-सा रजिस्टर भी उसी फाइल मे रखकर पैंड मे बाधकर बी० ओ० के पास भिजवा दिया।

थोड़ी देर बाद चटर्जी के वापस आते ही तिवारी बोला, "अरे यार, मौलाना साहब कहा चले गए। हद है। हम लोगों को दादा बदनाम करते है, और ये बूढे लोग पहले ही कन्ना काटते हैं।"

"क्या हुआ, सरक गियो क्या ? काम न धाम, रिपोर्ट करो तो कहेंगे कि इतने सीनियर का रिपोर्ट करते है।"

दूसरे दिन सवेरे दस बजे हाजिरी के रजिस्टर की खोज शुरू हुई। चटर्जी कभी एक, कभी दूसरा ड्रार खड़ाक-खड़ाक खीचने लगा। सेक्शन के दसो आदमी हाजिरी बनाने के लिए चटर्जी की मेज घेर कर खड़े हो गए। रजिस्टर बी० ओ० के पास दस बज के दस मिनट पर चला जाना था। चटर्जी को पसीना आने लगा।

"रजिस्टर तो आपकी मेज पर रहता था, मौलाना साहब भी अभी नही आए।" तिवारी बोला, "लीजिए रजिस्टर के लिए बी०

चपरासी आ गया।"

चटर्जी की धोती ढीली होने लगी, "यार तिवारी, अब क्या होगा?"

"क्या बतावें दादा! शायद मौलाना साहब कहीं रख गए हों। अभी तक आए भी नहीं।"

तभी मौलाना हाथ में झोला लटकाए आ गए।

चटर्जी उखड़ गया, "वाह! आपने देर से आना हुआ तो हाजिरी का किताब छिपा दिया।"

"क्या?" मौलाना के होश उड़ गए, "क्या कहते है चटर्जी साहब?"

"कहते क्या है, एक तो कल जल्दी सरक गए थे, ऊपर से हाजिरी का किताब छिपा दिया। इतना सीनियर होकर, ऐसा हरकत होगा। मौलाना साहब, ये ठीक बात नहीं।"

"अजी कुछ देखा-समझा भी है कि उलूल-जलूल बकते जा रहे हैं। देर से आए हैं तो मेरी रिपोर्ट कर दीजिए, रजिस्टर छिपाने का इल्जाम मुझ पे लगाते हैं। यू इन्सल्ट मी। आइ एम गोइंग टू ब्राच आफिसर। आप समझते क्या है अपने को, क्लर्क इंचार्ज हो गए तो मालूम पड़ता है दफ्तर के मालिक हो गए। न मालूम कितने क्लर्क इंचार्ज इस दफ्तर में पड़े है।"

"अरे-अरे मौलाना साहब, वैठिए तो।" तिवारी मौलाना के कंधे दबाने लगा। चटर्जी लाल होकर, चुपचाप अपनी कुर्सी पर बैठकर बोला, "एक कागज पर 'साइन' करके आप लोग हमें दे दीजिए।"

"जरा सी बात के लिए आप लोग लाल-पीले हो गए, कहीं मौलाना साहब ने साहब के पास जो कल पैड भेजा था, उसमें न गलती से किसी फाइल मे दबकर बध गया हो।" चंद्रमोहन ने कहा।

लोग अपने-अपने काम मे जुटे तो चद्रमोहन फिर बोला, "मौलाना साहब, आज देर कैसे हो गयी? देर से आने की अर्जी भी नहीं भेजी, गाना-पीना रात देर से हुआ था क्या?"

"अमा क्यों उल्लू बनाते हो। बालिश्त भर के लौंडे, हर घड़ी गोली ही दागते रहते हो, बुजुर्गों का जरा भी लिहाज नहीं।"

चंद्रमोहन मुस्कराते हुए काम करने लगा।

घंटे-भर बाद साहब के यहा से पैड लौटा। चटर्जी लौटे हुए कागजो को खोल-खोलकर देखने लगा कि कोई कागज पास होने से रह तो नही गया है। एक मोटी फाइल खोली तो हाजिरी का रजिस्टर निकला।

"वाह, ये रहा रजिस्टर!" चटर्जी चिल्लाया।

सब अपनी कुर्सी छोडकर मेज की ओर लपके।

"और इल्जाम मेरे सिर मढा जा रहा था।" मौलाना बैठे ही बैठे बोले।

"लाइए दस्तखत करें।" चद्रमोहन ने रजिस्टर खोला तो सबके नाम के आगे बी० ओ० की लाल पेंसिल का गोला लगा था, "ये देखिए, बी० ओ० ने गोला मार दिया।"

"अरे! मौलाना साहब तो बच गए हैं, उनका तो आज का दस्तखत मौजूद है।"

"क्या?" सभी अचरज से रजिस्टर देखने लगे। चटर्जी ने भी देखा।

"क्यों मौलाना साहब, एडवांस दस्तखत मार गए थे?" चद्रमोहन बोला।

"क्या बकते हो जी," मौलाना तपाक से उठकर रजिस्टर देखते हुए बोले, "क्या बदतमीजी है। सरासर जाली है, मेरे हाथ की लिखावट ये नही है।"

"खूब रही, जैसे दस-बीस हजार का दस्तावेज है कि दूसरा जाल कर बैठा है और आपकी ही कलम की रोशनाई में।"

"अमां यार, तुम बिना बुलाए खाला जान की तरह टपक क्यों पड़ते हो? आखिर तुम हो कौन, सेक्शन अफसर हो, बी० ओ० हो?"

"ये झांसा किसी और को दीजिएगा मौलाना साहब, कल शाम घर जाते समय…।"

अचानक मौलाना ने मेज के पीछे लटका हुआ चंद्रमोहन का हाथ दबा के उसकी ओर तिरछी निगाह से आख मारी।

चंद्रमोहन चुप लगा गया।

"हा मि० चोंद्रामोहन, आप क्या कह रहे थे कि कल शाम···।"

"मैं कह रहा था दादा कि कल शाम घर जाते समय जब पैंड भेजा गया था, तो किसी फाइल में रजिस्टर दब गया होगा ।"

"लेकिन मैंने तो मौलाना को सहेज दिया था, इन्होंने क्या देखा ?"

"छोड़िए भी दादा," तिवारी बोला, "रजिस्टर मिल तो गया, अब आप लोग अपनी-अपनी जगह बैठें ।"

कुर्सी खींचकर बैठते हुए चद्रमोहन बोला, "मौलाना साहब, आज की चाय आपकी तरफ से ।''

"रही बेटा रही, लेकिन अब तो खामोश रहो ।" लोग काम करने लगे ।

थोडी देर मे चद्रमोहन की बुलाहट लेकर बी० ओ० का चपरासी आया ।

चद्रमोहन ब्रांच अफसर के कमरे में घुसा । नमस्ते कर कुर्सी पर बैठ ही रहा था कि दूसरे सेक्शन के सेक्शन अफसर, बी० ओ० के मुंह लगे, सिनहा आ धमके । झुककर बड़े अदब से बी० ओ० को नमस्ते किया और हाथ में छोटे-छोटे मगही पान के आठ बीड़े उसने बी० ओ० मि० बोस की ओर बढा दिए । बिना देखे बोस ने सिनहा के हाथ से आठो बीड़े लेकर एक साथ मुंह मे रख लिए। फिर सिनहा की हथेली से तंबाकू लेकर, फक् से फाक कर मुह ऊपर करके बोला, "बइठो न बाबा ।"

"दादा, परसाद ।" सिनहा बोला ।

मुस्कराकर बोस अपनी मेज की दराज से अपना पनडिब्बा सिनहा की ओर बढ़ाकर एक ड्राफ्ट देखने लगा । ड्राफ्ट में मामूली परिवर्तन कर बोला, "चोंद्रामोहन ।"

"हा दादा ।"

"ई लो । अगाडी अपना का देखो ।"

चद्रमोहन ने ड्राफ्ट पढ लिया तो बोला, "देख लिया दादा ।"

"पिछाड़ी हमरा का देखो ।" बोस फिर बोले ।

"देख लिया दादा ।"

"अब बताओ कइसन लागा ?"

"कोई खास बात तो नहीं लगा दादा, प्लीज की जगह काइडली कर दिया, लेकिन ड्राफ्ट के माने में तो कोई अंतर नहीं पड़ता।"

बोस को जैसे तमाचा लगा। एक क्षण चंद्रमोहन की ओर देख के सिनहा की ओर ड्राफ्ट बढ़ाते हुए बोला, "सिनहा ?"

"येस दादा।" सिनहा तपाक से बोला।

"अगाड़ी चोंद्रामोहन का देखो।"

"देख लिया दादा।"

"पिछाड़ी हमरा का देखो।"

"देख लिया दादा।"

"बताओ, कइसा लागा ?"

"वाह दादा, वाह।" दाहिने हाथ की तर्जनी अंगूठे से मिलाकर, अपने और बोस के बीच मे करते हुए बोला, "दादा, आपने तो नगीना जड दिया।"

"जरा इस लोरके चोंद्रामोहन को समझाओ।"

"वाह मि० चद्रमोहन," सिनहा ने चंद्रमोहन को आख मारी, "तुमने दादा के करेक्शन को अपरेशिएट नही किया।"

"ओई, ये क्या अपरेशिएट करेगा, लच में यू० एम० ओ० की मीटिंग में पालिटिक्स बोलेगा, मक्खन देगा या सेक्शन में वइठ के सितार का राग निकालेगा। रोविशंकर बनेगा—बनो बाबा, लेकिन दोफ्तर में तो खाली काम ही काम देगा। बाबा, दफ्तर में रहके रोविशंकर नही बन सकता। जानता है शोरदचंद्र भी ए० जी० भारमा में था, बट ही बिकेम शोरदचंद्र व्हेन ही वाज डिस्मिस्ड फ्रॉम ए० जी० भारमा।"

"धन्यवाद दादा, मैं आपसे ऐसी शुभकामना नही सुनना चाहता हूं।"

"तो काम करो न बाबा। तुम्हारा सेक्शन आफिसर हममे रोज तुम्हारा शिकायत करता है।"

"इसके बगैर उनका खाना हजम भी तो नही हो सकता दादा।"

बोस हंस पड़ा, "यू आर ए नाटी मैन। अच्छा गो।

चंद्रमोहन सेक्शन पहुंचा। दस मिनट बाद पान चबाते हुए बोस भी पहुंचे। एक साथ ही सभी लोग कुर्सियां खड़खड़ाकर खड़े हो गए। चटर्जी की मेज के पास जाकर बोस बोले, "कहिए, लेटर रिपोर्ट का क्या हाल है, डी० ए० जी० के पास रिपोर्ट जाना है।"

"होय गेलो।" चटर्जी ने उत्तर दिया।

"आज तो सेक्शन के सभी लोग लेट आए थे, सिवा मौलाना को छोड़कर।

मौलाना फकरुद्दीन मुस्कराने लगे।

"हमारा और मौलाना का नौकरी बराबर का है। हम लोग भी पहले खूब फाकीबाजी किया था, लेकिन अब तो सुधर गिया। क्यों मौलाना फकरुद्दीन?"

"आप भी क्या इन बच्चों के सामने मजाक करते हैं बोस बाबू।" मौलाना बोले।

"अरे भाई, तुम सेक्शन का सीनियर मैन है। कभी अगर चटर्जी बाबू को दफ्तर आने में देरी हो जाए तो आज की तरह टाइम से हाजिरी का रजिस्टर पहुंचा दिया करो। अच्छा अब जाता है, सब लोग तो हैं या कोई सरक गिया?"

"नहीं दादा, सभी लोग हैं।

मुस्कराते हुए, मुंह में पान भरे, ब्रांच आफिसर बोस बरामदे से निकलकर दूसरे सेक्शन में घुस गए।

सात

आज चंद्रमोहन देर से दफ्तर पहुचा, तो देखा सेक्शन में मौलाना हाजिर थे।

हाजिरी बनाकर चद्रमोहन बोला, "तिवारी जी, आज तो सूरज पश्चिम से निकल गया?"

मौलाना थोडा जलकर बोले, "जनाब नौकरी है, खालाजान का घर नहीं कि जब चाहा आए, जब चाहा चले गए। एक ठीक आदमी में इतना चल भी जाता है।"

"फिक्र तो अब इसी की लगी है मौलवी साहब? अफसोस भी है कि हम आपके जमाने मे पैदा न हुए।"

"जहां तक फिक्र का ताल्लुक है, खूब भी कही, साहबे! हमारे जमाने में पैदा हुए होते तो आज बड़े-बड़े बाल, [illegible], और तैमूरलंग की तरह लटकी हुई मूंछें कैसे रखते? [illegible] की कालर कैसे पहनते?" मौलाना हंसते हुए बोले, "[illegible] चला था एकदम तंग मोहरी का, अब [illegible], [illegible] पायचे की तरह चौड़ी मोहरी का, [illegible] है।"

"ऊंची हील वाले बूट का [illegible] भी [illegible] भूल ही गए, मौलाना साहब।" तिवारी बोला।

"आप हैं कहां मौलाना साहब, आज की पीढ़ी तवारीख बदल रही है, आप कहते है कर क्या सकती है ?" चन्द्रमोहन बोला ।

"अमा तवारीख तो घडी का पेंडुलम है उसे तो चलना ही है। तुम लोग क्या तवारीख बदलोगे ? ये सब तो अपने आप होता जाता है, ये सब एडजस्टमेंट की बात है, सरवायवल आफ द फिटेस्ट, ये तो पहिये का चक्का है, घूमता ही रहता है । धरती मे बीज डालोगे, वह धरती को फोडकर निकलेगा ही । पौदा बनेगा, फिर अनाज की शक्ल मे आएगा, फिर बीज बनेगा तो इसमे नया क्या है । सिवा इसके कि आखिर मे तुम लोगो को पता चलेगा कि हाय खाली का खाली रह गया, जिंदगी का अचीवमेंट, सिफर ए बिग जीरो, ऐसी खोखली पीढ़ी अल्ला-ताला किसी मुल्क को न दे । पडोसी मुल्क चीन भी तो है कि वहा के नौजवानो ने अपने मुल्क को देखते-देखते न जाने कहां पहुंचा दिया और एक आप हैं कि तीस साल की आजादी के बाद भी उस बिरवे मे फल नही ला सके ।"

"समझ-बूझकर बातें करिए मौलवी साहब," चंद्रमोहन बोला, "आप आटोमेटिक इनरजी तक पहुंच गए, दुनिया की बड़ी ताकतो मे जगह पा गए ।" चंद्रमोहन बोला ।

"एक बगला देश क्या बना दिया दुनिया की बडी ताकतों मे आ गए, कमाल है । जनाब, ये तो वैसे ही हुआ कि एक बार चार घुड-सवार दिल्ली जा रहे थे । राह मे किसी ने पूछा कि ये घुड़सवार कहा जा रहे हैं ? वही पर एक आदमी गदहे पर चढा हुआ था, फौरन बोल पडा—ये पाचो सवार दिल्ली जा रहे है ।"

मैकदान मे ठहाका लगा । चंद्रमोहन थोडा झेंपा तो मौलाना फिर बोला, "यही है दुनिया की बड़ी ताकतो मे आपका आ जाना, मुल्क मे भुखमरी, बेरोजगारी, महगाई चोटी पर पहुंच रही है और आप कहते है दुनिया की बड़ी ताकतो मे पहुंच गए । अभी कल मजमा लगा हुआ था सडक पर । गा-गाकर चार-चार आने की किताब चार आदमी बेच रहे थे, 'महगी पर महंगी लदाय दिया रे, दिल्ली वाली रनियां' । नतीजा ये हुआ कि इस बूढ़ी उम्र मे

जयपरकाश जी को खड़ा होना पडा, सिर पर लाठी और डडो की चोटें
सहनी पडी ।

"अकेली बेचारी इंदिरा जी करें क्या ?" चद्रमोहन बोला ।

"अर्मा कुछ शर्म भी करो यार, यही कहते-कहते तो नेहरू जी चल
बसे, मुल्क को कब तक गुमराह किया जा सकता है ? कल तक तो नारे
लगाते रहे—'देश की ताकत इदिरा गाधी', 'नौजवानो की ताकत इंदिरा
गाधी' । आज कहते हो इदिरा जी अकेली क्या करें । यही तो कहता
हू, असली-नकली के पहचान की अक्ल तुम लोगो को आएगी कब ?"

"जब तक इस मुल्क मे हीरोवर्शिप खत्म न होगी, समझे मौलाना
साहब ?" चंद्रमोहन बोला ।

मौलाना व्यंग्य से हंसते हुए बोला, "जिस देश मे 'बेजान' पत्थर
पूजा जाता है, उस देश मे अगर 'जानदार' पूजा जाए तो क्या बुरा
है ?"

"तब आप लोगों ने जिना साहब को इसलिए पूजा कि देश में खून
की नदी बहे । पंजाब और नोआखाली को इतिहास क्या कभी भूल
सकता है ?"

"हां, जिना को पूजकर हमने गलती की, बहुत बडी गलती, उसकी
सजा वे लोग भोग रहे हैं जो लोग अपने देश को छोड़ पाकिस्तान चले
गए, वही गलती तुम लोग मत करो । असली-नकली की पहचान करो,
आंख मूदकर अंधे की तरह नारी के पीछे न भागो ।"

"वही तो मुश्किल है मौलाना साहब, ये उम्र ही ऐसी है कि दर-
असल इसमें सही-गलत की पहचान हो नही पाती । स्कूल के विद्यार्थियों
को, नौजवानों को, गांधी से जयप्रकाश तक हर नेता इस्तेमाल करता
आया है और ऐसा होता भी रहेगा । यह एक ऐसी ताकत है कि इसे
हर पार्टी अपने सुभीते के लिए इस्तेमाल करती आई है । अभी हाल की
ही तो बात है, विनोबा जी उठे थे, क्या भूदान आदोलन चला, बहुत
शोर सुनते थे पहलू मे दिल का, जो चीरा तो कतरये खून न निकला ।
क्या मिला, विनोबा से इस देश को, ऊसर बंजर परती जमीन किसी
काम की नही । यही जयप्रकाश जी जिन्होंने विनोबा के सर्वोदय के लिए

अपनी जिंदगी लगा दी, उनके लिए आज विनोबा जी को बोलने का समय आया तो वे पवनार मे चुपचाप खामोश बैठ गए कि मैंने लोक-कल्याण के लिए साल-भर का मौनव्रत ले लिया। किस कदर लिज-लिजा ये आदमी निकला···।"

तुमने किस आदमी का नाम ले लिया यार चद्रमोहन !" तिवारी घृणा से भरकर बोला, "लोग कहते है विनोबा जन स्वराज्य और ग्राम स्वराज्य के आजीवन चिंतक है पर आम आदमी की तकलीफ से कभी भी वे परेशान हुए हो, ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता। पता नही ऐसे आदमी का नाम भारत वाले लेते क्यों है ?"

"हा तिवारी जी, यहा मैं आपसे सहमत हू। ऊपर से नीचे तक भ्रष्ट और गिरे हुए तो हम किससे क्या उम्मीद लगाएं ? अभी तक जूडिशियरी वेदाग समझी जाती थी, उसमे भी कीडे लग गए। सुना है ससद के आकस्मिक चुनाव 'मिडटर्म' पोल की घोषणा होने वाली है। पोल खुलने के पहले चुनाव कराके पाच साल के लिए फिर गद्दी हथिया लो।"

"लेकिन इदिरा जी तो कहती है कि भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए हम किसी से भी कम प्रयास नही कर रहे ?" मौलवी बोले।

"वे भ्रष्टाचार क्या दूर करेंगी मौलाना साहब, "तिवारी बोला, "जिस देश मे न्यायाधीश के ऊपर सरकार है, जिस देश मे न्यायाधीशों की तरक्की उनकी वरीयता के आधार की जगह सरकार की इच्छा से होती है, वहा न्याय की क्या आशा होगी ? मुख्य न्यायाधीश सीकरी के स्थान पर तीन न्यायाधीशों की वरिष्ठता को मानकर सरकार ने चौथे की नियुक्ति कर दी, उस देश मे न्याय की आप आशा कहा से कर सकते है ? एक देश अमेरिका है जिसके कानून ने राष्ट्रपति तक को नही छोड़ा। उसने दिखा दिया कि सविधान का सबसे ऊंचा सरक्षण पाते हुए भी राष्ट्रपति कानून की पकड़ से बाहर नहीं है। आप भारत जैसे देश मे न्याय की कल्पना करते हैं, कतई नहीं।"

"बेशक चद्रमोहन ठीक बात बोलता हाय।" चटर्जी बोले, "लेकिन हमारा कारन है, स्ट्राग ओपोजिशन का कमी, कांग्रेस पार्टी अपने को

परमानेंट समझने लगी हाय। इनके कांग्रेस पार्टी की सरकार के पास अनलिमीटेड पावर हाय, असीमित शोषित। पावर करप्ट्स, ओबसुलूट पावर करप्ट्स ओबसुलूटली। शराब के नशे से छुटकारा मिल सकता है, लेकिन कुर्सी पर बैठ जाने के बाद अपनी पावर का नशा नहीं जाता, वह तभी जाता है, जब कुर्सी छूट जाता है···समझे मौलाना हे-हे-हे। अच्छा भाई अब बस काम-धाम भी शुरू करो, बोहनी-बट्टा भी होना चाहिए।"

"अब बोला दादा।" चंद्रमोहन बोला।

"अब नहीं बोला चोंद्रोमोहन, जब तुम पेट में था तब से हम बोलता हाय, तुम लोग हमारा बात मानो तब तो।" लोग अपनी-अपनी सीट पर बैठकर काम करने लगे।

आठ

चंद्रमोहन व्यवस्थित हो गया था। जिंदगी एक ढर्रे पर चल निकली थी। आर्थिक परेशानी काफी कम हो गई थी। फिजूल खर्च की आदत नहीं थी। इसलिए जितना वेतन मिलता उसमें घर के जरूरी खर्च निकल जाते, कपड़े की थोड़ी परेशानी होती पर गांव की आमदनी के सहारे मां उस कमी को पूरा कर देती। तनखाह मिलती और सारे रुपए चंद्रमोहन मां के हाथों में रख के निश्चित हो जाता—फिर जितना मां पैसे देती, जो लाने को आदेश देती वह खरीदकर लाके रख देता। सुबह समय से दफ्तर जाना, शाम को घर वापस होके जलपान कर पीरू वायू

के घर सितार बजाने चल देता और रात को लौट के खाना खाने के बाद ठीक नौ बजे मे अपनी मुमफी की परीक्षा की तैयारी मे जुट जाता, बारह बजे तक नियमित पढ़ता। छः बजे सोकर उठना, फिर चाय-पानी, अखबार, स्नान, भोजन और दफ्तर की भाग-दौड़ शुरू हो जाती, वक्त गुजरता जाता। और इस गुजरते वक्त के साथ चंद्रमोहन अनजाने अनायास दीपा के साथ जैसे कबड्डी के खेल मे शामिल होता गया था। दीपा जीतती गई थी, चंद्रमोहन की पाली में चढ़ती गई थी। चंद्रमोहन पीछे हटता गया था, हारता गया था। दीपा की जीत को स्वीकृति देता गया था। दीपा को अपनी विजय का बोध होता गया था, विजय का यह बोध ही दीपा के जीवन के लिए संजीवनी बनता गया था। समुद्र तट पर शंख और सीपियां बटोरने वाली लड़की की तरह कृतज्ञ हो उत्फुल्ल मन से आकंठ खुशी मे डूबी हुई दीपा चंद्रमोहन से पाती जाने वाले प्यार और सामीप्य की निधि अपने आंचल में भरती जा रही थी।

चंद्रमोहन को भी अपनी इस हार का, इस पकड़ का बोध होने लगा था। रह-रहकर उसे लगने लगा कि वह कब तक भोगेगा, कब तक अपने मन को मारेगा, कब तक अपने मुंह को बंद रखेगा। कभी-कभी दीपा दफ्तर मे भी दिमाग पर चढ़ जाती। काम करते-करते वह एकाएक रुक जाता, तब यही लगता कि कब पांच बजे वह घर जाए और सितार बजाने के लिए दीपा के घर पहुंचे। दीपा को देखे, उससे कुछ बोले, जो आतुरता से उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी।

मई बीत गई थी। इलाहाबाद की गर्मी अपने शिखर पर थी। खस की टट्टियों मे ए० जी० आफिस जैसे घिर गया था। बाहर धूप थी, गर्म हवा के थपेड़े थे, झुलस थी, भीतर सुखद शीतलता थी। कूलरों के साथ लगे हुए बिजली के पंखों से निकलने वाली ठंडी हवा के झोंके थे। फिर भी ए० जी० आफिस के लोग लंच मे भरभरा कर बाहर निकल जाते, सड़क पर चाय की दूकानों पर वैसे ही रोज भीड़ लग जाती।

१२ जून को इलाहाबाद हाई कोर्ट का श्रीमती गांधी के मुकदमे का ऐतिहासिक फैसला होना था। लोग हाई कोर्ट की ओर भाग रहे थे।

अदालत खचाखच भरी हुई थी। फैसला हुआ—श्रीमती गांधी हार गईं। बिजली की तरह खबर फैल गई कि इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित कर दिया गया।

लोग रेडियो पर खबर सुनने के लिए दफ्तरों से बाहर निकल आए थे। उत्सुक जनसमूह का मेला लग गया। सड़कें लोगों की चहल-पहल से भर गई थीं।

"वाह रे जज! भारत की न्यायपालिका का नाम संसार में फैला दिया। गजब का हिम्मती जज है।" ऐसे ही फिकरे बाहर-भीतर लोगों के मुंह से निकल रहे थे।

लंच में ए० जी० आफिस की पार्लियामेंट का पी० एम० खड़ा हुआ। लोगों ने सवालों की बौछार लगा दी। पी० एम० बदस्तूर नीले लेंस के चश्मे में मुस्करा रहा था।

"बोलिए, अब आप क्या करेंगी?"

"अब मैं आपकी"'में भूसा भरूंगी।" पी० एम० बोली।

"अब तो गद्दी छोड़ो महारानी जी?" सरदार बोला।

"गद्दी! गद्दी छोड़ने के लिए उस पर बैठी हूं? अभी तो सुप्रीम कोर्ट में अपील करूंगी, वहां से हार जाऊंगी तो गद्दी छोड़ दूंगी, आई विल ग्लेडली रिजाइन।"

"आपको अभी रिजाइन कर देना चाहिए, यू हैव नो मोरल राइट टू कंटिन्यू। आप फौरन स्तीफा दीजिए, अब आपको प्रधानमंत्री बने रहने का हक़ क्या है?"

"हक़?" पी० एम० बोला, "हक़ तो छीन के लिया जाता है, अबे अंधे! मोरेलिटी नाम की चीज दुनिया में कुछ नहीं होती। तवारीख पढ़िए, जिस दिल्ली के तख्त को पाने के लिए औरंगजेब ने भाई और बाप को मरवाया, उस दिल्ली के तख्त को मैं ऐसे ही छोड़ दूंगी।"

"वो जमाने और थे प्रधानमंत्री जी, ये जनता का राज्य है, प्रजातंत्र है। संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र सरकार का देश।" रहीम बोला।

"उसी जनता के लिए मेरे एक हाथ में लड्डू है और दूसरे हाथ में हंटर है, ये मत भूलिए। मुझे हर कीमत पर प्रजातंत्र बचाना है, इसे मैं

फासिस्टो के हाथ मे नही जाने दूगी ।"

"लालवहादुर शास्त्री के हाथों मे तो आपने निकाल ही लिया ?" भीड मे मे कोई वोला ।

"उसी तरह मेरे हाथो से भी कोई निकाल लेगा तव तो मुझे खुशी होगी, लेकिन, ऐमे मेरे सामने तो कोई आए, मैं एक-एक को देखूगी ।"

"खिसियानी विल्ली छीका नोचे ।" सरदार वोला, "परधान मंतरी जी वे दिन लद गए जव खलील मियां फाख्ते उडाया करते थे । कुर्मी छोडो, वकरी की मां कव तक खैर मनाएगी ?"

लच समाप्त हो गया था, भीड छट गई थी, अधिकतर लोग अपने-अपने सेक्शनो को चले गए थे । लेकिन शीशम के पेड तले वाली चाय की गुमटी के आगे पडी चारो वेंचो पर दो-चार लोग अभी भी वैठे हुए थे । चद्रमोहन भी उसी एक पर वैठ गया । लडके ने वैठते ही चाय की गिलास पकडा दी । चंद्रमोहन चाय पीने लगा तो भटनागर वोला, "यार, ये ठीक नही हुआ ?"

"मतलव ?" चद्रमोहन वोला ।

"वेरी हार्ड डेज आर ए हेड ? लगता है देश के सामने वुरे दिन आने वाले है । वे गद्दी छोड़ेंगी नही । भारत की जनता मे वह साहस नही कि परिवर्तन के लिए कुछ करे । नतीजा यह होगा कि उसकी मनमानी भारत की जनता को सहनी पडेगी ।"

"ये और वात है लेकिन जनता के सामने १९४२ जैसा कुछ करने का अवसर भी नही आएगा । न जनता मे वह दम है कि वैमा अवसर पैदा करे । नवर दो, सुप्रीम कोर्ट मे अपील का क्या मतलव है ? न्याय-पालिका प्रधानमत्री के हाथ मे है । अव तक नही थी तो आगे हो जाएगी । इलाहावाद की अदालत नही थी तो दिल्ली की हो जाएगी । इंदिरा गाधी प्रधानमंत्री वनी रहेंगी हर कीमत पर । राज्य किए विना उसका जीवित रहना सभव नहीं । राज्य करने के लिए उसे सपूर्ण भारत चाहिए, वह नेहरू की वेटी है । नेहरू जी ने राज्य करने के लिए ही उसे प्रशिक्षित किया है । वह जानती है कि वह जन्मजात रानी है ।"

बीमारी की लाचारी में नेहरू ने उन्हें फिर बुलाया और 'मिनिस्टर बीदाउट पोर्टफोलियो' का रुतबा दिया। दो कारणों से, एक तो शासन की देख-रेख के लिए, दूसरा, इंदिरा के साथ अच्छा व्यवहार के लिए। नेहरू की मृत्यु के बाद लालबहादुर जी प्रधानमंत्री तो बने, लेकिन सत्ता मे रहकर वे देश की सेवा कुछ ही दिन कर सके।"

"असल में ये देश गांधी को भूल गया!" ठाकुर बोला, "सारा नतीजा तो इसीलिए है।"

"भूल गया? मैं कहता हूं कि गांधी जी ही तो इसकी जड मे थे; देश के तमाम पूंजीपतियों को गाधी जी का आशीर्वाद था। सपत्ति के स्वामी गाधी, जी के राज में दिन दुगुना, रात चौगुना बढते गए और दूसरी गलती गांधी ने नेहरू को गोद लेकर की। गाधी जीवित रहते तो भी क्या करते? जो सामाजिक अर्थव्यवस्था उनके जीवन काल मे ही पनप गई थी उसे क्या वे बदल सक्ते थे? उनके जीवन काल में ही उनके दत्तक पुत्र नेहरू उनकी अवहेलना करते गए थे, फिर भी प्रकृति से समझौतावादी गांधी, नेहरू को आशीर्वाद देते रहे। और नेहरू खानदानी रईस थे। सर्वहारा की अगुवाई वे कर ही नही सकते थे क्योंकि गरीबी उनके खून मे नहीं थी। वे तो एक निरकुश, रोमानी समाजवाद के स्वप्नद्रष्टा थे। उन्होंने आम खेतिहर को एकदम नजर-अंदाज कर दिया। केवल विज्ञान उद्योग मे उत्पादन-वृद्धि और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संपत्ति बढाने के उनके चक्रों में, आम आदमी गरीब होता गया और धनी, धनी होते गए, सत्ता-स्वामियों का प्रभुत्व बढता गया। देश आर्थिक पराधीनता की गुंजलक मे दिन-ब-दिन कसता चला गया।"

भीड़ मे चुप्पी छा गई। ठाकुर बोला, "मि० चंद्रमोहन, लगता है आप काफी पढते-लिखते है।"

"कोई खास नहीं। अच्छा, चला जाए।" वह उठ गया।

नौ

शारदा का ब्याह लखनऊ तय हो गया था। लेकिन वे लोग इसी गर्मी में ब्याह कर देने को जोर दे रहे थे। इसीलिए चंद्रमोहन को तार देकर लखनऊ बुलवाया गया। उनका कहना था कि लड़के को चूंकि विदेश जाना है इसलिए हर हालत में उसका ब्याह कर देना है, क्योंकि लड़की भी अपने पति के साथ ही जाएगी। मां की इच्छा थी ही, चंद्रमोहन ने मान लिया और ब्याह की तिथि २२ जून को तय कर इलाहाबाद वापस आ गया।

मां प्रसन्न हुई। चंद्रमोहन ने दफ्तर से तीन हफ्तों की छुट्टी ले ली। ब्याह की तैयारियां होने लगी। पीरू बाबू, उनकी पत्नी और दीपा तीनों का रोज चंद्रमोहन के घर आना-जाना बढ़ने लगा। लोग ब्याह के कामों में मदद करने लगे।

समय कम था। तिलक के चौथे दिन बारात आनी थी। इसलिए हर काम को आसानी में निपटाया जा रहा था। लड़के वाले सुलझे हुए थे। तिलक चढ़ गया और २२ जून को लखनऊ से पच्चीस आदमी कार से आ गए। बारात एडल्फी के दो कमरों में टिका दी गई। बेहद शांति से ब्याह हुआ। २३ को बारात रुकी, २४ जून को सुबह शारदा विदा हो गई।

चंद्रमोहन का घर सूना और उदास हो गया। बेटी की विदाई ने मां को झकझोर दिया। खाने-पीने की अव्यवस्था को दीपा ने संभाल लिया। ब्याह के तीन-चार दिनों के पहले से ही वह चंद्रमोहन के घर रहने लगी थी। यद्यपि दीपा की मां भी दिन-भर यहीं रहती, पर दीपा को चंद्रमोहन की मां और शारदा दोनों रोक लेतीं। शारदा की देह में हल्दी लग जाने के बाद से तो घर का प्रत्येक काम दीपा ही के ऊपर शारदा की मां ने डाल दिया। ब्याह के लिए खरीदकर लाए हुए सारे

सामानों की देखरेख, रख-रखाव, और चौके में खाना बनाने तक का सभी कुछ दीपा की जिम्मेदारी हो गई। और यह सभी कुछ दीपा ने बेहद कुशलता से सभाल लिया। विशेषकर शारदा की विदाई के बाद, घर के सूनेपन का अहसास उसने शारदा की मां को नहीं होने दिया।

इस सान्निध्य ने दीपा को पूरी तरह खोल दिया, चंद्रमोहन भीतर में एक अजीब तरह की खुशी का अनुभव कर रहा था। दीपा एक तृप्ति था और चंद्रमोहन की मां, यह सारा कुछ एक खेल समझकर भगवान पर छोड़ती हुई मूक दर्शिका बनी हुई थीं। वह बेटे के हाल मन को समझती थीं, पर, दीपा के धीर-गंभीर स्वभाव को समझने के कारण भीतर से कहीं प्रसन्न भी थीं क्योंकि उसे यहां से, किसी ओर से भी दीपा और चंद्रमोहन के बीच आंख-मिचौनी का वैसा खेल नहीं दिखा जैसा कि उसके दो बेटों के बीच होने से वे चल बसे थे, हालांकि वह समझने लगी थीं कि दीपा के मन में उसका बेटा कहीं बहुत गहराई से बस गया है, इसीलिए, रुक-रुककर, समय-समय से, वह अपने बेटे के मन की थाह लेने लगीं, लेकिन अगम अथाह सागर वाले अपने ही बेटे के मन को जब बहुत कोशिशों के बाद भी वे भाप न सकीं तो भीतर से कहीं खुश और सुरक्षित भी महसूस करने लगीं।

दो परिवारों का जीवन चल निकला। आना-जाना, उठना-बैठना अधिक बढ़ गया। जुलाई में चंद्रमोहन की मां को हरदोई जाना जरूरी था, क्योंकि, खेत के मालाना बंदोबस्ती का काम तभी होता था। और चंद्रमोहन के मुनफी की परीक्षा अगस्त में होने वाली थी। परीक्षा देकर वह चार महीनों के लिए ऑडिट पार्टी से बाहर दौरे पर घूमना चाहता था। यह बात उसने मां और दीपा दोनों से बता दी थी।

छुट्टी के बाद जब चंद्रमोहन ने दफ्तर ज्वाइन किया तो वातावरण काफी बदल गया था। बहुत से लोग तो आपातकालीन स्थिति होती क्या है, यही नहीं समझ पाते थे। ए० जी० आफिस की पार्लियामेंट पत्र से बदस्तूर लग रही थी। हां, पी० एम० से कार्यरत जोश था, अपनी कमर पर दोनों हाथ रखकर आज वह पार्लियामेंट में तनकर खड़ा था। अपने चारों ओर निगाहें घुमाते हुए बोले, "कहिए, आप लोगों को आज

कुछ पूछना है ?"

• भीड में से सरदार एकाएक चिल्लाया, "वोय चंदरमोहन, अरे सितारिये, कहा रहे यार, परधान मतरी जी को खुजली मच रही है, कुछ लैट मारो, फोकश फेंको।"

"तुम साले भगेडू सरदार, तेरी···मे दम नही। चदरमोहन फोकश फैके। आजकल परधान मतरी जी तो खुद ही फोकश फैंक-फैंक के लोगो को ढूढ़ रही है ?" रहीम बोला।

"काहे लिए ?" सरदार बोला।

"इधर का माल उधर करने के लिए। लोगो को एक घर से दूसरे घर मे रखने के लिए। झोंपडी मे उठाकर साढे तीन लाख की बिल्डिग में रखने के लिए।"

"अब आप लोग क्या चाहते है ? रहीम साहब बिल्कुल ठीक कह रहे है। मेरा प्रोग्राम है कि योग्य व्यक्ति को गरीबी मे अब न रहने दिया जाए। बहुत, बेचारो ने बहुत तकलीफें उठाई। आप लोग कहते हैं मैं गरीबी दूर नहीं कर रही ?"

"क्या कहने हैं प्रधानमत्री जी ?" भटनागर बोला, "इस इमरजेंसी की ही तो देश को जरूरत थी।"

"बेशक। पी० एम० दात पीसते हुए बोला, देश खतरे मे पड गया था। फासिस्टो की ताकत बढ़ती जा रही थी। देखता हूं अब कौन साला सामने आता है।"

"ये जो दो-चार युवा तुर्क कहलाते हैं, उनका क्या हाल है ?" रहीम बोला।

"हाल ! अबे साले कटुआ," सरदार बोला, "उनका हाल पूछने वाला तू और कौन अभी बचा है साले, तुम्हारी अक्ल का जंग अभी छूटा नही। जाओ तुर्क लोगो के घर समाचार दे देना कि वे लोग बहुत मजे मे है। बडे आए थे जयपरकाश से डायलाग कराने। पहले पापड़ बेलो, हमारी परधान मतरी जिंदाबाद।"

"प्रधानमंत्री की जय बोलने वाले सरदार, कौन पार्टी का है वे ?" भीड मे से आवाज आई।

"अबे सालो, अकल के दुश्मनो !" सरदार बोला, "अबे दफ्तर के बाबू लोगो की कोई पार्टी होनी है। दो-चार पार्टी वाले थे, वे भीतर घुस गए, पार्टी भी सस्पेंड हो गई, रिकग्नीशन छिन गया, अब तुम टॅन्टॅ न करो।"

"शांति, शाति !" पी० एम० दोनों हाथ हवा मे हिलाते हुए बाला, "शाबाश सरदार जी, आप जैसे बेपेंदी वाले लोगों पर तो मुझे नाज है, ऐसे ही लोगो की तो मुझे जरूरत है।"

"समझाइए इन कम अकल वालों को कि चेरी छोड़कर राना तो बनना है नहीं ? तो किसी पार्टी मे शामिल होने से फायदा, हमारा काम तो पार्टी वालों को लड़ाना है, उनमें हाथ जुड़वाना है, चुनाव कराना है, टी० ए०, डी० ए० बनाना है। यहा पार्टी पूछने आए हैं। अरे, अब काली मिर्च और नमक के साथ नीबू छीलकर चूसो, मुंह का जायका और पेट का हाजमा दोनों ठीक रहेंगे। क्या समझे पुत्तर ?"

"लंच समाप्त हुआ। लोग अपने-अपने सेक्शन चले। ठीक तीन बजे चंद्रमोहन को दफ्तर में फोन मिला। दीपा बोल रही थी कि जल्दी घर आओ, मां की तबीयत खराब है। चंद्रमोहन समझ नहीं पाया कि किस की मां की तबीयत खराब है, दीपा की मां की या उसकी मां की। किंतु घबराया हुआ वह दफ्तर से छुट्टी लेकर भागा।

पहले अपने घर आया तो देखा ताला बंद है। वह दीपा के घर भागा तो देखा वहा लोगों की भीड है। सायकिल बाहर खड़ी कर भीतर पहुंचा। देखा, दीपा को मां गोद मे सभाले हुए है और दीपा जोर-जोर से रो रही है। मा आंचल से आंसू पोछ रही है।

"हुआ क्या ?" शंकित हो चंद्रमोहन बोला।

"दीपा की मा का हार्ट फेल हो गया।"

सारी स्थिति समझ मे आ गई। बगल मे बरामदे में लिटाई हुई दीपा की मां का शव पडा था। चंद्रमोहन ने मुंह पर से कपडा हटाकर देखा। बड़ी-बडी आखों में आंसू भर आए। वह दीवार से सटकर चुप-चाप खडा हो गया, फिर एकाएक जैसे कुछ सूझा, पीरू बाबू बरामदे में दीवार से पीठ टेके बैठे थे। सामने देखते हुए। कंधे पर के अंगोछे से

आंसू और नाक पोंछते हुए। चंद्रमोहन बोला, "इस तरह से कब तक बैठे रहना होगा बाबा ?"

पीरू बाबू का ध्यान टूटा, "ओ हां, दीपा से बोलो—बाजार से सामान खरीदकर लाना होगा ? रुपया-पैसा तो उसकी मां ही रखती थी, मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं।"

चंद्रमोहन भीतर अपनी मा के पास गया और उससे घर की चाभी मागी। रुपए अपने पास से ले आया। मा को चाभी दे उस समय आए हुए एक बगाली सज्जन को लेकर कफन आदि खरीदने के लिए कटरा चला गया।

अर्थी उठने में लगभग तीन घंटे लग गए। फूक-तापकर गंगा मे विसर्जित करने के बाद अन्य लोगों के साथ पीरू बाबू को लिए हुए वह घर लौटा तो रात के ठीक बारह बज रहे थे। मुहल्ले की आई हुई औरतें अपने-अपने घर चली गई थीं। घर एकदम सूना और उदास हो गया था। दीपा को समझाती हुई चंद्रमोहन की मा बैठी हुई थी जिन्हें छोड़ने के लिए दीपा किसी भी तरह तैयार नहीं हो रही थी। पीरू बाबू वापस आए, तब वह मा को लेकर अपने घर वापस लौट सका। रात के लगभग डेढ़ बजे।

घर लौटकर मां ने बेटे से खर्च-वर्च की बात पूछी तो चंद्रमोहन बोला, "तीन सौ रुपए वह अपनी तनख़ाह में से ले गया था, बड़ी सावधानी और किफायत से खर्च करने के बाद भी कुछ नहीं बचा। मुझे ऐसे खर्च का अनुभव भी नहीं था, यह तो एक अधेड़ बंगाली फोटिक बाबू थे जो ऐसे कामों में काफी अनुभवी रखते थे, उन्हीं के कारण सभी कुछ आसानी से होता गया।"

"और पीरू बाबू ने तुमसे कुछ नहीं पूछा या दिया ?"

"नहीं, देखा तो था कि उनकी हालत पागल-सी हो गई थी। घर में तो वे कुछ बोलते भी थे, रास्ते में तो अजीब-सी विक्षिप्तता व्याप गई थी। एक ओर चिता सजाई जा रही थी और वे दूसरी ओर बैठकर गंगा के प्रवाह पर चुपचाप टकटकी लगाए हुए थे। चिता में आग लगाने के वक्त जब मैं उन्हें पकड़कर ले आया तो वे पास आए और

पत्नी की चिता मे आग लगाई, हां उसके बाद वे तब तक चिता को देखते रहे जब तक शव जल न गया। उसके बाद तो वे उतना ही करते गए जितना करने को कहा गया। एकदम अबोध शिशु की तरह।"

"समझ नही पाती, अब इस आदमी की जिंदगी कैसे कटेगी ? सिर पर सयानी लड़की, रुपए-पैसे का ऐसा अभाव, हे राम।" कहकर चंद्रमोहन की मां चुप लगा गई। दो-चार मिनटों के बाद वह सो गई।

आज की रात वह मा के ही कमरे में शारदा वाली चारपाई पर लेट गया था। जान-बूझकर उसकी मां ने ऊपर के उसके कमरे में अकेले नही सोने दिया कि शायद, कच्ची उम्र है, डर-भय लगे। पोर-पोर मे थककर चूर लेकिन चंद्रमोहन को नींद नही आई। बार-बार रोते-रोते सूज गई दीपा की बड़ी-बड़ी आखें ही आखों के आगे नाचती रहती। जिसके आगे-पीछे अवसाद के सागर मे डूबे हुए अर्धविक्षिप्त से लगने वाले बूढे बाप की छाया भर बच गई थी। हटा, थका, टूटा हुआ असहाय, रुपयों-पैसो मे कमजोर और एकदम निष्कपट। अब इस दीपा का क्या होगा ? घर में मा का सहारा कितना बड़ा होता है आज चंद्रमोहन को अनुभव होने लगा। पता नही कितनी देर को आंखें लगीं। लेकिन जब टूटी तो दिन के नौ बज रहे थे। मा उठकर सारा घर धो-धाकर अगरबत्ती घर-भर मे जला चुकी थी।

टूटते हुए बदन मे चंद्रमोहन उठा। शौच आदि करके स्नान से मुक्ति पाई। मा ने आकर हल्के से पूछा, "अगर मन हो तो दीपा के घर एक बार घूम आओ, और हाल-चाल ले आओ, मैं शाम को चलूंगी।"

मन की बात मां मे सुनकर चंद्रमोहन अखबार पढ़ने के बहाने थोडी देर बैठा रहा और पंद्रह मिनट के बाद, पीरू बाबू के घर चल दिया।

ग्यारह बज रहे थे। पीरू बाबू बरामदे के कोने मे बैठे थे, दीपा आंगन मे एक खटोले पर बैठ दीवार पर पीठ टेके अतर्मन मे न जाने कहा खोई हुई थी। सारा घर एकदम सूना था। हसने-खेलने वाले इस घर-आगन के कोने-कोने मे उदासी फैली हुई थी।

चंद्रमोहन के पैरों की आहट पर ध्यान टूटा तो उसे देखकर दीपा एकाएक उठ खड़ी हो गई। बरामदे से कुर्सी ले जाकर उसी खटोले की बगल में डालकर चंद्रमोहन बैठ गया। दीपा फिर भी खड़ी रही। दो-एक पल को चंद्रमोहन ने दीपा को देखा, फिर हाथ पकड़कर उसे खटोले पर बिठाते हुए बोला, "बैठोगी नहीं ? या खड़ी ही रहोगी।"

चंद्रमोहन को एकटक देखती हुई दीपा बोली, "अब तुम्हें यहां आने की याद आई है, मैं कब से राह देख रही हूं। बाबा बार-बार पूछ रहे थे कि गंगाजल अभी तक क्यों नहीं आया ? मैं क्या जवाब देती। एक बार मन हुआ कि चलकर बुला लाऊं। बाबा से कहा भी तो बोले, "अभी नहीं, दोपहर तक न आए तो जाना। रात का थका, आज इत-वार का दिन है, हो सकता है सो गया हो।"

"कहो कुछ खाया-पीया। बाबा को कुछ खिलाया ?"

"बाबा ने रात तो कुछ खाया ही नहीं, इस समय भी अभी कुछ नहीं खाया। तेरहवीं तक दिन में एक बार ही भोजन करने का विधान है, वह भी दोपहर के बाद, अब जा रही हूं भात बनाने, बाबा के दांत तो है नहीं।"

"इसका मतलब कि तुमने भी कुछ न खाया होगा, ठहरो मैं कुछ दुकान से खोए का सामान ले आता हूं। फलहारी मिठाई खाने में कोई नुकसान नहीं है।" चंद्रमोहन उठने लगा तो दीपा ने कलाई पकड़ के उसे कुर्सी पर बिठा दिया।

"अभी कहीं मत जाओ, मेरे पास बैठो। तुमसे कुछ बातें करनी है।"

चंद्रमोहन पैरों को मोड़ कुर्सी पर पल्थी मारते हुए बोला, "हां बातें करो, इसीलिए तो मैं आया हूं लेकिन खाली पेट बातें नहीं होती, मुझे पास की दुकान से कुछ मिठाई ले आने दो---तुम भी खाओ, बाबा भी खाएं, मैं भी खाऊं।"

"कभी-कभी मेरी भी सुन लिया करो, खाने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। तुम पास बैठोगे तो मैं बातें भी करूंगी, और काम भी करती रहूंगी वैसे काम भी क्या है, केवल बाबा के लिए दो मुट्ठी भात बना देना।"

फिर थोड़ी देर रुककर बोली, "मां इस तरह से एकाएक छोड़कर चल देगी, ऐसा तो सपने में भी कभी नहीं सोचा था।"

"हा, यह सब-कुछ वडा अजीव-सा लगा। मां भी यही कह रही थी कि औरतो का 'हार्ट फेल' वहुत कम होता है पर दुनिया में असंभव है क्या ? और जिंदगी के झटके भी तो ऐसे ही लगते हैं।"

"हा लगें, पर समय मे, जब सहने की शक्ति हो ?" दीपा हल्के मे बोली।

"प्रकृति यह कब देखती है ? शक्ति तो हमे अर्जित करनी पड़ती है दीपा, अपना दिल, दिमाग और शरीर सभी कुछ वलवान वनाना पडता है, लोहार की निहाई की तरह हथौडो की चोटें सहनी पडती हैं। फिर जिंदगी का कौन-सा ऐसा दुःख है जो झेला नही जा सकता ? वडे मे वडा दुःख इसान ही तो झेलता है।"

दीपा की आखें भर आईं और टपटप वडी-वडी आंसू की बूंदें आगन के सूखे फर्श पर गिरने लगी।

चंद्रमोहन का ध्यान गया तो वोला, "यह क्या ? बैठकर बातें करने का मतलव रोना होता है ?" वह दीपा के आंचल से उसकी आंखें और मुह पोछने लगा।

थोडी देर के वाद दीपा वोली, "आज इतवार है, वाजार तो बंद होगा।"

"नही, कटरा तो मंगलवार को वद रहता है।"

"कटरा का नही, चौक का काम है, कल करना होगा।"

"कौन-सा काम ?" चंद्रमोहन बोला।

"अभी वताती हूं, बैठो, अभी आई।" दीपा उठकर कमरे में गई और पाच मिनटो के बाद लौटकर चंद्रमोहन के हाथ में सोने का एक हार देती हुई बोली, "इसे वेचना है।"

"क्या ?" चंद्रमोहन विस्मय में बोला।

"क्या कह रही हो, इसकी क्या जरूरत पड गई ?"

"पड गई तभी तो, कल तुमने खर्चा किया वह, आगे मां का श्राद्ध होगा, खर्चा ही खर्चा तो है। और वावा के हाथ में एक पैसा नही है।

कल तो सब-कुछ तुमने संभाल दिया, लाज रह गई। कल कितना खर्च हुआ ?"

"क्या वह बताना आवश्यक है ?"

"एकदम। वर्ना अपनी शक्ति का अनुमान कैसे लगेगा ? इस हार की कीमत से ही सभी कुछ निपटाना है। फिलहाल पूंजी यही है, करना सभी कुछ तुम्ही को है, इसीलिए पूछ रही थी। इस हार को लेते जाओ, बिकने के बाद तुम्हारा खर्च काटकर जो बचेगा उसी में सभी कुछ करना होगा, पहले इसे बेच आओ, फिर आगे बातें करेंगे।"

"बाबा से पूछा ?"

"यह सब अपने मन से नहीं कह रही हू ?"

"मैं भी पूछ लू।"

"अवश्य, बैठो मैं उन्हें यहीं बुला लाती हू।" दीपा जाकर बाहर से पीरू बाबू को बुला लाई।

"क्यों ?" आगन के दूसरे कोने की धूप मे बैठते हुए पीरू बाबू बोले।

"दीपा क्या कह रही है ?" चन्द्रमोहन ने उन्हें हार दिखाते हुए कहा।

"ठीक कह रही है, फिलहाल दूसरी और कोई बात नहीं, यह तुम्हें ही करना होगा। मुझे यह सब आता नहीं।"

"मैंने ही गहने बेचने का काम कब किया है ?"

"नहीं किया है तो करो, सीखो ?"

चंद्रमोहन चुप हो पीरू बाबू का पोपला मुह देखने लगा जो भावुक होने पर चलने लगता था, जैसे पीरू बाबू कोई चीज खा रहे हों, "क्या सोच रहे हो ?"

"सोचता हूं बाबा कि कल तक आप मुझे सृजन करना सिखाते रहे, आज विसर्जन की आज्ञा दे रहे हैं।"

पीरू बाबू मुस्कराते हुए बोले, "जो कल था वह आज कहां रहा बेटा, यदि विनाश और विसर्जन न हो तो सृजन इस संसार मे अटेगा कहां ?"

"मा के लिए यह हार आपने कभी कितने स्नेह से खरीदा होगा—

आज आप ही इसे बेचने को कह रहे है।"

"समय के अन्तराल से यही तो ससार में होता है गंगाजल, ब्रह्मा कितनी निष्ठा और लगन से सृष्टि करते हैं और शिव निर्मम होकर उसका सहार करते है। पर ब्रह्मा और शिव क्या दो हैं ? नही, एक ही शक्ति के दो रूप है। मेरे लिए अब इन सांसारिक वस्तुओं का कोई मोल नहीं रह गया गगाजल। जीवन को मैंने खूब भोगा है और उस भोग में जो मेरी संगिनी थी वही चली गई तो अब इन थोड़े से गहनों का मुझे क्या मोह। इन गहनों का उपयोग यही महत्त्वपूर्ण है, समझे बेटा, चला-चली की वेला आई, एक से तो मुक्ति मिल गई—पर इस दीपा के लिए कोई राह नहीं निकल सकी, इसी कारण मन कभी-कभी बहुत व्याकुल हो जाता है, किंतु सोचता हूं, मेरी व्याकुलता किस काम की जो भगवान को मंजूर होगा वही तो होगा।"

चद्रमोहन ने दीपा के चेहरे पर अपनी आखें गड़ा दीं। दीपा आंगन का फर्श निहारने लगी थी। आस-पास एकदम खामोशी फैल गई थी—जिसे चंद्रमोहन ने ही तोड़ा, "सोचता हूं कि यह हार बेचते समय यदि दीपा भी मेरे साथ रहे तो उचित होगा।"

पीरू बाबू ने आंखें मूंद लीं। अनुभव भरी मुस्कराहट, उस चेहरे पर फैल गई, फिर आखें खोल ध्यान से चद्रमोहन को देखते हुए बोले, "इस तरह का काम मर्दों को ही शोभा देता है, दीपा को इस का क्या ज्ञान है ?"

"ज्ञान तो मुझे भी नही है बाबा, लेकिन एक से दो रहेंगे तो अच्छा ही होगा। मैं सोचता हूं···।"

"अब किसी सोच-संकोच में मत पड़ो, यह काम तुम्हीं करो। अगर बहुत आवश्यकता पड़े तो अपनी मा को ले लेना, दीपा को साथ लेकर निकलने के लिए, यदि तुम चाहोगे तो तुम्हारे सामने अनेकों अवसर आएगे।"

पीरू बाबू की बात की गहराई को चद्रमोहन ने पकड़ा, लेकिन वह चाहता था कि हार लेने के पहले अपनी मां से पूछ ले। इसी संकोच मे वह बोला, "बाबा अपनी बात को फिर आप से एक बार कहना चाहता

हू कि जिस हार को मा पहनती थी उसे बेचना···।"

"नहीं, नहीं बेटा, मोह की बात मत करो। इसे तो बेचना ही है, जब इसको पहनने वाली ही चली गई तो इसको रख के करूगा क्या ? कोई विकल्प भी तो नहीं है।"

"अभी दीपा तो है।"

"आह ! तुम मेरी बात क्यों नहीं समझते गगाजल, पत्नी पत्नी होती है, बेटी बेटी। इस हार की अपनी कथा है, अलग सदर्भ है, इन हाथों को और इन आखो को इसके कारण कभी जितना सुख मिला है इसे देखकर वह सब-कुछ पीछे का याद आने लगता है। जब दीपा की मां थी हम लोग कभी-कभी यह सब याद करते थे, लेकिन अब जब वह चली गई तो इसे देखकर मन मे बेहद तकलीफ के सिवा और क्या मिलेगा ? दापत्य जीवन का यह सुख जब तुम पार कर लोगे तब इसे समझोगे। तुम लोग बच्चे हो, मैं सारी बातें तुम लोगों के आगे खोल-कर कैसे कहू ? इसे जेब मे रख लो, और कल यह हो जाना है, क्योंकि मेरा हाथ एकदम खाली है।"

"अभी आपको कितने रुपयों की आवश्यकता पडेगी ?"

"इसकी कीमत मे मे तुम्हारे खर्च के रुपए काटने के बाद जो बचेंगे उतने की ही।"

चंद्रमोहन चुप हो गया और हार को जेब मे रखकर बोला, "तो जाता हू।"

"हा जाओ।" पीरू बाबू बोले।

"पर शाम को तो आओगे न ?" दीपा एकाएक बोल पड़ी, "और हो सके तो मा को भी लेते आना।"

"पर सुनो।" पीरू बाबू बोल पड़े, "मैं तुमसे निवेदन करता हूं, मां को मौका मत देना कि मुझसे इस हार के न बेचने के सबंध में कुछ भी कहे ?"

"अच्छी बात है।" चंद्रमोहन चुपचाप चला गया। घर लौटा तो उस समय लगभग डेढ़ बज रहे थे। मां खाने की प्रतीक्षा मे रसोई बना-कर बैठी हुई थी। पहुचते ही बोली, "बड़ी देर कर दी ?"

"क्या करू, मैं तो जा नही रहा था, तुम्ही ने तो भेजा ?"

"क्यों, क्या हाल है ?"

"हाल तो सब ठीक है, यह सोने का हार देखो ?"

मा सोने का हार अपने हाथ मे लेकर हाथ ही से तौल का अनुमान लगाती हुई बोली, "क्या पीरू बाबू ने दिया है ?"

चंद्रमोहन ने हार के बारे मे सब-कुछ बता दिया।

सुनकर मा कुछ देर को खामोश हो गई, और चुपचाप चंद्रमोहन के लिए आंगन की धूप मे पीढ़ा-पानी रखा और चौके मे मे थाली में खाना परसकर बगल मे स्वय बैठकर कुछ सोचने के बाद बोली, "तुमने ये नही पूछा कि उन्हे कितने रुपए की जरूरत है ?"

"तुम्हें बताया तो कि इसके बिकने के बाद मेरे खर्च किए हुए रुपए काटकर जो भी बचे।"

"हार कम-से-कम तीन तोले का होगा, अगर छह सौ रुपए तोला भी बिका तो अठारह सौ का हुआ, तीन सौ काटकर पंद्रह सौ बचे। क्या श्राद्ध मे पद्रह सौ लग जाएंगे ? लगने को तो दो-दो हजार भी थोड़े है पर जैसी स्थिति हो वैसा ही तो करना भी चाहिए। इन लोगों का लोकाचार, रस्म-रिवाज मैं जानती नही, वर्ना सब-कुछ कम-से-कम खर्च मे निपट जाता।"

"यह तुम चाहो तो अब भी कर सकती हो मां, पीरू बाबू तो तुम्हारे आगे बोलते ही नही, और दीपा तो तुम्हारा मुह जोहती रहती है।"

कुछ देर सोचकर मा फिर बोली, "खैर, हार बिकेगा नही, पर एक बार बाजार ले जाकर इसकी असली कीमत तो जाननी ही होगी। पर दीपा पर भी जाहिर नही होना चाहिए कि हार बिका नही है।"

दूसरे दिन चंद्रमोहन को साथ लेकर उसकी मां स्वय बाजार गई और हार की कीमत लगी उन्नीस सौ रुपए। चंद्रमोहन की मा ने हार रख लिया और दूसरे दिन चंद्रमोहन के हाथ सोलह सौ रुपए भिजवा दिये। सारे रुपए चंद्रमोहन ने दीपा के हाथ मे रख दिये तो दीपा बोली, "तुमने कितने खर्च किए थे ?"

"तीन सौ, जो ले लिए—अब ये सोलह सौ है।"
बिना गिने दीपा ने रुपयों को अपने बक्स में रख लिया।

दस

दीपा की मां का श्राद्ध हो गया, पीरू बाबू सारे लोकाचारों से मुक्त हुए, किंतु दीपा की मा की मौत से श्राद्ध तक, चंद्रमोहन की मां ने जो सहयोग दिया वह अप्रत्याशित था। दीपा को कुछ भी महसूस ही नहीं हो सका कि कहा, कब और कैसे क्या होना है ? पीरू बाबू भीतर से इतना टूट गए थे कि उनकी दशा विक्षिप्त सी हो गई थी। इसलिए श्राद्ध के आयोजन के लिए घर मे चंद्रमोहन की मा थी, बाहर चंद्रमोहन था। पीरू बाबू शिशु की तरह एक-एक दिन का गुजरना देखते जा रहे थे। सृजन करने वाले इस कलाकार की थक चली देह को पत्नी की मौत ने झकझोर दिया।

सूनी और उदास जिंदगी के दिन कटने लगे। एक दिन उन्होने अपने सितार की खोल को साबुन लगाकर साफ किया, सितार को झाड़ा-पोंछा और बाहर बरामदे में बैठकर ललित तोड़ी फिर राग दरबारी मे डूब गए। करुण, विरह और अवसाद भरी लहरों से बरामदा, घर-आंगन भर गए और दीपा अपने कमरे में बैठी हुई पिता के सितार से निकलने वाली अवसाद भरी लहरों में बहने लगी। बहुत दिनों के बाद बाबा ने सितार उठाया था और इतने मन से बजा रहे थे। पहले जब

कभी बाबा, रागललित बजाते, करुणा की तरंगे घर पर छा जाती, मा बाबा के पास जाकर बैठ जाती, लेकिन आज मां कहां थी जो बाबा के पास जाकर बैठे ? शायद इसीलिए बाबा विरह और अवसाद के रागो मे खो गए थे, फुलवारी के पार, दालचीनी और रजनीगंधा के पेडो के ऊपर, सूने आसमान को देखते हुए एक अजीब-सी दुनिया मे पहुच गए थे। और वह खुद राग के आरोह-अवरोह पर कान रोपे, आखों से निकलने वाली आसुओं की खारी जलधार पीती हुई चंद्रमोहन की प्रतीक्षा करती रही।

सांझ बीत चली, लेकिन आज पाचवें दिन भी चंद्रमोहन नही आया। शाम को चाय पीते हुए यह प्रश्न पीरू बाबू ने ही पूछा, "तो आज भी *गगाजल नही आया ?"*

"हा, कोई कारण भी समझ मे नही आता, कुछ कहा भी नही, *बीमार तो नही हो गए। आज छुट्टी का दिन था।"*

"लाओ मेरा कुरता और घडी, अभी पता करके आता हूं। तुम भी चलोगी ?"

"मैं भी चलूगी तो घर कौन रहेगा, भोजन भी तो बनाना है।"

"ले आओ, मैं अकेले ही हो आता हू।"

पीरू बाबू सांझ के सात बजे चंद्रमोहन के घर पहुंचे। घर पर केवल मां थी। जंजीर खटखटाने पर द्वार खोलकर देखा, "अरे पीरू बाबू आप, आइए, आइए।"

"नमस्कार।"

प्रत्युत्तर दे कुर्सी सरकाती हुई मां बोली, "कुशल-मगल तो है ?"

"वही पूछने तो मुझे आना पडा कि आप लोग अच्छी तरह से तो हैं।"

"हा, हा, ऐसी तो कोई बात नही।"

"तो फिर हम लोगों से कोई अपराध हो गया क्या ?" पीरू बाबू दोनों हाथ जोड नम्रता से बोले।

"अरे आप कह क्या रहे है पीरू बाबू ?"

"दुख और अवसाद के दिनों मे प्रायः स्वजन और बंधु-बाधवों के

द्वारा गलत समझे जाने की बडी आशका रहती है।" पीरू बाबू विनम्रता मे हाथ जोडे ही बोले।

"आपकी बातों का मतलब मेरी समझ में नही आया ?"

"दीपा की मा थी तो सभी कुछ था। सभी का आना-जाना था क्योंकि वह पुण्यात्मा थी, शेष हम लोग है, पुण्यात्मा तो नही पर इसान है, आप लोगों की दया के पात्र—जितना आपने हम लोगो के लिए किया वह इस जन्म में भूल नही सकता। उसके अलावा, जिसका मुह देखकर जाने-अनजाने, भीतर कही सुख मिलता हो, खोए उदास मन को सात्वना मिलती हो, उस सुख के छिन जाने का भय, मन को कितना क्लेश दे सकता है यह भोगने वाला ही समझ सकता है। दीपा की मां की मृत्यु के बाद, हमसे ऐसा क्या हुआ कि श्राद्ध होते ही गंगाजल ने आना-जाना रोक दिया ?"

"ओह !" चद्रमोहन की मां चैतन्य होकर थोडा मुस्कराई।

"हां पीरू बाबू, इसके पीछे कोई खास कारण तो नही दीखता। एक दिन मैंने वैसे ही जिक्र कर दिया था सितार सीखने वाली बात का तो चंद्रमोहन कह रहा था—ऐसे में भला सितार सीखने जाऊं मा। उदास और सूने घर मे जाने मे ही मन कतराता है। अकेले घर मे जाने से मन सकोच मे पड जाता है, ऐसे जमाने मे किसका मुह रोका जा सकता है। दीपा की मां थी, तब और बात थी ?"

"अपने ही घर मे सकोच कहा तक उचित है।" पीरू बाबू बोले।

"हा, ये आप ठीक कह रहे है, वैसे आजकल दफ्तर से घर भी देर से आता है। इस देर से आने का कारण पूछा तो बोला—मुसफी की तैयारी कर रहा हूं इसलिए बाहर-बाहर लायब्रेरी से होता आता हूं, किंतु आपके घर वह बिल्कुल नहीं जाता, यह तो सुनकर भी मुझे विश्वास नही होता।"

"इसीलिए तो मैं पूछने चला आया कि आपकी मर्यादा के विरुद्ध अनजाने मे हम लोगों से तो कोई ऐसी बात नही हो गई, जिसकी ये सजा है, तो निश्चय ही हम उस भूल के लिए क्षमाप्रार्थी हैं।"

"नहीं, नहीं पीरू बाबू, आप ऐसा मत सोचें।

ईश्वर ने एक संतान दी थी—पुत्र, जिसे जवान बनाकर वापस ले लिया। आपके गंगाजल को देखा तो ईश्वर की सृष्टि पर अचरज होने लगा कि रूप-रंग, चेहरा-मोहरा ही नहीं, उठने-बैठने और शिष्टाचार में भी दो एक समान हो सकते हैं। खोया हुआ धन यदि वापस मिल जाए तो सोचिए कैसा लगेगा ?" पीरू बाबू ने पल-भर को अपनी आंखें मूंद ली। पोपले मुंह पर करुणा उभर आई, फिर आंखें खोलकर एकदम सरल भाव से कहने लगे, "जन्मा आपकी कोख से है, पर आपकी कृपा के कारण उससे थोड़ा हम लोगों को भी सुख मिलता है। कहते हैं न, उंगली पकड़ते-पकड़ते आदमी पहुंचा पकड़ने लगता है। वही दशा हम लोगों की भी हो गई है। उस पर जैसे हम अपना अधिकार समझने लगे हैं। संसार के माया-मोह के लिए बहाना तो चाहिए न मां। सारे दुख और आपदाओं को भोगने के बाद भी आदमी कितना कमजोर होता है।

"हां, जबकि उसे कठोर हो जाना चाहिए। लेकिन जो सामने है उसे मन से भुलाया भी नहीं जा सकता। बेटा मेरा क्या पीरू बाबू, भगवान का है। आपके बेटा नहीं है, मेरे है, इसका भी मैं दावा नहीं करती। आते-जाते देर कितनी लगती है। दुनिया की प्यारी से प्यारी लुभावनी चीज जब आंखों के आगे से छिन जाती है तो अधिकार किस पर जताया जाए ? आपके लिए चिंता की बात दीपा है इससे भी मुक्त हो जाते तो बात बन जाती। निगाह में कोई लड़का नहीं है क्या ?"

पीरू बाबू पल-भर खामोश रहकर बोले, "लड़के तो कई हैं पर बाजार में सौदा करने के लायक भी तो होऊं। जो कठिनाइयां मेरे सामने हैं आपसे छिपी नहीं हैं। जहां से रिटायर हुआ, वहां से नौ हजार रुपए मेरे फंड के खटाई में पड़े हैं, कब मिलेगा, भाग्य जाने। इस विकट महंगाई में मकान से जो किराया आता है उसी से किसी तरह यह गाड़ी खिंच रही है। पहले दीपा की तबीयत जानती ही हैं कि खराब रहती थी। एम० ए० के दूसरे साल में उसकी पढ़ाई छुड़ा देनी पड़ी। यह तो भगवान ने जाने कैसे आप लोगों को यहां भेजा, आपके बेटे के पवित्र चरण मेरे घर में पड़े और मेरी बेटी की तबीयत सुधरने

लगी। मां की मृत्यु ने उसे गहरा आघात लगा है। घर में अकेले तबीयत घबराने लगती है, ए० जी० आफिस में अब तो बहुत-सी लड़कियां नौकरी करने लगी हैं, वहां भी कोशिश कर रहा हू। दीपा पहले से ही वहां का इम्तहान दे चुकी है। अगर वहां की नौकरी मिल जाती तो एक सिलसिला शुरू हो जाता, उसका ब्याह कर देता, मुक्त हो जाता। आप तो अपनी बेटी से मुक्त हो गई ?"

"हां, आप लोगों के आशीर्वाद मे हो गई, पर बेटे से भी मुक्त हो जाती तो सही माने मे मुक्ति मिलती। देखिए, अब खेती के काम से कुछ दिनों के लिए गाव जाना है, लेकिन वहा जाने पर इसके लिए चिंता लगी रहती है।"

"मर्द बच्चे के लिए क्या चिंता करना मां ? हंस के बच्चे को भला कोई तैरना सिखाता है।"

"यह तो सही है, लेकिन पानी में पहली बार उतारने के लिए ढंग का सरोवर खोजना पडता है, ऐसा सरोवर जिसके घाट ठीक हों, सीढ़िया ठीक हो, कही ऐसा तो न हो कि तीर पर ही वह अतल गहरे जल में पख फड़फड़ाकर डूब जाए।"

"ओ मा ! यह तुम क्या कह रही हो, भगवान सब की रक्षा करता है।"

"वह रक्षक, बहुत बड़ा भक्षक भी है घोपाल बाबू, यह न भूलिए। अपनी गलतफहमी में दो-दो जवान बेटे गंवा चुकी हू, इसी से तो अब छाछ भी फूक कर होंठो मे लगानी पड़ती है।"

"हुआ क्या ?" घोष बाबू विस्मयता मे बोले।

"जिंदगी और मौत के बीच होता ही क्या है घोपाल बाबू, नयी उम्र में आंख-मिचौली का एक ही तो खेल होता है। इस खेल मे जिसके भी कदम गलत पड़े, गया। जैसे एक ही लड़की के पीछे मेरे दोनो बेटे पड गए। लड़की दोनो के साथ आख-मिचौनी खेलने लगी। वरण उसने किसी बाहरी तीसरे को कर लिया तो एक ने विष खा लिया, दूसरा नदी मे जा डूबा। राजकुमार सरीखे बच्चे थे। चंद्रमोहन तो उनके आगे कुछ भी नहीं है। इसी से मन डरा रहता है कि कोई इसके साथ

भी आख-मिचौनी न खेलने लगे। लेकिन, दूसरा पहलू सोचकर, छाती पर पत्थर भी रख लिया है कि जब किसी पर कहीं भी अपना वश नहीं और खेल के मैदान मे हर किसी को उतरना ही पड़ता है तो यह भय और सतर्कता किस काम की, देता है राम, लेता है राम।"

चद्रमोहन की मा के मुह पर असहायता की एक सहज छाप बिखर गई। वह जंगले मे बाहर कही बहुत दूर देखने लगी। कुछ देर चुप रहके फिर बोली, "यह सयोग की ही तो बात है घोपाल बाबू कि अपने जिस बच्चे को तोपती-ढकती चलती हू उसी मे आपको अपने बच्चे का प्रतिरूप मिल गया, आपने उसे स्नेह, सद्भावना और कृपा दी, गुण सिखाया, ऐसा गुण जिसमें बैठकर आदमी सब-कुछ भूल-बिसार कर एक नए लोक मे पहुच जाता है, और यह भी संयोग की ही बात है कि दीपा की बीमारी अच्छी हो चली है, लेकिन, केवल चद्रमोहन के कारण हुआ है ऐसा भी नही है। ईश्वर की कृपा है कि दीपा को मन के अनुकूल एक हमउम्र लडके का संग-साथ मिला है जो दीपा के लिए इस समय अनिवार्य है किंतु कब तक और कहां तक यह सग साथ उसे मिलेगा समझ मे यही नही आता।"

"आपके मन मे कोई भय तो नही है मा ?"

"इतना सब सुन लेने के बाद भी मेरे मन में भय रहना चाहिए क्या घोपाल बाबू ? मां होने के नाते कही से कभी-कभी मन मे कुछ आ जाता है, लेकिन चद्रमोहन को मैं जानती हूं। वह अपने कुल की मर्यादा को समझता है। दीपा को भी देखकर मन मे ममता जागती है, लेकिन इस उम्र को क्या कहा जाए ? कौन जाने किसका मन कब, किस ओर घूम जाए। यही सब सोचकर मैं अपने को कभी-कभी असहाय पाती हूं। कहां-कहा, उसे लेकर भागती-भटकती रहूंगी, जो उसके भाग्य मे होगा सामने आएगा। मा होने के नाते नये अर्थ तक देखे बिना रहा भी नही जाता। अब मुझे हरदोई जाना है, खेती के काम मे वहा महीने-दो महीने कम मे कम रहना होगा, फिर वह यहा कैसे रहता है, क्या खाता है ये सब कहां देख पाऊगी। वह कह रहा था कि बाहर दौरे पर जाने के लिए उसने नाम दे दिया है। चुन लिया गया तो चार

महीनों के लिए चला जाएगा। मुंसफी की भी परीक्षा दी है, उसमे आ गया तब तो इलाहाबाद छूट ही जाएगा।'

"आपने तो मेरी आखें खोल दीं।" पीरू बाबू बोले।

"वह कैसे ?"

"जिस शका और सकोच मे मैं मारा जा रहा था उसे आपने दूर कर दिया। वह आए तो आप पूछें कि हम लोगो के पास वह आता क्यो नही ?"

"ये सब तो आप लोग ही पूछें, किसी भी बात को बहुत तूल देकर नही सोचना चाहिए। वह आएगा तो आपके पास भेजूगी, हो सका तो आज ही। लेकिन आप भी तो कभी-कभी दीपा को मेरे पास भेज दिया करिए।"

"दीपा आपकी बेटी है, उसे मैंने कभी नही रोका है ? मैं तो चाहता हूं कि वह अपने पैरो पर खड़ी हो बाहर-भीतर निकले, मन बहले, पर एक बार गगाजल से जरूर बोल दीजिएगा कि पीरू घोषाल उसे देखने आए थे।" पीरू बाबू दोनों हाथ जोड़ के प्रणाम कर खड़े हो गए।

"लेकिन आपको तो मैंने चाय तक के लिए नही पूछा ?" अपनी भूल पर पछताती हुई बोलीं, "थोड़ी देर रुक जाइए, एक कप चाय पीकर जाएं।"

"नहीं मा, चाय पीकर आया था, अब चलने दें। ये तो अपना घर है, इच्छा होती तो माग लेता।"

पीरू बाबू निकल आए।

ग्यारह

छुट्टी का दिन था, मौसम सुहावना था। नहा-धोकर जलपान कर चंद्रमोहन दीपा के पास पहुंचा। बाहर का द्वार बंद था। उसने दरवाजा खटखटाया। दीपा ने द्वार खोला और चंद्रमोहन को सामने खड़े देखा तो देखती ही रह गई। हाथ में किताब लिए हुए ही एक ओर हट गई। चंद्रमोहन भीतर दाखिल हुआ और भीतर के बरामदे में जाकर बैठ गया।

बगल में कुर्सी रखकर बैठती हुई बोली, "तुम इलाहाबाद में हो?"

"जाऊंगा कहां? अपने लिए कोई दूसरी जगह भी तो नहीं है।"

"मिलेगी तो चले जाओगे?"

"मिलेगी तो देखी जाएगी, फिलहाल जो है उसका हाल बताओ।" चंद्रमोहन मुस्कराते हुए बोला।

"हाल-चाल जानने की तुम्हें आवश्यकता कैसे पड़ी?"

"ओह, ओह, हर तरफ से डांट ही पड़ रही है। पता नहीं कल बाबा, क्या मां से कह आए, रात वह डाट रही थी, आज यहां तुम तनी हुई हो। मुझसे गल्ती क्या हो गई?"

"तुम पाच दिन थे कहां? सितार बजाना आजकल बंद है लेकिन आने पर क्या प्रतिबंध है?"

"प्रतिबंध की बात नही, थोड़ा बुझ गया था, बस यही समझो। असल में मुसफी का फार्म भरना है।"

"अभी तो पिछली बार बैठे थे, उसका परिणाम निकला ही नही, तब तक दूसरा फार्म कैसे भर दोगे? पढ़ाई करते रहने की बात तो समझ में आती है, लेकिन दस मिनट को यहां आ जाने में क्या लगता है, जब जानते हो कि इस घर को तुम्हारी जरूरत है।"

"और मुझे किसकी जरूरत है?"

"मुसफी की।" दीपा ने सहज भाव से कह दिया।

चन्द्रमोहन ठठाकर हंस पड़ा, "भई वाह, क्या कहने तुम्हारी हाजिर-जवाबी के। दरअसल उसी की आवश्यकता है, अगर मुसफी में आ गया तो तुम्हें भर पेट मिठाई खिलाऊंगा।"

"बस ?"

"और तुम जो मांगोगी दूंगा।"

"लेकिन अपने आप नहीं, मांगने पर ही।"

"मैं क्या ज्योतिषी हूं जा जान जाऊंगा कि तुम चाहती क्या हो ?"

"न भी हो, तो भी, यदि तुम देना चाहोगे तो तुम्हें जानना होगा कि मैं चाहती क्या हूं ? मांग कर पाई हुई चीज पर मैं अपना अधिकार नहीं समझती, जिंदगी ने मुझे इतना मौका ही नहीं दिया। खैर छोड़ो, मैं कहां बहक गई। तुम मुसफ हो जाओ, पहली शर्त तो यह है और मैं *उसके लिए भगवान से प्रार्थना करती रहती हूं।*"

"मैं तुम्हें एक बात बताने आया हूं।"

"क्या ?" दीपा उत्सुक हो बोली।

"मां दो-तीन महीनों के लिए हरदोई जाने वाली है।"

"मुझे मालूम है।" दीपा सहज ही बोली।

"और मैं उस बीच पी० डब्ल्यू० डी० की आडिट पार्टी में बाहर दौरे पर जा रहा हूं।"

इस बार विस्मय से भरकर दीपा ने चन्द्रमोहन की ओर देखा। फिर धीरे से बोली, "ये नहीं मालूम है।"

उसका मुंह उतर गया। चंद्रमोहन ने इसे देखा, समझा।

"लेकिन तुमने ये तो पूछा ही नहीं कि कहां जा रहे हो ?"

"इलाहाबाद से बाहर जा रहे हो, यही क्या कम है। लगता है यहां से ऊब गए हो ?"

"बात कुछ ऐसी भी है। बाहर थोड़ा मन बहल जाएगा, सरकारी खर्च पर घूमना भी हो जाएगा। बरेली, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, रुड़की, बुलंदशहर और देहरादून जाना है। जगहें भी अच्छी हैं।"

"क्या तुम्हारे दफ्तर में लोग जब चाहते हैं तब दौरे पर चले जाते हैं ?"

"नहीं, पहले से नाम देना होता है। दफ्तर के हजार-डेढ़ हजार आदमी तो साल-भर बाहर दौरे पर घूमते रहते हैं, पहले तो एक बार की निकासी तीन महीनों की होती थी, अब चार महीनों की हो गई है।"

"कब जाओगे ?"

"पांच-सात दिनों में जाऊं ?"

दीपा ने चौंककर देखा, "अभी ?"

"चद्रमोहन हंसा, "घर नहीं बाबा, दौरे पर।"

दीपा आश्वस्त होकर बोली, "दफ्तर में नाम दे दिए हो, चुनाव हो गया है और मुझसे पूछने आए हो कि जाऊं ?"

"लेकिन तुम तो कहती हो कि मैं तुम्हारा मान ही नहीं करता।"

"मेरा मान करने आए हो ?" दीपा ने कहा।

"और क्या।" विनोद भरे स्वर में चद्रमोहन बोला।

"सचमुच।"

"एकदम सचमुच। विश्वास नहीं होता क्या ?"

"यदि कहूं कि रुक जाओ, तो क्या रुक जाओगे ?"

"कह के तो देखो ?"

"पानी पीकर घर पूछ रहे हो, सब-कुछ निश्चित करा लेने के बाद पूछते हो कि जाऊं या नहीं। सुनो, जिस दिन इतना अधिकार तुमसे पा भी जाऊंगी, उस दिन भी तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं कहूंगी। अभी तो मेरी बिसात कुछ नहीं है, मैं अपनी स्थिति जानती हूं।" फिर थोड़ा रुककर बोली, "वह अधिकार भगवान मुझे देगा भी नहीं, कौन जाने। जितना तुमसे मिलता है, कृतज्ञभाव से ग्रहण करती जा रही हूं।"

"तुम तिल का ताड़ कर देती हो !"

"कमजोर होने की यही निशानी है।"

"बाबा कहां है ?"

"कटरा गए हैं।"

"जाओ, एक कप चाय का पानी चढ़ा आओ।"

"दीपा उठकर चौके मे चली गई। पानी चढाकर आई तो बोली, "तुमने दौरे पर जाने के लिए नाम क्यों दिया ?"

"असल में दफ्तर से मेरा मन उचट गया है।"

तभी घोपाल बाबू आ गए। हाथ मे थैला लिए भीतर दाखिल होते हुए बोले, "दफ्तर से मन क्यों उचट गया है ?"

खड़े हो चंद्रमोहन ने पीरू बाबू के पैर छुए।

अशीष देते हुए पीरू बाबू बोले, "अरे बेटा, इतने दिन कहां थे ?"

उत्तर में दीपा की ओर ताकते हुए चद्रमोहन मुस्करा रहा था। अपनी किसी बात का उत्तर जब चद्रमोहन दीपा से दिलवाना चाहता था तो वह दीपा की ओर देखने लगता था, चंद्रमोहन की इस आदत को दीपा जानती थी। वह बाप से कहने लगी, "आजकल इनका मन इलाहाबाद से उचट गया है बाबा।"

"अभी तो दफ्तर से मन उचटने की बात कर रहा था, तुम इलाहाबाद मे कह रही हो। इसने तुमको वकालत के लिए कुछ फीस दी है क्या ?"

अपनी जीभ काटती हुई दीपा बोली, "फीस मिलती तब तो काला कोट पहन के इनकी ओर से एलानिया खडी होती, मै तो इन्ही से सवाल करती थी कि दफ्तर में मन उचट गया है लेकिन वहां रोज जा रहे हो, इस घर से तो मन उचटा नहीं, तो यहा क्यों नही आते ?"

"हा, ये बात तो ठीक कही तुमने ?"

"लेकिन आप तो अपने शिष्य का ही पक्षपात कर रहे है, हमी पर आरोप लगाकर।"

"मेरे समझने में भूल हो गई बेटी, बूढा हो चला दिमाग अब पूरी तरह से काम नही करता। लेकिन दफ्तर से मन क्यों उचट गया बेटे, वहा से रोटी मिलती है।"

"असल मे बाबा, इस दफ्तर में नब्बे प्रतिशत ऐसी जगहें है जिसमें दसवीं दर्जे तक के पढ़े-लिखे लोगों की जरूरत है। जो बड़े मजे मे

दफ्तर का काम चला सकते हैं, लेकिन भर्ती किए गए हैं बी० ए०, एम० ए० पास लोग, जिनके रहन-सहन का ढंग ऊंचा है। जिंदगी को देखने का नजरिया साधारण पढ़े-लिखे आदमियों से एकदम भिन्न! तनख्वाह जितनी मिलती है, उसमें घर की जरूरतें पूरी नहीं होतीं, महंगाई कमर तोड़े हुए है। नतीजा ये कि लोग फस्ट्रेटेड हैं यानी असंतुष्ट, जितना उन्हें काम करना चाहिए, उतना भी नहीं करते। दफ्तर का अधिक वक्त कटता है चाय, पान और सिगरेट की कशों में, राज-नीति की बहस-मुबाहसों में और उनकी देखा-देखी बाकी जो काम करने वाले लोग हैं वे भी काम नहीं करते, देखा पुण्य, देखा पाप। फल ये होता है कि अच्छे-भले की भी आदत बिगड़ती जाती है, आदमी ढल और काहिल हो जाता है।"

'अच्छा मैं दस मिनटों में बगल से हो आता हूं, चले मत जाना।"

पिता के चले जाने के बाद दीपा ने पूछा, "अगर आप लोगों की तनखाह बढ़ा दी जाए, यानी उतनी जितनी कि जरूरत है तो क्या आप लोग दफ्तर का काम करने लगेंगे?"

"शायद नहीं।"

"तो फिर कम तनखाह की दुहाई देना तो गलत है?"

"नहीं, वह सही है।"

"तो फिर गाड़ी कैसे चले, सरकार करे क्या?"

"सरकार को चाहिए कि ऐसे दफ्तरों में काम करने के तौर-तरीके, नियुक्ति-प्रमोशन की पद्धति में आमूल परिवर्तन करे। हाई स्कूल और इंटरमीडिएट पास लड़कों को यहां भरती करे, उनसे काम ले, अच्छी तनख्वाह दे, तरक्की दे, फिर देखो इस विशाल दफ्तर का माहौल बदल जाता है या नहीं।"

राज्य स्तर के कर्मचारियों में तो दसवीं और इंटर पास ही लोग अधिकतर होते हैं, वहां क्या लोग अधिक काम करते हैं? और अगर करते हैं तो इसलिए कि तनखाह के अलावा उन्हें रोज की आमदनी अलग से होती है। मैं तो कहती हूं कि यदि तुम्हारे दफ्तर में भी इस तरह की आमदनी के जरिए खुल जाएं तो देखो किस तरह से लोग

अपनी कुर्सियों से-चिपके रहते हैं या मैं गलत कह रही हू ?"

चद्रमोहन चुप लगा गया। फिर कुछ सोचते हुए बोला, "नहीं, तुम ठीक कहती हो। ले-दे के फिर आमदनी पर ही तो बात आ गई, लोगों को उतने पैसे मिलेंगे, जितने मिलने चाहिए और उसी लालच में लोग काम करेंगे।"

"यही पर तो कम पढ़े-लिखे और अधिक पढे मे फर्क की जरूरत होती है। एक आदमी को कितने पैसे मिलें ? उसकी सीमा क्या होगी ? आदमी को अधिक पैसे मिलते है, खर्च के जरिए बढने लगते है—वहा पर तो पढा-बेपढा, कम पढा, सब बराबर हो जाता है। कही न कही एक रेखा तो खीचनी होगी कि बस इस हद मे रहिए, रहना सीखिए। जरूरतों को कम करिए, मन पर थोडा लगाम लगाइए। ढेर सारी परेशानियां तो इसी मे कम हो जाएगी। यही पर कम पढे, और अधिक पढ़े मे अतर होता है।"

"कहने के लिए तुम्हारी बातें अपनी जगह पर सही हो सकती है पर व्यवहारिक रूप मे कठिन है। एक तरफ तो तुम देश को साइकल से स्कूटर, ग्रामोफोन से रेडियो-टेलीविजन, कपास से नाइलोन-टेरीन, एक्के से टैक्सी तक पहुचाने मे लगी हो, दूसरी तरफ कहती हो हम जरूरतों को कम करें ? कैसे करें, यदि करें, तो देश की इन चीजों का होगा क्या ?"

"तब ये झगड़ा दूर कैसे हो ?" दीपा ने पूछा।

"देश की आर्थिक अव्यवस्था दूर की जाए, देश की पूजी के बटवारे का सही तरीका निकले। सबको आवश्यकता की चीजें मिलें। शोषण हटे। अमीर और अमीर होता जा रहा है गरीब और अधिक गरीब।"

"अब तुम फिर 'इजिम' वाली बात पर आ गए। लेकिन 'इजिम' में भी भारत-जैसे देश के लिए कौन-कौन इजिम ठीक है—सोशलिजिम या 'कम्युनिजिम' ? गाधी मर गए, उनके उत्तराधिकारी नेहरू आए। भारत के लिए उन्होने जो भी सपने देखे, जो भी किया गद्दी बेटी को दे गए।" दीपा बोली।

"क्यों, उनके बाद शास्त्री जी आए।" चंद्रमोहन बोला।

"महज थोड़ी देर के लिए।"

"मतलब ? चंद्रमोहन भीतर से खुश हो बोला।

"यह एक विवाद की बात है। अखबारों मे इस पर खूब प्रकाश डाला गया है, खूब चर्चा की गई है, क्या तुम इसे नही जानते ?"

"डॉ० लोहिया ने पार्लियामेंट मे शास्त्री जी की मौत पर कुछ सवाल किए थे जिनमे कुछ मुख्य सवाल थे कि हर प्रधानमंत्री के सोने के कमरे मे रात को एक ऐसी मशीन रखी जाती है जो सोए हुए प्रधानमंत्री की देह मे जुडी रहती है, जिसका काम ये है कि यदि देह मे किसी प्रकार की भी गड़बडी आई तो ये मशीन सूचना देने लगती है और बगल के दूसरे कमरे मे लेटे हुए उनके निजी डाक्टर को यह बात पता चल जाती है और वह इसका तुरंत उपचार शुरू कर देता है। किंतु लालबहादुर शास्त्री की देह से जोड़कर उस रात ताशकद मे वह मशीन क्यो नही रखी गई ? दूसरा सवाल ये कि शास्त्री जी की देह नीली क्यो पड गई थी ? तीसरा सवाल ये कि भारत आने पर भी शास्त्री जी के शव का पोस्टमार्टम क्यो नही किया गया ? इसमे से एक भी सवाल का सरकार उत्तर नही दे सकी। तब डॉ० राममनोहर लोहिया ने कहा कि अगली बार वे इस मामले पर और भी प्रकाश फेंकेंगे और इसके भीतर छिपे राजों का भडाफोड करेंगे। पर वैसा हो नही पाया। लोहिया खुद ही चल बसे।

"तब तो तुम आगे यह भी कहोगे कि राजनीति के जिन पाच-सात पडितो ने इंदिरा गाधी को प्रधानमत्री बनाया, यह काम उन्ही का था या वे इस काम मे पूर्वपरिचित थे।"

"नही, यह कहना तो गलत ही नही, बेवकूफी भी होगी।" दीपा बोली।

"तब उन लोगो ने इंदिरा गांधी को क्यों चुना ? मोरार जी देसाई जैसे व्यक्ति की पीठ मे छुरा क्यो भोंका ?" चंद्रमोहन ने पूछा।

"इसलिए कि उनके हाथ में एक गुड़िया प्रधानमत्री रहेगी। वे जो कुछ चाहेंगे, करेंगे। वस्तुत. भारत के शासक वे लोग रहेंगे और हुआ भी यही। १९६६ से १९६९ तक इंदिरा गाधी कामराज, निजलिंगप्पा,

अतुल घोष और मोरार जी देसाई जैसे शतरंज की मोहरों मे घिरी हुई बादशाह थी। वे महसूस करने लगी कि उन पर हर समय 'शह' पड़ सकती है। वे कभी भी 'मात' हो सकती हैं, और तब १९६९ में राष्ट्रपति के चुनाव के प्रश्न पर उमने विद्रोह कर दिया और 'सिंडिकेट' के नाम से जाने जानेवाले इन राजनीति के पंडितों का एकदम से पत्ता ही काट दिया। कांग्रेस का विभाजन करके कामराज के विरोधों के बावजूद इंदिरा ने रुपए का अवमूल्यन कर दिया। किंग मेकर कामराज धराशायी हो गए। ये बात और है कि इंदिरा गाधी ने, उसे भारत की मलिका बनाने वाले कामराज के एहसान को उनके मरणोपरांत भारत रत्न की उपाधि से विभूषित कर दिया।" दीपा ने कहा।

"तब तो इसका अर्थ हम यही लगाते हैं कि इंदिरा गांधी जैसा योग्य व्यक्ति उस समय कोई नही था?" चंद्रमोहन ने सवाल किया।

"तब आज इंदिरा गांधी जो कर रही हैं उसके खिलाफ चू-चपड़ क्यों कर रहे हैं। चुपचाप सहिए, तमाशा देखिए। देखना ही पड़ेगा, कर ही क्या सकते हैं, अच्छे-अच्छे उनके पीछे दुम दबाये घूम रहे हैं। वे जो कल तक प्रजातंत्र का नारा लगाते थे...।"

"इसका मतलब मै कि इंदिरा गाधी जो भी कर रही है उचित कर रही है?" चंद्रमोहन बोला।

"उचित-अनुचित का निर्णय करने की ताकत यदि आज नही है, तो कल होगी—जनमानस तो इसका फैसला करेगा ही। आज नही तो कल, कल नहीं तो परसों। काल किसके लिए ठहरा रहता है। रोना तो इस बात का है कि नेता तो नेता, भारत का बुद्धिजीवी वर्ग भी गिरगिट की तरह रंग बदल रहा है। हद है, ऐसा देश कहां जाएगा?"

"औरत होके तुम औरत के खिलाफ बोल रही हो?"

"मर्द होके तुम सच्चाई से अलग हट रहे हो तो औरत होके तुम्हे सही दिशा देना मेरा फर्ज है। मैं ये कहना चाहती हूं कि इंदिरा जी के गुणों को भी समझने की कोशिश करो। एक ही पहलू देखने से काम नही चलेगा।'

"ओ शाबाश! दीपा शाबाश! मैं तो समझता था तुम चाय-रोटी

और वायलिन की मास्टर हो, पर तुम्हारे पास तो पोलिटिकल डायरी भी है।"

"उसे पढ़ने की तुमने कभी कोशिश ही नहीं की, तुम देना नहीं, महज लेना चाहते हो ?"

"समझा नहीं।"

"तुम यही चाहते हो कि मैं ही हर बार तुम्हारी जंजीर खटखटाती रहूं, दस्तक देती रहूं। लेकिन कब तक ? हर बात की सीमा होती है। मेरे मन मे भी साधें है, मैं भी चाहती हूं कि···" कहती हुई कुर्सी के पीछे खड़ी हुई दीपा कुर्सी पर आकर बैठकर बोली, "आज इसका निर्णय होगा, तुम्हें उत्तर देना होगा।"

"अरे बाप रे ! सब दिनों की कसर आज निकाल लोगी क्या ? मुझे अपनी सीमा मे नहीं रहने दोगी ?"

"तुमने सीमा का निर्धारण कर दिया। यदि हां तो बोलो मुझे कहां रखा है—भीतर या बाहर ?"

"सीमा निर्धारण करना यदि मेरे वश मे होता दीपा तो बात आज वहा नही होती जहा है। मैं अपना मुह बंद रखता हूं तो क्या इसका अर्थ तुम ये लगाती हो कि मैं तुम्हारे बारे मे सोचता नही या तुम्हारी जरूरत मैं महसूस नही करता। मेरे मन मे एक ही तो संतोष रहता है कि कम से कम तुम्हारी जैसी लड़की मुझे गलत नही समझेगी। मुह खोलने से ही तुम्हारे मन को संतोष होता है तब तो बात ही और है क्योंकि मेरे ख्याल मे वह बेमानी है निरर्थक है, अपने को छलना है। उम्मीद के दायरे मे अपने को बाधकर, अंत मे निराश होना मैं सह नही सकता।"

"तब मन को कहा तक मनाएं ?"

"जहा तक समय बीतता चला जाए, हर काम का समय होता है, वह अपने आप ही मार्ग दिखाता चलता है, यही ईश्वर का कालचक्र है।"

"तभी पीरू बाबू आ गए, "कुछ खाया-पीया कि ईश्वर का काल-चक्र ही समझाता रहेगा।"

"चाय पी है बाबा, आया था मा की शिकायत पर कि अपनी पिछली पाच दिनो की अनुपस्थिति के लिए आप लोगों से क्षमा माग लू।"

"नही बेटे, क्षमा मांगने की क्या बात है, हम लोगो के लिए भी दूसरा कोई नही है, तुम्हें इतना ही ध्यान रखना है।"

"अच्छा तो अब चलूगा, काफी देर हो गई, अब शाम को आऊगा, मा को हरदोई जाना है, कुछ सामान खरीदना है।"

"अच्छा जाओ।"

चंद्रमोहन घर लौट आया।

बारह

चंद्रमोहन की मां हरदोई चली गई। चद्रमोहन भी चार महीने तक रहने वाले हर शहर से अपने पत्राचार का पता दे तथा विशेष रूप से यह कहकर कि वह अखबार मे निकलने वाले मुनफी के परीक्षा-फल पर विशेष ध्यान रखे, दौरे पर चला गया। पहला पड़ाव बरेली का पड़ा। बरेली में ही एक महीने रुकना था, क्योंकि पी० डब्ल्यू० डी० के कई खंडो का आडिट करना था। पार्टी मे कुल पाच व्यक्ति थे, दो सीनियर आडिटर, एक इंसपेक्टिग आफिसर, एक चपरासी और एक जूनियर आडिटर की हैसियत से वह स्वय था। ठीक छः बजे सुबह बरेली स्टेशन पर ट्रेन रुकी तो स्वागत करने के लिए चार-पाच आदमी हाजिर थे।

इसपेक्टिग अफसर मि० सिंह थे, काम मे तो तेज थे लेकिन परिवार से इतना परेशान कि गुलाब-सा चेहरा हर घड़ी मुरझाया ही नजर आता था। पहली बार प्रोमोट होकर, गजटेड अफसर की हैसियत से बाहर निकले थे, इसलिए इस बात के प्रति बहुत जागरूक रहते थे कि वे इंस-पेक्टिग अफसर हैं। ट्रेन मे उतरते ही जब पाचो स्वागती उन्हें नमस्ते करके पास खड़े हुए तो सिंह साहब बोले, "देखिए, ये चारों लोग उन्हीं डिविजनो के डिविजन एकाउटेंट हैं जिनका कि हम लोगों को आडिट करना है। ये हैं मि० कपूर, जिनका आडिट पहले है, ये हैं अग्रवाल, ये तिवारी और ये श्रीवास्तव। और ये दो हैं पार्टी के सीनियर आडिटर—मि० डी० आर० गुप्ता, सी० एच० सक्सेना, और ये मि० चंद्रमोहन जूनियर आडिटर। और यह गुप्ता चपरासी।"

"आइए साहब, पहले चाय पी लें।" एक एकाउंटेंट कपूर ने प्रस्ताव रखा।

सभी लोग स्टेशन के रिफ्रेशमेंट रूम मे चाय पीने बैठे। मेज पर केक, पेस्ट्री, काजू, मक्खन, टोस्ट सज गया। नौ आदमी चाय पीने लगे। चद्रमोहन हतप्रभ, इस तरह की चाय! पास मे बैठे सीनियर आडिटर गुप्ता जी की ओर मेज पर की चीजों की ओर इशारा करते हुए चंद्र-मोहन ने थोड़ा विस्मय प्रकट किया तो गुप्ता जी चुप रहने को आखों मे ही इशारा कर थोड़ा मुस्कराए। एकाउटेंट ने सैंतीस रुपए का बिल भुगतान किया। चाय पीकर सब लोग बाहर निकले। प्लेटफार्म पर आकर मि० सिंह बोले, "सुनिए एकाउटेंट साहबान, अब आप लोग एक बात सुनिए, भाई दाल मे नमक उतना ही डालिए जितना गले के नीचे उतर सके। आप लोग अपने-अपने डिविजनो मे एकाउटेंट जेनरल के प्रतिनिधि हैं, हमारे आदमी है, तो भाई, कोई ऐसा काम न हो जिससे हमारी आडिट पार्टी बदनाम हो। मैं इसपेक्टिग आफिसर हूं। मेरी इज्जत आप लोगो के हाथ है, इसलिए पार्टी को खरीदने के लिए कोई काम मत करिएगा। मैं अपनी पार्टी वालों से भी कहता हूं, सुनते हैं मि० चद्रमोहन, आप लोग भी सावधान रहिएगा। अच्छा चलिए, अब बताइए हम लोगो के ठहरने की क्या व्यवस्था है।"

"आप को तो साहब पी० डब्ल्यू० डी० के डाक बंगले का सूट नंबर तीन एलाट है। ये लीजिए अपना परमिट फार टेन डेज, और पार्टी, आफिस के एक बड़े कमरे में टिकेगी। चलिए।"

टिकने की जगहों पर व्यवस्थित होकर पहले दिन बारह बजे से आडिट शुरू हुआ। मि० सिंह अलग कमरे में बैठे, बाकी पार्टी के सदस्य एक साथ अलग कमरे में। सीनियर आडिटर सक्सेना कई बार दौरे पर आ चुके थे, बाहर के आडिट के काम में अनुभवी थे, गुप्ता जी पहली बार आए थे। इसपेक्टिंग अफसर मि० सिंह पहले डिवीजनल एकाउंटेंट रह चुके थे, फिर एस० ए० एस० पास कर ए० जी० आफिस में सेक्शन अफसर हो गए, बाद में अपनी पारी पर एकाउंट्स अफसर हो गए थे, इसलिए वे भी पी० डब्ल्यू० डी० का काम खूब जानते थे। गुप्ता और चंद्रमोहन को ही काम सीखना पड़ा।

डेढ़ बजा, लंच आरंभ हुआ। डिवीजन में चहल-पहल शुरू हुई। मेज पर के आगे के रजिस्टर, कागज हटाए जाने लगे। मिठाइयां, फल, बिस्कुट नमकीन से मेजें भरने लगीं। आडिट पार्टी के डिवीजन के लोग लंच में एक कप चाय पिला रहे थे। लंच में एक कप चाय पीने की आडिट आफिस से भी छूट थी। यह चंद्रमोहन को बाद में पता चला। शाम को चार बजे काम बंद कर लोग घूमने निकले। पार्टी के साथ चार आदमी और थे, सब लोग बालकनी में सिनेमा देखने बैठ गए। सिनेमा देखकर निकले तो होटल में खाना। ऐसा प्रतिदिन होता रहा। चंद्रमोहन को लगा, वह किस दुनिया में पहुंच गया? उसे वितृष्णा होने लगी।

दो सप्ताह ऐसे ही फिसल गए। शाम को घूमते हुए चंद्रमोहन की मुलाकात अपने एक पुराने सहपाठी सुरेन्द्रकुमार से हो गई, जो बनवसा में सहायक इंजीनियर था। सालों बाद भेंट हुई थी, सुरेंद्रकुमार लिपट गया, "यार बनबसा आओ, परसों से चार दिनों की छुट्टियां भी है। मैं कल शाम को चलूंगा, मेरे साथ ही जीप से चले चलो, मैं तुम्हें पहुंचा भी जाऊंगा। संयोग से आए हो, तो बनबसा घूम लो, देखने की जगह है।"

चंद्रमोहन तैयार हो गया और दूसरे दिन शाम को सुरेंद्र के साथ ही बनबसा चला गया।

रात के दस बजे जंगल के बीच से गुजरते हुए बस्ती तक पहुंचना हो सका। सड़क के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूर आग के बड़े-बड़े कुंदे जल रहे थे—रात में शेरों को इस ओर आने से रोकने के लिए। सरजू नदी से सटकर पांच हजार आदमियों की यह बस्ती वन में बसाई गई थी। यहां से सरजू नहर निकाली गई थी। सामने असंख्य बत्तियों से जगमगाता सरजू नदी का बराज दीख रहा था जहां नदी को रोककर पानी नहर की ओर मोड़ दिया गया था। बराज पर रात में भी अनवरत काम होता रहता था। नदी के इस तरफ उत्तर प्रदेश, दूसरी तरफ नेपाल की सीमा थी। जंगल-पहाड़ की ठंडी हवा बदन में सिहरन पैदा कर रही थी। क्वारा सुरेन्द्र दो मंजिले डाक बंगले के ऊपरी एक सूट में रहता था। यात्रा की थकान के बाद बस्ती और बराज के बीच तथा नहर के किनारे-किनारे और बराज पर जगमगाते हुए बिजली की रोशनी में दीपावली सरीखी उजागर रात को बाहर के बरामदे में खड़े होकर चंद्रमोहन देर तक देखता रहा।

सुबह हुई। डाक बंगले के बाहरी बरामदे में निकला तो सूरज की किरणों में उस खिले हुए वन-प्रांतर को देखते ही रह गया। बस्ती में पक्की, सिमेंटेड, घुमावदार सड़कों के दोनों ओर युकलिप्टस के सफेद हरे ऊंचे-ऊंचे पेड़, सामने बहती हुई सरजू नदी का चमकता हुआ सफेद जल, पृष्ठभूमि में नेपाल की तराइयों को समेटे हुए बड़े-बड़े पहाड़। चंद्रमोहन दो मंजिले डाक बंगले के ऊपरी हिस्से में खड़े हो यह मोहक दृश्य देख रहा था। बंगले में खड़ा हुआ सुरेंद्र बता रहा था कि उत्तर प्रदेश में अपनी तरह का यह अकेला दो मंजिला डाक बंगला है, और वह देखो पतली पगडंडी-सी जो राह दिखाई पड़ रही है वह टनकपुर से होती हुई नैनीताल चली गई है। आओ अब मेरे साथ, तुम्हें सरजू नदी का 'हेड' दिखा लाऊं। इस हेड की खूबी है कि नहर में जब उसकी 'कैपिसिटी' का पानी भर जाता है तो नदी से लेने वाले जल का फाटक अपने आप बंद हो जाता है। नहर को इस तरह कभी कोई

खतरा नही रहता।

"तू शादी क्यो नही करता ?" चद्रमोहन, उसकी बगल मे चलते हुए बोला।

"राजकुमार की तरह देह-मुह पाकर अभी तू क्वांरा है तो बदर की-सी शक्ल वाले सुरेंद्रकुमार को कौन लडकी पसद करेगी ? अपनी बता, कोई लडकी निगाह पर चढी या बोधिसत्व की तलाश मे जवानी बीत जाएगी ?"

"अभी तो शाल वनो के बीच भटक रहा हू, किन्नर देश की परी शायद आ जाए और मुझ पर निगाह पड़ जाए तो शायद इस काया का उद्धार हो जाए।" चंद्रमोहन ने तुरत जवाब दिया, "अबे अहमक, तुझमे और मुझमे फर्क है—मै ठहरा आडिटर और तू ठहरा अफसर। पैसे वाले लड़कों को तो लड़किया और उनके बाप सूघते चलते है, अचरज है ऐसी सुघर देह-मुह लेकर तू अभी तक बचा हुआ है। लगता है, तूने अभी तक किसी को प्यार नही किया।"

चद्रमोहन खामोश रहा तो सुरेंद्र फिर बोला, "क्या हुआ तेरे मुसफी का नतीजा, आया ?"

"अभी नही।"

"शायद उसी का इतजार है, तब बम फूटेगा, गुरु न्योता जरूर भेजना।"

"नहर के किनारे पहुचने के लिए नीचे उतरते समय दोनों के बीच की दूरी बढ गई तो बातचीत का सिलसिला ही टूट गया। आगे बढते ही एक जूनियर इंजीनियर मिल गए जो बराज मे कोई बड़ा मैकेनिकल दोष आ जाने की रिपोर्ट सुरेन्द्रकुमार को दे रहे थे। सुनकर सुरेन्द्र थोड़ा तेज कदमों से आगे बराज की ओर बढा। जहां पचासों मजदूर काम कर रहे थे। बराज के दूसरी ओर सरजू नदी के सूखे 'बेड' की सफाई हो रही थी जिसमे सैकड़ो आदमी काम मे जुटे हुए थे। दोष दूर करने मे लगभग एक घंटा लग गया।

सुरेन्द्र उधर अपने स्टाफ के साथ उलझा हुआ था, इधर बराज की रेलिंग पर झुका हुआ चद्रमोहन बराज के स्लूस। गेट की दीवारो से

टकरा-टकराकर, हिलोरें लेते हुए जल का नहर में मुड़ना-गिरना देख रहा था। आखें जल पर, मन इलाहाबाद पहुंच गया। चंद्रमोहन दीपा की सुधि में खो गया। तभी सुरेन्द्र ने धीरे से कंधे पर हाथ रखा। चद्रमोहन ने आखें घुमायी तो सुरेन्द्र ने पूछा, "कहां हो?" लगा हुआ ध्यान टूट गया, मुस्कराते हुए तिरछी आखों से सुरेन्द्र की ओर देखा।

"आओ चलें, कुछ खा-पीकर आराम करें, फिर सांझ को टनकपुर की ओर चलेंगे।"

"दोनों डाक बंगले लौट आए। सुरेंद्र खाना खाकर आदत के अनुसार सो गया। चद्रमोहन बरामदे में छोटी मेज-कुर्सी निकाल बैठकर पत्र लिखने लगा—

बनबसा

प्रिय दीपा,

वन-प्रातर के इस दोमंजिले डाक बंगले के ऊपरी हिस्से के दक्खिनी सूट के आगे बरामदे में बैठकर तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूं। सामने सरजू की अथाह जल-धारा है, बिखरी हुई हरियाली है, उस पार नेपाल की तराई है, ऊंचे-ऊंचे पहाड़ है, दोपहर के बाद की खिली हुई धूप है, और उस पार डाक बंगले के आगे की फुलवारी में छरहरे तने वाले युकलिप्टस के तीन जवान पेड़ हैं और लान मे हरी-हरी दूब है, क्यारियों मे कतार से खिले हुए गुलमेंहदी के असंख्य रंगीन फूल है, और मेरी आंखों मे सावन के उमडे हुए बादलों के बीच कौंध जाने वाली रोशनी की तरह तुम हो। तीन हफ्ते ही हुए लेकिन लगता है, तुम्हें देखे हुए तीन बरस हो गए। अजीब है यह मन, सामने रहे तो कुछ नही, अलग हो जाए तो जाने क्या होने लगता है।

बरेली से दो दिनों के लिए 'बनबसा' घूमने आया हू, वन-प्रांतर की छटा देखने। यही मेरा पुराना दोस्त सुरेन्द्र रहता है, अचानक बरेली मे मिल गया, घुमाने के लिए यहा खीच लाया। खूब घूमा भी हूं, तराई प्रातर की फिसलती हुई गुनगुनाती धूप, देह को एक सुखद स्पर्श देती है और सरजू नदी के भागते-भटकते जल का प्रवाह, मन को कहां से कहा पहुंचा देता है। ऐसी जगह मे एकाकी होना देह मे एक अजीब

तरह की कसमसाहट और विवशता भर देता है। आदमी परिस्थितियों का दास है, शायद इसीलिए वह अपनी नियति पहचान नही पाता और मौको पर बधन-विहीन होके, मर्यादा की दीवार लाघ जाता है।

सुरेन्द्र बाप का एकलौता खूबसूरत बेटा है, सहायक इंजीनियर के पद पर है। और आज की भौतिकवादी दुनिया मे क्वारा है। यह एक विस्मय की वात है, जबकि गार्हस्थ्य जीवन मे प्रवेश करने के लिए उसे अब कुछ भी करना शेप नही है। उल्टे मुझसे पूछ रहा था कि मैंने अभी तक ब्याह क्यों नही किया ? क्या किसी को प्यार करता हूं। बोलो, मुझे क्या उत्तर देना चाहिए।

तुम कैसी हो, बावा कैसे है ? उनसे मेरा प्रणाम कहना। कभी इस बीच घर में वायलिन या सितार पर से खोल हटी या नही। पछता रहा हूं कि साथ मे सितार क्यों नही लाया, बस वनवसा के पेड़ों की मर्मरध्वनि और सरजू की कलकल बहने वाली जल-धारा के साथ, सितार की ठुमरी से इस बन-प्रांतर के रध्र-रंध्र को भर देता···

जब से आया हूं, हर रोज तुम्हारा पत्र पाने का इंतजार करता रहता हू। ऐसा क्यों ? जब अपनी ओर से तुम्हें कोई पत्र ही नही भेजा तो पत्र पाने की आशा कैसे लगा बैठा ? यह कितना बेमानी है। लेकिन मन यह आस कैसे लगा वैठा, इसे कैसे समझाऊ।

क्या, कभी मेरी भी याद आती है ?

तुम्हारा
चद्रमोहन

तीसरे दिन अलत सवेरे सुरेन्द्र के साथ वह जीप मे बरेली के लिए चल पड़ा और ठीक समय से दिन के दस बजे अपने आडिट के काम पर हाजिर हो गया। सबसे पहले उसने डाकघर मे लिफाफा मंगाया और दीपा का पत्र लेटर वाक्स में स्वयं छोड़ आया।

डाकिया पत्र दे गया। दीपा घर मे अकेले थी। शाम को चार बजे चाय बनाने जा रही थी। पुकार पर बाहर आई, डाकिये ने लिफाफा थमा दिया। असमजस में भरी हुई दीपा ने लिफाफा खोला,

पत्र देखा तो बाहर का द्वार बंद करके वहीं कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ गई। रुककर थोड़ी देर आकाश की ओर ताकती रही—फिर चौथी बार पढ़ने लगी तो पीरू बाबू आ गए। द्वार खोल चाय बनाने की जगह कहा, "बाबा, गंगाजल का पत्र आया है।"

"क्या लिखा है?" पीरू बाबू खुश हो बोले।

"तुम्हें प्रणाम लिखा है, और घूमने-फिरने के अनुभव…।" फिर पूछा, "चाय बनाऊं?"

"हां बनाओ।"

दीपा चाय बनाने बैठ गई। चौके में बैठकर पत्र को एक बार फिर पढ़ा, और तब मोड़कर ब्लाउज में खोंस लिया।

तीन-चार दिन पत्र को बराबर पढ़ने-सोचने के बाद उत्तर लिखा—

प्रिय गंगाजल,

धरती पर गिरते ही बच्चों के कंठ में पुकार फूटती है—'कहां'! नहीं जानती वह पुकार ईश्वर को संबोधित होती है या अपनी प्रसूता को, विस्मय में भरी हुई वह स्थिति दुखद होती है या सुखद। पर अपनी बात जानती हूं, पत्र पाए चार दिन हो गए और मैं इसे बराबर अपने पास रखती हूं, सोते-जागते, अपनी पहुंच के भीतर। केवल मैं ही कल्पना कर सकती हूं उस क्षण की जब यह जानकर कि पत्र तुम्हारा है मेरी देह-मन के रोम-रोम पुलकित हो उठे थे। एक विस्मय-भरा सुख भर गया था—अपने एकाकी होने का बोध टूट गया था—मरुभूमि में चलते-चलते जैसे सहसा 'ओयसिस' दिख जाए, कि तुम कहीं हो। और मुझे तुम्हारा इंतजार है।

जिस दिन तुम्हारे मन को समझने योग्य हो जाऊंगी, अधिकार पा जाऊंगी, उस दिन मेरा जीवन सार्थक हो जाएगा, अभी तो अपनी बात बताती हूं कि तुम में मेरा अगाध विश्वास है, यही विश्वास मुझे उत्साह और बल देता आया है, मेरी आत्मा को संवारता रहता है, और मैं सधे कदमों से चलने लगती हूं। तुम्हारा यह पत्र पाकर मुझे कितनी

शक्ति मिली है, यह कैसे कहूं, कैसे कहूं कि तुम्हारा यह पत्र पाकर मेरा जीवन कितना सुरभित हो उठा है, महमह महक उठा है, प्रातः की रूप-किरण जो आलोक भर देती है, वही आलोक मेरे अंधकार भरे जीवन मे भर गया है। पत्र पाने, लिखने की बात जो तुम सोचते थे वही मैं भी सोचती थी, लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि स्त्री धरणी होती है, तुम तो विवेकवान पुरुष हो, फिर भी मैं अपनी ही हार मानती हूं, क्योंकि पहल तुम कर बैठे हो जो सहज और औचित्यपूर्ण है।

क्या बीच मे दो-एक दिनो के लिए भी आना नही होगा? या मेरे इस सूने आंगन मे वही से रस बरसाओगे! बहुत दूर हो, यह मुहल्ला अधिकतर ए० जी० आफिस वालो का है, हालांकि तुम्हारे दफ्तर के दौरे पर जाने वाले लोग अक्सर बीच-बीच मे आते रहते है, लेकिन तुम्हारे मन मे यह मोह कौन जगाए।

क्या मैं तुम्हे याद करती हू, यह कहकर कि दंश देने से ही तुम्हें यदि सुख मिलता हो तो तुम्हे हर छूट है, पर मैं भी हाड़-मांस की बनी हूं यह मत भूलना।

श्री सुरेन्द्रकुमार का पूछा हुआ प्रश्न यदि अब भी अनुत्तरित हो तो उनसे पूछना कि दीपक क्या पतंगे को प्यार करता है!…

खाने-पीने की व्यवस्था क्या है? परदेश का भोजन तुम्हारी देह कैसे निभा रही है, चिंता इसी बात की होती है।

मेरा आदर-भरा प्रणाम!

तुम्हारी
दीपा

पुनः—पत्र दो दिन पहले ही पूरा कर लिया था, पर छोडती नही थी, लगता था, इस पत्रोत्तर के रूप में तुम मेरे पास हो, छोड़ दूंगी तो दूर लगने लगोगे। दूर तो हो ही, मीलों दूर। पत्र छोडना भी जरूरी है, वर्ना अपने से ही कहना और अपने-आप ही सुनना! ये बात और है कि पत्र छोडते ही उत्तर पाने की लालसा भी मन में शुरू हो जाती है।

बरेली के लिए मेरा आखिरी पत्र है, तुम्हारा उत्तर पाकर ही प्रोग्राम देखूंगी कि अगला पत्र तुम्हे कहां भेजू। इसके बाद तो तुम्हें

मुरादाबाद जाना है, शायद दस दिनों के लिए ही, फिर भी…।

—दीपा

प्रिय दीपा,

जिस दिन बरेली मे चलना था, उसी दिन तुम्हारा पत्र मिल गया था, सोचा था कि मुरादाबाद मे उत्तर भेजूगा। दस दिन मुरादाबाद में रहना हुआ, लेकिन तुम्हे पत्र लिखने को समय नही मिल सका। डिवीजन वाले जिनका हम आडिट करते हैं इतना घुमाने-फिराने मे व्यस्त देते है कि सही ढग मे आदमी सरकारी काम तक नही कर पाता। ग्यारह बजे तक खाने-पीने मे बीता। दफ्तर पहुंचे। फिर कागजो को देखने-दिखाने की भीड शुरू हुई। डेढ बजते ही पार्टी की खातिरदारी, जो तीन बजे तक चलती है। चार बजे नही कि काम बद, अब घूमने चलिए, जीप तैयार है। पार्टी का हर आदमी जो इतनी दूर से आया होता है, घूम-फिरकर नयी जगहों को देखने की चाह भी तो संवरण नही कर पाता। और जब लौटता है तो देह इस कदर थककर चूर हुई रहती है कि बिस्तर के अलावा कुछ सूझता ही नही।

पढना-लिखना क्या, अखबार की दुनिया मे भी जैसे कट गया। अखबारों मे कुछ मिलता नही, आपातकालीन स्थिति मे कहां क्या हो रहा है। कुछ भी जान नही सका। इस दौरे ने तो और भी आखो पर पट्टी बाध दी है। इसी खींचतान में मुरादाबाद मे दसो दिन बीत गए, और मैं तुम्हें पत्र नही लिख सका, तुम क्या सोचती होगी! लेकिन गुनहगार तो मैं हूं, क्षमा मांगने का हकदार तो हूं ही।

तुम्हारे बारे में मन मे एक बार नयी धारणा बनी थी—तुमसे राजनीतिक बातें करके, आज वैसा ही कुछ हुआ है तुम्हारा यह पत्र पा कर। वायलिन पर गज चलाने वाली उंगलिया कागज पर इतनी साध के कलम भी चला सकती है, यह तो मैं सोच भी नही सकता था। मैं अर्थशास्त्र का विद्यार्थी रहा हूं, फिर भी मोटे रूप से सराहे बगैर भी तो रह नही सकता। सगील… …वचारों की धनी, और ऊंचाई मुझे दे दी … …का हकदार

वास्तव में नहीं हूं। मुझे मेरी सीमा मे रहने दो, जिससे मैं तुम्हें याद करता रहूं। तुम्हारी जरूरत महसूस करता रहूं, अपने दिल और दिमाग में फर्क समझता रहूं। अपने प्रति सच्चा रह सकू, और खुद को छलने की कोशिश न कर सकू। मैं भी हाड-मास का एक इंसान हू। अपनी तमाम खामियों के साथ मुझे मेरे अपने असली रूप मे रहने दो। नकाब लगाने का मौका मत दो।

अक्तूबर आधा बीत रहा है, आजकल का सवेरा सुखद होता है। आज इतवार है, मैं जहा रुका हूं वहीं से एक सडक शुरू होती है। दोनों ओर घने छायादार पेड है, सभी तरह के पेड—ताड खजूर तक के, साफ-सुथरी एक बहुत बडी बगिया के किनारे-किनारे गुजरती है, और नाम भी क्या है, 'राहेरजा' नाम रखने वाला काबिले तारीफ है। लगता है उस समय के नवाब की इस सडक पर खास इनायत थी, जो आज भी यहां की पालिका की निगाहों मे बरकरार है। शायद इसी-लिए तुम्हें पत्र लिखने का-मूड हो आया, यदि ये कहोगी—तुम्हें खुशी मे ही याद करता हूं, तो मैं कहूंगा—यह खुशी ही एक मन स्थिति है। खुशी और अवसाद से हटकर जिसमे तुम अधिक याद आती हो। किंतु ऐसा क्यों है कि खुशियां ही बांटी जाती है, दुख-अवसाद नहीं।

और मैं चाहूंगा कि तुम बराबर मेरी खुशियों की ही साक्षी रहो, कैसी हो? खाने-वाने के बाद करती क्या हो। मेरा मतलब दिनचर्या से है…।

और बाबा कैसे हैं?

यहां के आवास के दो दिन बीत चुके है। आज का छोड़ा हुआ पत्र कल सुबह निकलेगा। और तीसरे दिन तुम तक पहुंचेगा, जबकि मुझे यहां केवल पांच दिन रुकने को रह जाएंगे। इसलिए मुझे पत्र भेजना आवश्यक ही हो, तो इसके बाद वाले पड़ाव यानी बुलदशहर के पते से भेजना। नयी जगह में नयी उम्मीद लेकर उतरूं। और इत्मीनान से तुम्हें फिर पत्र लिख सकूं।

तो लो, अब लिखना बंद करता हूं। और उसके तुरंत बाद लिफाफे मे बंद करके इसे पोस्ट करने जाऊंगा। तभी लौटकर नहाना-खाना हो

सकेगा। अपने मन का बोझ हलका करने के बाद ही।

इस बार भी उसी स्नेह से
चंद्रमोहन

इलाहाबाद

प्रिय गंगाजल,

काश, तुम्हें पत्र लिखना मेरे लिए कतई अनिवार्य न होता! तब मैं कितना मुक्त रहती, लेकिन अब इस मन को कैसे मनाऊं जो अकेला है, अवश है। यदि तुम्हें इतनी जानकारी होती कि एक निश्चित गंतव्य पर चल चुकी औरत को दिशा बदलने और वापसी का मौका देने का प्रतिफल होता क्या है तो शायद, दिल और दिमाग में फर्क समझने की तुम्हें कोई जरूरत न होती। मछली को कांटे में फंसाकर उसे ढील दे-देकर पानी में तैराना हो तो उसे मृत्यु वरण करना ही पड़ेगा, उसके आगे विकल्प भी तो नहीं है, इसलिए एक न एक दिन जब दीए को बुझ ही जाना है तो उन हाथों की हवा से क्यों न बुझे जिसके लिए वह अब तक प्रकंपित हो जलता रहा है। मर-मर के जीवित होता रहा है'''कि मैं तेरा चिराग हूं, जलाए जा बुझाए जा!'''

बिना दुख और अवसाद को साक्षी बनाए मुझे केवल अपनी खुशियों का ही साक्षी रखना चाहते हो तब तो तुम्हारी उन खुशियों का महत्व मैं कैसे समझूंगी। मां की मौत के पहले और बाद की दोनों मेरी स्थितियों के साक्षी तुम नहीं रहोगे? क्या ऐसा रहे हो, तो क्यों मेरी खुशियों के साक्षी तुम नहीं होगा, जब हम दोनों की खुशियां एक हों, दुख-अवसाद और पीड़ा भी एक हों।

ईश्वर तुम्हें खुशियां दे, यह तो मैं सदा चाहूंगी पर ईश्वर किसी को खुशी क्या दे सकता है, जो स्वतः सापेक्ष है, अपने में अकेला है, प्रतीक्षा में रत, स्रष्टा विरही है। एक अदना बहेलिये के तीर से बिंध कर देह विसर्जित करने वाला निरीह'''

मां की मौत में चाचा टूट गए, इधर अधिक मौन रहने लगे हैं, अपने अकेलेपन में उदास। कारण समझती न होऊं ऐसा नहीं है, किंतु संगीत के

माध्यम से उस स्रष्टा के रस मे डूब जाने की क्षमता रखनेवाला कलाकार भी उदास हो सकता है, यही सोच के उस सृजनहार से प्रश्न करने का जी चाहता है कि मेरे जैसे का सृजन क्यो किया, जिसकी कोई उपादेयता न हो, पीछे कोई उद्देश्य न हो। और किया तो केवल पीड़ा और परिताप ही भोगने के लिए!

किंतु जब तुम याद आते हो तो फूलो को फिर से धागे मे पिरोने लगती हूं।

"देन, लेट नॉट, व्हाट आई कैनाट हैव—माई चीयर आफ माइंड डिस्ट्राय···"

अच्छा होता, उस सृजनहार ने मुझे भी आखें न दी होती, कुछ देख नही पाती, मन मे ललक न होती, कोई चाह न होती। देह तो छीजती जा रही है, और तुम इतने दूर हो या कि होते जा रहे हो, कैसे कहूं।

तुम्हारे ट्रंक से सारे ऊनी कपड़े निकालकर धूप दिखा दिया गया है। दुर्गापूजा समीप आ रही है, क्या उसमें भी नही आओगे?

मेरा प्यार भरा प्रणाम!

तुम्हारी ही
दीपा

प्रिय दीपा,

बुलंदशहर

तुम्हारा पत्र मेरे आने से एक दिन पहले ही पहुंचकर मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। साथ में मां का भी एक पत्र हरदोई से आया है। सोचता था कि दुर्गापूजा की छुट्टियों में इलाहाबाद आता। इतने दिन तुम्हे देखे हो गए, इसलिए जैसे परेशानी-सी हो रही है। तुम्हारे पत्र को पढ़कर मन में अलग से अवसाद भर जाता है, सामने रहती हो तब तो एकदम भोली-भाली बालिका की तरह, लेकिन पत्रो मे इतनी मुखर कैसे हो जाती हो? यही कारण है कि तुम्हें पाने के लिए तुम्हारे पत्रो को बार-बार पढ़ता हूं। जिसमें तुम कही नही मिलती हो इसलिए तुम को अब तुम्हारी समग्रता में देखना होगा। इलाहाबाद तक तुम्हारे

व्यक्तित्व का जो रूप मेरे सामने आया था, उसमें इन पत्रों के माध्यम से पर्त दर पर्त पडने वाली छापों का जोड कर तुम्हे देखना होगा—और जितने भी तुम्हारे व्यक्तित्व के आयाम हैं, उन्हे समझ लेना मेरे लिए गौरव की बात होगी।

किंतु दुख और अवसाद के व्यामोह में तुम डूबी रहो, इसका भी कोई असाधारण कारण मुझे नही दिखता। देह है तो सुख-दुख लगा ही रहेगा। बडे से बडा दुख इसान ही तो झेलता है, दुख से यदि हमी टूट जाएं तो हमारी महत्ता क्या रह गई ? तुम ये क्यों नहीं सोचती कि 'और भी गम है, जमाने मे मेरे गम के सिवाय'।

बाबा के उदास रहने की बात पढकर थोडी चिंता हुई। तुम्हारे लिए पिता के पद से उनकी उदासी अनुचित भी नही है किंतु उन्हें संभालने का दायित्व भी तो फिलहाल तुम्हारा ही है, तुम्ही यदि अपने मे खोयी रहोगी तो बाबा को मन लायक कैसे पाओगी। इसलिए बाबा के लिए और तुम्हारे निज के लिए यह परम आवश्यक है कि तुम प्रसन्न रहो और इतना विश्वास रखो कि कोई भी दुख कभी भी मैं तुम्हें अकेले नही भोगने दूगा।

विजयादशमी की छुट्टियों मे मा ने मुझे हरदोई बुलाया है, घर गए भी काफी लंबा अरसा हो गया, मुझे खेद है कि चाहते हुए भी दुर्गापूजा के समय इलाहाबाद नही पहुंच पाऊंगा। मां का कहना है कि मैं विजयदशमी में एक बार गांव आ जाऊं, जिससे आपसी पट्टीदारो के साथ खेतों का बंटवारा करके दीपावली तक वे इलाहाबाद पहुंच जाए। गर्म कपड़ों को धूप मे दिखा दिया अच्छा किया। मैं रुपए भेज रहा हू, ऊन खरीद के, यदि हो सके तो मेरे लिए पूरी आस्तीन का एक स्वेटर बुन देना, क्या हो सकेगा।

अमित प्यार से
तुम्हारा
चंद्रमोहन

पत्र पढकर दीपा भीतर से झुलस गई। ठंड से सिहरते मन मे जैसे धूप गरमाहट भर दे, वह नयी आशा और नये उमग से दीपावली की

प्रतीक्षा करने लगी।

दीपावली से तीन दिन पहले चंद्रमोहन की मा हरदोई से इलाहाबाद आ गई। दीपा खुशी से भर गई। मा के मना करने के बाद भी घर को झाड़-पोछ, धो-धाकर साफ कर दिया। मां बार-बार उसके दुबली होती रहने का कारण पूछती रही लेकिन दीपा कारण क्या बताती।

दीपावली से एक दिन पहले चद्रमोहन आया। चार दिनो का ही मौका मिल सका। लेकिन चार दिनो मे ही दीपा रोम-रोम से उजागर हो गई। पीरू बाबू प्रसन्न हुए। पास बिठाकर बड़ी देर तक दौरे का हाल-चाल पूछते रहे और इस बात से मा तथा पीरू बाबू दोनो प्रसन्न हुए कि चद्रमोहन का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है।

अभी डेढ माह बाकी थे, मेरठ, बुलदशहर, रुडकी के बाद अंतिम पड़ाव देहरादून था। हसते-बोलते दीपावली मनाकर यानी भैयादूज की रात को अपने गर्म कपडे तथा लिहाफ लेकर चद्रमोहन फिर वापस दौरे पर चला गया।

तेरह

रुडकी मे गंगा नहर खंड का आडिट था। पार्टी ठहराई गई, पी० डब्ल्यू० डी० के सगमरमर के फर्श वाले डाक बंगले मे, बस्ती से एकदम बाहर। रुड़की में घूमने को जगह ही क्या थी, छोटा-सा बाजार था, या फिर गगा नहर के किनारे हरिद्वार जाने वाली सड़क थी। गुप्ता जी चंद्र-

मोहन को शाम के साढ़े पांच बजे उसकी इच्छा के विरुद्ध एक शाम इसी नहर के किनारे टहलने के लिए खींच ले गए। पहाड़ी प्रदेश की हड्डी कंपाने वाली हवा, और दोनों की देह पर थे, केवल हल्के ऊनी कपड़े, दिन की धूप में पहनने वाले। ये लोग सलोनी एक्यूडक्ट की ओर बढ़ गए, उधर अधिक खुलाव था, हवा भी तेज चल रही थी। नदी के ऊपर से नहर को ले जाने के लिए यह 'एक्यूडक्ट' बना था। ठंड कुछ और बढ़ी तो चंद्रमोहन बोला, "आइए अब तेज कदमों से लौटें, रास्ता भी जल्दी तय होगा और तेज कदमों से चलने पर ठंड भी कम लगेगी।"

"टहलने का मतलब तेज चलना तो नहीं होता, यहां शिष्ट लोग टहलने आते हैं, देखेंगे तो क्या सोचेंगे ?" गुप्ता जी ने उत्तर दिया।

"हंसे भी गाल भी, फूला रहे ! या तो शिष्ट बनिए या ठंड खाइए।" चंद्रमोहन बोला।

"आप हर चीज की एक्सट्रीम क्यूं लेते हैं, आखिर समाज में इसका क्या महत्व है ?" गुप्ता जी बोले, "दुनिया में व्यावहारिक भी होना चाहिए ?"

"ये आप परस्पर विरोधी बातें कर रहे हैं, शिष्ट होना और व्यावहारिक भी होना वैसा ही है जैसे हसते हुए व्यक्ति से गाल फुलाए रहने की उम्मीद करना। दरअस्ल गुप्ता जी, हर अच्छी चीज के पीछे एक बुरी चीज होती है, जैसे चिराग तले अंधेरा।"

"कोई और उदाहरण दीजिए, ये तो पिटी हुई बात है !" गुप्ता जी बोले।

"जैसे इस सलोनी 'एक्यूडक्ट' को ही लीजिए, विज्ञान की कुशलता का कितना बढ़िया नमूना है। नीचे नदी, ऊपर नहर, लेकिन यह चौबीस घंटों टपकता रहता है, गर्मी में पड़ने वाले रमजान के दिनों में मुसलमान, इसके नीचे तल में नदी सूखी होने पर अपना सारा दिन गुजार देते हैं। यही नहीं, इसको बनाने वाला इंजीनियर लिख गया है कि यदि इसका टपकना रोक दिया गया तो एक्यूडक्ट बैठ जाएगा।"

थोड़ी देर सोचने के बाद गुप्ता जी बोले, "कोई और उदाहरण

प्रकृति-प्रदत्त ?"

"अभी आपको सतोष नही हुआ ? तो औरत को ही लीजिए, सृष्टि की कितनी अद्‌भुत देन है, किंतु बिना झूठ बोले वह रह नही सकती, इसका वैज्ञानिक कारण ये है कि औरत के शरीर की भीतरी बनावट ही ऐसी है कि वह बिना समझे-बूझे, कुछ न कुछ झूठ बोलती रहती है, और, औरत यदि कहीं राजनीति मे पड गई तो अच्छों-अच्छों को पटरा कर देती है, जैसे हमारी प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी ! वह कितना झूठ बोलती हैं इसका आप अनुमान नही लगा सकते गुप्ता जी। और मजा ये कि प्रधानमत्री होती हुई भी तनिक-सी बात पर रो देती है। क्या समझे गुप्ता जी।"

"गुप्ता जी एकदम चुप लगा गए।"

कृष्ण पक्ष की रात थी। पहाड़ियों के पीछे मे चद्रमा धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था। नहर के जल से भाप तो निकल रही थी, किंतु ठड काफी बढ चुकी थी। गुप्ता जी नहर के किनारे लगे पाइप के फेंसिग से पीठ टेक कर खड़े हो गए थे।

"चलिए चलें, नहीं तो सर्दी लग जाएगी—मेरी तबीयत भी बहुत अच्छी नही है, पढ़-लिख लेना और बात है, व्यवहार-कुशल होना और बात है गुप्ता जी ! जीवन मे बहुत अधिक नकाब लगाना, मैं तो बेईमानी समझता हूं।" गुप्ता जी गभीर हो गए थे।

"आइए चलिए।" गुप्ता जी बोले, "कल मे यह नया चपरासी जो आया है जयराम पांडे, अजीब आदमी मालूम पडता है, इसका तो रवैया ही नहीं समझ मे आ रहा है।"

"हां, आज आफिस मे, ए० ई० और जे० ई० हेड क्वार्टर तथा डिवीजनल एकाउंटेंट से काफी देर तक बातें करता रहा। एकाउंटेंट कुछ परेशान से लग रहे थे।

"कब ?" उत्सुक हो गुप्ता जी बोले।

"आज दिन के एक बजे दफ्तर मे।"

"खैर, चलिए।"

खाना खाते-पीते रात के नौ बज गए। सबको खिला-पिलाकर चप–

रासी जयराम पाडे साढे नौ बजे गुप्ता जी के पास आकर बोला, "गुप्ता जी, क्या दस मिनट वक्त मुझे भी दे सकते हैं ?"

"हा-हा पाडे जी, क्यों नही, आइए बैठिए ।"

कबन्न ओढे हुए जयराम पाडे बगल के स्टूल पर बैठ गया । गुप्ता जी रजाई ओढकर एक खाट पर बैठे थे, दूसरे पर चंद्रमोहन । पांडे कहने लगा, ' पच्चीस साल की मेरी नौकरी हुई गुप्ता जी, पंद्रह साल से मैं बराबर आडिट पार्टी के साथ दौरे पर रहा हूं, जयराम पाडे को पी० डब्ल्यू० डी० विभाग का कौन-सा आफिसर नही पहचानता ! पता नहीं, अब तक आप लोग क्या करते रहे है । मैं तो दो दिनो से आया हूं लेकिन जो इज्जत आप लोग कमा रहे हैं वैसी इज्जत मैंने किसी की आडिट पार्टी की नही देखी ।"

"इसकी यही वजह है पाडे जी कि हम लोग अपना खा रहे हैं, डिवीजन वालो का नही । हम लोग बिके नहीं है इसलिए नाम कमा रहे हैं और डट के काम कर रहे हैं ।"

जयराम पाडे हसा, "अरे बिकता कौन है गुप्ता जी, डिवीजन वाले जो खातिर करते है, वह क्या किसी के जेब से करते हैं ? साल भर ये लोग जेबें भरते है, साल मे दो बार दो सौ आडिट पार्टी की खातिर-दारी के लिए दे दिया तो आडिट पार्टी को खरीद लिया ! क्या कमाल की बात कर रहे हैं गुप्ता जी ! हर पार्टी ऐसा करती है, आडिट के प्वाइट भी पकडे जाते है, रिपोर्टें तैयार होती हैं, खूब खाते-पीते भी हैं। किसी के पेट पर लात न लगे, बचाना यही होता है और इसलिए लोग खातिरदारी भी करते है, आडिट पार्टी की खातिरदारी के नाम पर डिवीजनल एकाउटेंट रुपया कमाता है—ये कौन नही जानता ।"

"होगा पाडे जी, पर इससे हम लोगों को मतलब क्या है, हमें तो पार्टी की शान रखनी है, रख रहे है ।"

"ये तो आप हमें गुमराह कर रहे है गुप्ता जी !" पाडे बेहद नर्मी से बोला ।

"आपका मतलब नही समझा !" गुप्ता जी बोले ।

"मतलब मुझी से समझिएगा, मैं ठहरा क्लास फोर का चपरासी,

होंगी ? एकाउंटेंट से और रुपए लीजिए, चार सौ में क्या होगा ?"

"वह देगा कैसे पांडे जी ?"

"कलम आपके हाथ में है गुप्ता जी, आप कैसी बातें करते हैं—उसका बाप देगा और नहीं देगा तो ये रुपए भी लौटा दीजिए, हम लोग अपना लाएंगे।"

"फिर तो शांति भंग होगी !"

"बिना शांति भंग हुए जेब में रुपए भी नहीं आएंगे गुप्ता जी, इस एकाउंटेंट को मैं खूब जानता हूं—या तो आप करें या मुझ पर छोड़ दें, लेकिन मुझ पर छोड़ देंगे तो आपका रुतबा घटेगा, हम लोग गंवार आदमी हैं, मुंह का जोर है, आपके पास कलम का भी जोर है, कि सांप भी मरे लाठी भी न टूटे।"

"अच्छी बात है, आज तो आराम करिए, कल आप जैसा कहेंगे वैसा ही होगा। असल में हम लोगों को अनुभव तो इन बातों का था नहीं।"

"इसीलिए तो आप थोड़े में ही दब गए, लेकिन पार्टी के लोगों के आगे एकदम आईना रहना चाहिए, वर्ना घर का भेदी लंका ढाहे। देखता हूं, एकाउंटेंट जाता कहां है ! मेरा नाम जयराम पांडे है गुप्ता जी।"

"हम लोग बरेली स्टेशन पर पहले दिन उतरे थे तो इंसपेक्टिंग अफसर ने स्टेशन पर आए हुए एकाउंटेंट से कहा था कि हमारी पार्टी वालों को कुछ मत दीजिएगा—मुझे तो ये बातें अपमानजनक लगी थीं।" दूसरे सीनियर आडिटर बोले।

"मैं न हुआ सक्सेना साहब उस समय, वर्ना उनकी जुबान न खुलती, हाथी पचाने वाले हैं ये इंसपेक्टिंग अफसर ! खुद भी तो एकाउंटेंट रह चुके हैं, सुन तो रहे हैं उनकी तारीफ। यहां से चलिए देहरादून, तब इनके जलवे आपको देखने को मिलेंगे, जब बासमती चावल के बोरे घर भेजे जाएंगे।"

दूसरे दिन एकाउंटेंट ने तीन सौ रुपए और दिए—पांडे ही ले आया।

किंतु देहरादून आने की नौबत चंद्रमोहन के सामने नहीं आई। वह दो दिनों पहले ही बीमार पड़ गया और छुट्टी लेकर इलाहाबाद वापस आ गया।

रुड़की से लौटने पर बुखार लगभग दस दिन रहा, किंतु दीपा ने चंद्रमोहन को अपने ही पास रख लिया। इन दस दिनों में दीपा ने दिन-रात एक कर दिया—टायफ़ायड के लिए समय से दवा देती रही और जिस तरह डाक्टर बता गया था। उसी तरह से चंद्रमोहन की सेवा करती रही। पीरू बाबू चंद्रमोहन की बीमारी से चिंतित थे, किंतु दीपा उसकी सेवा में खुश थी। क्योंकि वह चौबीसों घंटे उसकी आंखों के सामने था। चंद्रमोहन ने मां को समाचार भेजने के लिए दीपा को कहा, पर वह यह कहके टाल गई कि मां घबरा जाएंगी। टायफ़ायड का बुखार है, समय से अपने आप ही उतर जाएगा, इसमें चिंता की क्या बात है! डाक्टर को कटरा जाकर हाल बताना, दवा, फल ले आने का काम अकेले दीपा रोज करती रही। वैसे उसने मां को एक पोस्ट-कार्ड लिख दिया और पोस्टकार्ड मिला तब जब मां हरदोई से चल चुकी थीं। इलाहाबाद आईं तो चंद्रमोहन का बुखार उतर चुका था। किंतु कमजोरी के कारण, मां के आने के बावजूद वह पांच-छः दिनों तक अपने घर नहीं जा सका क्योंकि डाक्टर ने मना कर दिया था।

चंद्रमोहन की मां भी दिन-भर और रात के ग्यारह बजे तक दीपा के ही घर रहतीं—केवल सोने के लिए अपने घर आ जातीं। चंद्रमोहन चार-पांच दिनों के बाद अपने घर चला आया। उसने एक महीने की छुट्टी ले ली।

लगभग पंद्रह दिनों में चंद्रमोहन स्वस्थ हो गया। बाहर निकलने लगा। जीवन पूर्ववत् चलने लगा।

दिसंबर का तीसरा सप्ताह समाप्त हो रहा था। सर्दी ने जोर पकड़ लिया था, फिर इलाहाबाद की ठंड, हड्डी तोड़ने वाली। नगर में कुंभ की तैयारी बेहद तेजी से चल रही थी। रात को आठ बजे चंद्र-मोहन आया। पीरू बाबू और दीपा अभी-अभी खाना खाकर उठे थे। कागज का एक चौकोर डिब्बा चंद्रमोहन ने दीपा की ओर बढ़ा दिया

तो दीपा उसे एकटक निहारती ही रह गई।

"पकड़ो तो।"

"है क्या ?"

"प्रसाद !"

दीपा ने डिब्बे को सिर से लगाया, रूमाल खोल चंद्रमोहन को लौटाया और डिब्बा खोला तो देखा कि संदेश की पर्तें बिछी हैं।

वह चंद्रमोहन की ओर देखने लगी। काला गर्म सूट चंद्रमोहन की गोरी देह पर जच रहा था। ऊपर से नीचे तक उसे निहारती हुई बोली, "आज तो खूब जच रहे हो, इस सूट में तो अफसर की तरह लग रहे हो !"

"वाकई ?"

"और क्या ?"

"मुंह पर कोई काला टीका लगा दो ?"

"यही तो कहने जा रही थी, लेकिन अब तो घर जाओगे, वहां तो केवल मां है। बाहर जाना होता तो जरूर काला टीका लगा देती, पर गए कहां थे ?"

"सिविल लाइन।"

"ओह, तो आज संदेश ले चलने का मूड कैसे हो आया ?" दीपा डिब्बा लिए हुए पीरू बाबू के कमरे की ओर बढ़ी।

पिता के आगे संदेश का डिब्बा बढ़ाती हुई बोली, "बाबा, संदेश, गंगाजल लाए हैं।"

"आज क्या बात है ! ये तो मेरे मन की मिठाई है—आज क्या बात है बेटा !"

"बात कुछ नहीं बाबा, ऐसे ही चला गया था घूमने, ताजा संदेश दिख गया, खरीद लाया।"

"पर ये तो चीनी का है, गुड़वाला नहीं मिला ?"

"लाया हूं, नीचे की पर्तें गुड़ के ही संदेशों की तो है।"

प्रसन्न होकर पीरू बाबू ने दो-तीन संदेश खाए। लगभग दस मिनट बैठने के बाद चंद्रमोहन बोला, "कल शाम को हमने दो-चार मित्रों को

चाय पर बुलाया है। मां कह रही थी कि सभी लोगों का भोजन कल वहीं होगा और बनाना दीपा को होगा—तो क्या तुम कल नौ बजे तक आ जाओगी ? बाबा इत्मीनान से नहा-धोकर आते रहेंगे।"

"हां-हां, क्यों नहीं ?" पीरू बाबू ने अपनी स्वीकृति दे दी।

चंद्रमोहन चला आया।

इसके जाते ही बगल वाले घर का एक लड़का चिट्ठी लेकर आया। बोला, "डाकिया दिन में ही आया था, आप लोग थे नहीं और चिट्ठी रजिस्टर्ड थी, दीपा जीजी के नाम थी —ए० जी० आफिस की मुहर लगी थी इसलिए मैंने ले लिया।

उत्सुक होकर दीपा ने पत्र खोला, ए० जी० आफिस में नियुक्ति का पत्र था। दीपा ने बाप के पांव छुए और चिट्ठी उनके आगे रखती हुई बोली, "नियुक्ति-पत्र है बाबा !"

"ओ भगवान !" लेटे हुए पीरू बाबू उठकर बैठ गए और देर तक दो-तीन बार उस टाइप किए पत्र को पढते रहे, फिर लिफाफा मे बंद करते हुए बोले, "बड़ी लंबी बांह है तेरी प्रभु ! अभी-अभी तो गंगाजल गया है, सर्दी इतनी है कि हिम्मत नही पडती, वर्ना अभी जाकर उसे बता आता, कितना लच्छन है इस लडके मे !"

उस रात दीपा को नींद नही आई।

दूसरे दिन सुबह दीपा ने अपने रूखे बालों को सवारा। आंखों पर आइब्रो पेंसिल चलाई और ललाट पर उसी पेंसिल से एक छोटा-सा टीका बना लिया। सरल, गोरे चेहरे की कांति निखर आई। दुबली-पतली कांतिमयी देह, कलाकार बाप के पीछे चल पड़ी। ठीक नौ बजे जंजीर खटखटाई। मां ने द्वार खोला।

पीरू बाबू ने बेटी की ओर देखा। दीपा आशय समझ गई। वह मां के पांवों पर झुकी, "अरे ये क्या, मैं बेटियों को पैर छूने नहीं देती।"

"लेकिन आज न रोकिए, मां के पैर छुए बिना संतान का प्रणाम पूरा नहीं होता।"

"लेकिन आज बात क्या है ?" दीपा के सिर पर हाथ फेरती हुई मां बोली।

तो दीपा उसे एकटक निहारती ही रह गई।

"पकड़ो तो।"

"है क्या?"

"प्रसाद!"

दीपा ने डिब्बे को सिर से लगाया, रूमाल खोल चंद्रमोहन को लौटाया और डिब्बा खोला तो देखा कि संदेश की पर्तें बिछी है।

वह चद्रमोहन की ओर देखने लगी। काला गर्म सूट चंद्रमोहन की गोरी देह पर जच रहा था। ऊपर से नीचे तक उसे निहारती हुई बोली, "आज तो खूब जंच रहे हो, इस सूट में तो अफसर की तरह लग रहे हो!"

"वाकई?"

"और क्या?"

"मुह पर कोई काला टीका लगा दो?"

"यही तो कहने जा रही थी, लेकिन अब तो घर जाओगे, वहां तो केवल मां है। बाहर जाना होता तो जरूर काला टीका लगा देती, पर गए कहा थे?"

"सिविल लाइन।"

"ओह, तो आज संदेश ले चलने का मूड कैसे हो आया?" दीपा डिब्बा लिए हुए पीरू बाबू के कमरे की ओर बढी।

पिता के आगे संदेश का डिब्बा बढ़ाती हुई बोली, "बाबा, संदेश, गंगाजल लाए हैं।"

"आज क्या बात है! ये तो मेरे मन की मिठाई है—आज क्या बात है बेटा!"

"बात कुछ नही बाबा, ऐसे ही चला गया था घूमने, ताजा संदेश दिख गया, खरीद लाया।"

"पर ये तो चीनी का है, गुडवाला नही मिला?"

"लाया हूं, नीचे की पर्त गुड़ के ही संदेशों की तो है।"

प्रसन्न होकर पीरू बाबू ने दो-तीन संदेश खाए। लगभग दस मिनट बैठने के बाद चद्रमोहन बोला, "कल शाम को हमने दो-चार मित्रों को

चाय पर बुलाया है। मां कह रही थी कि सभी लोगों का भोजन कल वहीं होगा और बनाना दीपा को होगा—तो क्या तुम कल नौ बजे तक आ जाओगी ? बाबा इत्मीनान से नहा-धोकर आते रहेंगे।"

"हां-हां, क्यों नहीं ?" पीरू बाबू ने अपनी स्वीकृति दे दी।

चंद्रमोहन चला आया।

इसके जाते ही बगल वाले घर का एक लडका चिट्ठी लेकर आया। बोला, "डाकिया दिन में ही आया था, आप लोग थे नहीं और चिट्ठी रजिस्टर्ड थी, दीपा जीजी के नाम थी—ए० जी० आफिस की मुहर लगी थी इसलिए मैंने ले लिया।

उत्सुक होकर दीपा ने पत्र खोला, ए० जी० आफिस में नियुक्ति का पत्र था। दीपा ने बाप के पांव छुए और चिट्ठी उनके आगे रखती हुई बोली, "नियुक्ति-पत्र है बाबा !"

"ओ भगवान !" लेटे हुए पीरू बाबू उठकर बैठ गए और देर तक दो-तीन बार उस टाइप किए पत्र को पढ़ते रहे, फिर लिफाफा में बंद करते हुए बोले, "बड़ी लंबी बांह है तेरी प्रभु ! अभी-अभी तो गंगाजल गया है, सर्दी इतनी है कि हिम्मत नहीं पडती, वर्ना अभी जाकर उसे बता आता, कितना लच्छन है इस लडके में !"

उस रात दीपा को नींद नहीं आई।

दूसरे दिन सुबह दीपा ने अपने रूखे बालों को संवारा। आंखों पर आइब्रो पेंसिल चलाई और ललाट पर उसी पेंसिल से एक छोटा-सा टीका बना लिया। सरल, गोरे चेहरे की कांति निखर आई। दुबली-पतली कांतिमयी देह, कलाकार बाप के पीछे चल पड़ी। ठीक नौ बजे जंजीर खटखटाई। मां ने द्वार खोला।

पीरू बाबू ने बेटी की ओर देखा। दीपा आशय समझ गई। वह मां के पांवों पर झुकी, "अरे ये क्या, मैं बेटियों को पैर छूने नहीं देती।"

"लेकिन आज न रोकिए, मां के पैर छुए बिना संतान का प्रणाम पूरा नहीं होता।"

"लेकिन आज बात क्या है ?" दीपा के सिर पर हाथ फेरती हुई मां बोली।

"कल रात को दीपा की नियुक्ति का पत्र मिला ।"

"लेकिन चंद्रमोहन तो रात को आपके यहा गया था, उसने तो वताया नही ।

"हा, उसके चले आने के बाद ही वगल के घर का लड़का लाया था । डाकिया उसे ही देकर चला गया था ।"

"ये तो वडी खुशी की वात है ।"

तभी चंद्रमोहन वाहर से आया । मां वोली, "सुना तुमने ?"

"तुम्हारे दफ्तर की नौकरी की चिट्ठी दीपा के लिए भी आ गई ।" दीपा ने लिफाफा चंद्रमोहन की ओर वढ़ाया ।

"कल रात को पड़ोस से चिट्ठी मिली—तुम्हारे चले आने के वाद ।"

जेव से दस रुपये का नोट निकाल चंद्रमोहन की ओर वढाते हुए पीरू वावू वोले, "जाओ वेटा, मिठाई तो लेते आओ !"

"हां, मिठाई का अवसर तो आज दोनो के लिए है ।"

"मतलव नही समझा ।" पीरू वावू बोले ।

"कल इसने आप लोगों को वताया नही क्या ? मुंसफी मे ले लिया गया ।"

"तो ये कारण है, इसके संदेश ले आने का ! लेकिन इसने कुछ कहा ही नहीं ।"

"इसकी यही तो आदत है घोषाल वावू, अपनी खुशी का कारण जल्दी किसी को वताता नही । हमने तो कह दिया था कि बता जरूर देना, पर अभी तक इसका लड़कपन गया नही । दूसरो को चौंकाने मे इसे सुख मिलता है । कल के ही अखवार में तो नतीजा निकला है ।"

"हे ईश्वर, तुम्हें लाख-लाख धन्यवाद ।" पीरू वावू ने आसमान की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा, "अखवार तो लाओ, मैं भी तो अपने नेत्रो से देख लू ।"

चंद्रमोहन ने पीरू वावू के हाथ में अंग्रेजी का अखवार थमा दिया, उस पन्ने को ऊपर करके जिसमे परीक्षाफल निकला था । रोल नंबर देख, चंद्रमोहन के सिर पर हाथ फेरते हुए वोले, "तुम जीवन में सदा

सुखी रहोगे बेटा, अच्छे कर्मों का फल भगवान देता ही है। पुण्यमयी का आशीर्वाद फलता ही है। लड़की ब्याह कर अपने घर चली गई, बेटा एक अच्छी नौकरी मे लग गया।"

तभी सिनेट हाल की घड़ी ने टन-टन करके दस बजाए। पीरू बाबू नोट चंद्रमोहन को देते हुए बोले, "गंगाजल, बेटा बाहर जाना तो छेने की मिठाइया लेते आना, सांझ को ही सही, अपनी सुविधानुसार जाना। और मैं घटे-भर के लिए कर्नलगंज जा रहा हूं। दो-एक मित्रों मे बहुत दिनों से देखा-देखी नही हुई।"

"मेरे घर भी तो मुह मीठा कर लें घोषाल बाबू, एक कप चाय तो पी लें।"

"अच्छा, अच्छा, आपकी आज्ञा तो सिर-माथे पर।" पीरू बाबू झट बैठ गए।

"बेटी, चाय बनाओ।"

दीपा चाय बनाने लगी। मां ने मिठाइयों का डिब्बा दीपा के आगे रख दिया। अपनी पसद से बाबा के लिए मिठाइयां निकालो।

दीपा खोए की दो मिठाइयां पिता के लिए निकालकर डिब्बा बंद करने लगी तो मां ने टोका, "और हम लोगों के लिए ?"

"उसकी जल्दी तो है नही, बाबा चले जाएं तो हम लोग इत्मीनान मे चाय पीएंगे मा।"

"हां, हा, ये ठीक है।"

चाय पीकर पीरू बाबू ने अपने कंधे पर ऊनी चादर रखी, कुर्ते को झाड़ा और दीवार से टिकाई चादी वाली मूठ की छड़ी उठा, पंप शू से खट्-खट् आवाज करते हुए बाहर निकल गए। मां मिठाइयों की ओर मुखातिब हुई, "अब आओ, तुम लोग खाओ।" डिब्बे मे से एक मिठाई उसने दीपा को खिलाई, एक चंद्रमोहन को खिलाकर बोली, "दीपा, और मिठाइया प्लेट मे निकालो, और खाओ।"

एक मिठाई अपने हाथ में ले दीपा के मुंह की ओर बढाते हुए चंद्र-मोहन बोला, "मेरे मुसफी में आने की खुशी में एक मिठाई मेरे हाथ से भी खा लो।" उसने दीपा के होठों से मिठाई छुआ दी।

"अरे रे !" कहती हुई दीपा ने चंद्रमोहन की कलाई पकड ली।
"इसकी इच्छा है तो इसके हाथ मे भी खा लो वेटी !"
मिठाई खाकर दीपा बोली, "तो मेरी नौकरी की मिठाई मां ?"
"तू भी खिला दे।"
दीपा ने चद्रमोहन के मुंह मे मिठाई खिला दी।
तब वरामदे के उस धूप के टुकड़े में इतनी गरमाई आ गई, कि दीपा के देह के रोम-रोम पुलकित हो गए, भीतर से दीपा खिल गई।

चौदह

आज से दीपा को नौकरी शुरू करनी थी, दफ्तर जाना था, यह नए ढंग का सवेरा था। मन मे अजीब तरह की बातें उठ रही थी। वह चद्रमोहन की प्रतीक्षा व्यग्रता मे कर रही थी, साढे आठ वजे सुवह ही रसोई तैयार कर, वावा को खिला-पिला के, खुद भी खा-पीकर नौ वजे कपड़े-लत्ते पहनकर, पीरू वावू के सामने जा खड़ी हुई, "वावा, ठीक है ?"
पीरू वावू हंसे, "पगली, क्या वंवई-दिल्ली जा रही है, भगवान की कृपा है, घर में नौकरी मिल गई। दफ्तर कोई खास वात है ? जैसे घर से निकलकर सिविल लाइन्स आना-जाना।"
तभी चंद्रमोहन सायकिल लिए आ गया। दीपा उसकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। दौड़कर वाहर आई, "अरे ! सायकिल पर ले चलोगे क्या ?"

"ओह," चंद्रमोहन अपनी सहज मुस्कान मे बोला, "यह तो मुझे याद ही नही रही। सायकिल यहीं रख देता हूं, परेशानी की क्या बात है? तुम इतनी घबराई हुई क्यों हो, लगता है जैसे युद्ध मे जा रही हो।"

"बेशक, बेशक गंगाजल, तुमने खूब पकड़ा। घंटे-भर से परेशान है, दो बार साड़िया बदल चुकी।" पीरू बाबू मुस्कराये।

चंद्रमोहन भी हंसते हुए बोला, "लाओ, सब कागज-पत्र ठीक कर लिया, फाइल कहा है?"

"ये हैं।" दीपा ने सहज भाव से चंद्रमोहन को फाइल पकड़ा दी।

चंद्रमोहन ने बरामदे मे पडे तख्त पर बैठकर सभी कागज देखे। हाई स्कूल के और बी० ए० के सर्टिफिकेट, दो चरित्र-प्रमाणपत्र, बुलावे की चिट्ठी इत्यादि अच्छी तरह देखकर खड़े हो बोला, "अब चलो।"

"चलो।" दीपा बोली।

"अरे, बाबा का पैर नहीं छुओगी क्या? आज नौकरी पर जा रही हो।"

दीपा लजा गई। पीरू बाबू हंसने लगे, "जाओ, जाओ बेटी, भगवान सब मगल करेगा, सभी कुछ मगलमय होगा, तुम्हारे साथ गगाजल है!"

चंद्रमोहन के पीछे दीपा घर से निकल गई। बाहर सड़क पर युनिवर्सिटी के फाटक के पास रिक्शा मिला, वे दोनों बैठ गए।

"सुनो।" चद्रमोहन की बांह पकडती हुई दीपा बोली।

"क्या है?"

"ये कैसे होगा?"

"क्या?"

"सुनो, आज मुझको अकेली छोडकर मत चले जाना।"

"क्यों, आखिर आज कौन-सी खास बात है? दफ्तर मे नौकरी शुरू करने जा रही हो, तुम्हारी घबराहट तो देखते बनती है। वहा सैकड़ों औरतें हैं। पहला काम तो तुम्हे औरत से ही पड़ेगा। तुम्हारे

सभी कागज-पत्रों की जांच पहले वही करेगी।"

"वहा आदमी लोग नही होंगे क्या ?"

"होंगे।"

"तब !"

"तब क्या, आखिर वह लडकी भी तो पुरुषों के बीच बैठकर काम करती है।"

"ओह, ओह ! तुम भी मेरे मन की बात नही समझें ?"

"परेशानी क्या है ?"

"कुछ नही, तुम बस मेरे साथ-साथ रहना, आज-भर।"

चद्रमोहन ने दीपा की आखों मे देखा, मुस्कराया और बोला, "अच्छा रहूगा।"

दीपा आश्वस्त हुई। रिक्शा चल रहा था। लेकिन कई बार देखी हुई इस पुरानी राह को दीपा आज नए ढंग से देख रही थी। रास्ते मे भीड का ताता लगा था। सभी दफ्तरों को भागते हुए, सायकिल, रिक्शा, स्कूटर और कारो मे। मनमोहन पार्क तक युनिवर्सिटी पढने जानेवालों के कारण सड़क पर भीड़। मनमोहन पार्क से आगे हाई कोर्ट, ए० जी० ऑफिस, बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, इंटरमीडिएट बोर्ड, सी० डी० ए० पेंशन को जाने वाले लोगों का ताता लगा हुआ था। पौने दस बज रहे थे, दीपा इस भीड को उत्सुक हो देख रही थी। थार्नहिल रोड और कानपुर रोड की क्रासिंग को पार कर जब रिक्शा आगे बढा तो सामने सायकिल स्कूटर पर उसी भीड की बहुत लंबी कतार दूर तक दिखाई पडी।

"अभी कितनी दूर है ?"

"बस आ गए। एक-दो दिनों की तो बात है, जहां आदत पड़ी कि इस मेले में दूसरे की तरह तुम भी खो जाओगी।"

"खो जाओगी, मतलब ?"

"जैसे बूद समुद्र मे खो जाता है, इस भीड का एक अग हो जाओगी, और मशीन की तरह हर रोज सुबह-शाम, इसी सड़क पर इसी भीड़ मे आती-जाती दिखाई पड़ोगी। एक दिन तुम भी छंट जाओगी, यही

जिंदगी का मेला है दीपा—जो हमेशा रहता है, बस हमी नही रहेंगे।"

ठीक दस बजे, रिक्शा महर्षि दयानंद मार्ग वाले फाटक पर रुका। चद्रमोहन के साथ कदम मिलाती हुई दीपा, चारों ओर देखती हुई लिफ्ट वाली इमारत मे दाखिल हो गई। चद्रमोहन प्रशासन अनुभाग मे, जहां पहले अपने प्रमाण-पत्र इत्यादि जमा करने थे, दीपा को विठाकर, अपने सेक्शन मे हस्ताक्षर करने के लिए चला गया। दीपा कुछ घबराई तो चंद्रमोहन ने उसे समझाया कि वह दस मिनटो मे वापस आ रहा है।

दीपा मन मार के बैठ गई।

"दस मिनटो के भीतर चद्रमोहन वापस लौट आया। उस ग्रुप की लड़की भी अपनी ड्यूटी पर आ गई थी। चद्रमोहन ने देखा, दीपा उससे बतिया रही थी, "वेरी गुड, देखा तुमने, मैंने इनके बारे मे ठीक कहा था न!"

"क्यो, क्या हुआ?" उस लड़की ने पूछा।

"बात ये है कि इनको आज 'ज्वायन' करना है। जाहिर है, नयी होने के कारण इनको कुछ घबराहट होगी।"

"नही तो, इन पर तो कोई घबराहट मैंने नही देखी, मुझसे पांच मिनट मे बातें कर रही हैं।"

"खूब, यहा कितनी देर लगेगी?"

"कम-से-कम दो घटे, लेकिन आप अपने सेक्शन जाइए, ये मेरे पास बैठेंगी, इनका काम मैं पहले थोड़े करूंगी, पास बिठाकर कुछ देर बात करूंगी, क्यों दीपा जी?"

"हूं।"

"भई वाह! घर पर तुम तो इतना घबरा रही थी।"

"कहां घबरा रही थी?" दीपा बोली।

"वेरी गुड। तब तो मैं चला। दो घटे बाद आऊंगा।"

"हा, हा, आप जाइए, मैं तो इनसे वायलिन सुनूगी!"

"क्या?" चंद्रमोहन बोला।

"जाइए, जाइए, मैं इनको जानती हूं और आपको भी। ये बहुत

अच्छा वायलिन बजाती हैं ! और आप सितार !"

"बहुत अच्छा नही !"

"जब सुना ही नही तो कैसे कहूं ? इनका वायलिन तो सुना है।"

"कहा, कब ?"

"फिर बताऊगी, लेकिन अब आप जाइए, ऐंड लीव अस एलोन।'

"चद्रमोहन हसते हुए चला आया।

लड़की दीपा से फिर बातें करने लगी।

चंद्रमोहन लगभग दो घटे के बाद, वापस आया—पौने एक बजे। देखा, दीपा इत्मीनान से उस लड़की से बातें कर रही थी, चंद्रमोहन जैसे ही पास गया, दीपा सजग होकर कुर्सी से उठ खडी हो गई—लडकी दीपा की कलाई पकड के कुर्सी पर बिठाते हुए, चंद्रमोहन से बोली, "चंद्रमोहन जी, आप निश्चित होके जाइए। दीपा को अभी छुट्टी नही मिलेगी। आज ये मेरे साथ चाय पियेंगी। आज ज्वायन करने वाले महज पांच थे। सबको निपटा दिया। अब आज मेरे पास कोई भी काम नही है, मैं बोर होती। आप लंच के बाद आइए। लगभग तीन बजे, और तब चाहे तो इनको लेकर घर चले जाइएगा।"

"क्यों दीपा ?"

"हा, अभी मैं इनके साथ पूरे दफ्तर का एक चक्कर लगाऊंगी। देख तो लूं कि यह अजायबघर है कैसा ?"

"जिसमे तुम्हे कैद होना है," चंद्रमोहन हंसते हुए बोला, "बाई द वे, इनकी पोस्टिंग तो कल होगी ?"

"हां, पोस्टिग तो कल ही होगी।"

"कौन-से कोआर्डिनेशन मे भेजे जाने की संभावना है ?"

"फंड से बहुत मांग है, पर इनको टी० ए० डी० में भिजवाने की कोशिश करूंगी, आप भी तो टी० ए० डी० में हैं ?"

"हा !"

"इनका रहना-न रहना अब बराबर है ?" दीपा ने कहा।

"क्यो ?"

"मुसफी मे आ गए हैं, किसी भी दिन यहा से छोड़कर चले

जाएंगे।"

"ये तो बहुत अच्छी बात है, भाग्यवान लोग ही यहां से नौकरी छोड़कर जाते हैं। चंद्रमोहन जी मेरी बधाई लें।"

"बधाई के लिए धन्यवाद, अब मैं चलता हूं, पर सुनिए, हो सके तो चाय के साथ समोसा या मिर्च-मसाले वाली चीजों से इनको बचाइएगा, डाक्टर ने रोका है।"

लड़की ने चंद्रमोहन को देखा। फिर दीपा को देखकर बोली, "अच्छी बात है, आप जाएं।"

चंद्रमोहन चला गया तो लड़की बोली, "दीपा, तुम भाग्यवान हो।"

"क्यों ?" दीपा ने पूछा।

"इसका भी उत्तर मुझसे चाहोगी, आओ चलो, चाय पीएं।"

दीपा उठ गई।

दीपा ने नौकरी शुरू कर दी। पीरू बाबू के घर में एक नया जीवन शुरू हो गया। वर्षों की मनहूसियत एकाएक खत्म हो गई। घर के कोने-कोने में ताजगी आ गई, उत्साह भर गया। पीरू बाबू, वर्षों की मानसिक चिंता से एकदम मुक्त हो गए, भीतर-बाहर से प्रसन्न रहने लगे। पहले चंद्रमोहन सायकिल से जाता था। अब दीपा के साथ रिक्शा पर जाने लगा। दीपा घर के बाहर उन्मुक्त वातावरण में निकली तो उसकी जैसे काया ही पलट गई। घर की चारदीवारी में कैद रहने वाली लड़की के लिए बाहर का वातावरण वरदान साबित हुआ। उसके लिए सबसे अधिक खुशी और आकर्षण की बात थी चंद्रमोहन का सान्निध्य। उसका साथ ही सर्वोपरि था। उसी के लिए वह हर घड़ी आतुर रहती। दफ्तर पहुंच कर दोनों अपने-अपने सेक्शन चले जाते, फिर दीपा शाम का इंतजार करती रहती कि, कब दफ्तर छूटे, कब साथ-साथ घर जाने को मिले। कुछ दिनों के बाद वह बीच-बीच में एक-आध बार चंद्रमोहन के सेक्शन में भी हो आती। चंद्रमोहन के इस सान्निध्य से दीपा देह-मन दोनों से स्वस्थ रहने लगी।

ऐसा बहुत दिनों नहीं चल पाया। जनवरी बीतते-बीतते चंद्रमोहन के पास उत्तर प्रदेश सेवा आयोग से नियुक्ति-पत्र आ गया। दफ्तर में

ही रजिस्टर्ड पत्र आया। उसे दस दिनों के भीतर प्रतापगढ़ में जाकर कार्यभार संभाल लेना था। सांझ को जब घर के लिए दीपा के साथ रिक्शा पर बैठा और बात करते हुए महर्षि दयानंद मार्ग और कानपुर रोड की क्रासिंग पार गया तो मटमैले रंग का मुडा हुआ लिफाफा जो कोट की सामने वाली जेब मे रखा था, उंगली दिखाती हुई दीपा ने पूछा, "ये क्या है ?"

बिना बोले चंद्रमोहन ने लिफाफा दीपा को थमा दिया। सरकारी टिकट लगे हुए रजिस्टर्ड पत्र को हाथ में ले दीपा बोली, "लेकिन है क्या ?"

"पढ लो ?" चंद्रमोहन बोला।

दीपा ने सफेद, टाइप किया कागज पढ़ा और चंद्रमोहन की ओर देखती हुई बोली, "ये आया कब ?"

"आज दिन में मिला।"

"तुमने बताया नही।"

"सोचा था घर पर बाबा के सामने ही बताता।"

"क्यों ?"

"तुम्हें 'सरप्राइज्ड' करने के लिए।"

हल्की-सी गंभीर मुस्कान के साथ बोली, "तुम्हे तो एक-न-एक दिन अपनी नयी पोस्ट के लिए जाना ही था। यह आकस्मिक नही है, 'सरप्राइज्ड' तो तुम्हारा मेरे पास आना था, क्योकि मेरे जैसी नसीब वाली के लिए तुम सचमुच 'सरप्राइज' हो, और असली 'सरप्राइज' तो तब होगा जब मैं तुम्हे···।" कहते-कहते दीपा रुक गई।

"रुक क्यो गई, बात तो पूरी करो।" चंद्रमोहन व्यंग भरी हंसी में बोला।

"बस इतने ही का तो दुख रहता है।"

"कि···?"

"कि तुम कभी भी मेरी बात को गंभीरता से नही सुनते, इस कान से सुनोगे, उस कान से निकाल दोगे, हर बात मे हंसी, हर बात मे किल्लोल !"

चंद्रमोहन फिर हंसा तो दीपा भी खीज भरी हंसी मे बोली, "हुई न वही बात, हंसी मे हंसी, बंदर की जान जाए, बच्चे का खिलौना ।"

"यही तुम्हारा स्क्रू कुछ टाइट है । जरूरत से अधिक जिंदगी को कस के पकड़ती हो, जो तुम्हारी परेशानियो का कारण है। जिंदगी को जल की तरह बहने दो, राह मे रोक आए, अवरोध आए तो उसे हटाकर बढ़ने की कोशिश करो, खुद अपने मे ही व्यवधान मत डालो, पानी को सहज गति से बहने दो । और तुम हो कि तनिक-सा रोक आया तो बस, उसे आफत समझकर सोचना शुरू कर दिया ।"

"एक बात पूछू ?" दीपा ने चंद्रमोहन की कलाई पकड ली ।

"पूछो न !"

"यह सब मुझे बनाने वाला कौन था ?"

चंद्रमोहन निरुत्तर हो गया, वह दीपा की उस सहज भावभंगिमा वाले मुह को देखता ही रह गया ?

"और अब तुम अलग हो रहे हो ?" दीपा ही बोली ।

"नही, नही दीपा, मैं अलग नही हो रहा हूं, तुमसे अलग होने का सवाल अब नही आएगा । पर एक बात सुनो, किसी के भी जीवन मे चाही हुई सभी बातें पूरी नहीं होती, इसलिए हर किसी को अपने पर भरोसा रखना चाहिए, अकेले भी चलने की शक्ति और क्षमता रखनी चाहिए, क्योकि अपनी ही बुद्धि और विवेक से हम पार उतरते है ।"

"फिर एक से दो की बात शास्त्र मे भी अनिवार्य क्यो बताई गई है ?" दीपा ने पूछा ।

"इस उम्र मे इस देह की यही माग होती है ।"

"तुम कहोगे मैं उल्टी बात कह रही हूं, पर वही देह इस बुद्धि को संचालित और संतुलित रखती है ।"

"ठीक कहती हो, पर कुछ समय के लिए, अंततोगत्वा संचालित देह होती है बुद्धि नही ।"

देह की माग के आगे बुद्धि अंधी हो जाती है, हम दिग्भ्रमित हो जाते हैं । भूखा जात-पांत देखता है ? नीद ठांव-कुठाव देखती है ? ससार के आधे से अधिक अपराधों की जड़ में सेक्स रहता है, यह मेरा

स्पष्ट मत है—यह तुमसे कहने मे मुझे संकोच नही है ।"

चंद्रमोहन दीपा की आज की बात पर थोड़ा चकित हो गया। दीपा आज पहली बार इतना खुलकर बोल रही थी। दीपा ने फिर पूछा, "प्रतापगढ़ यहा से कितनी दूर है ?"

"अरे, ये रहा प्रतापगढ, सुबह की गाड़ी से जाओ, दो घंटों का सफर, फिर शाम को लौट आओ ।"

"तुम कब जाओगे ?"

"कल यहां मे मुक्त होने के लिए प्रार्थना-पत्र दूंगा । तीन-चार दिन तो यहां से मुक्त होने मे लगेगे । फिर तीन-चार दिनों यहां आराम से रहूंगा । एक दिन पहले यहा मे जाऊंगा ।"

"इतना ढेर-सा सामान लेकर अकेले चले जाओगे ?"

"सामान-वामान अभी नही ले जाऊंगा, केवल एक अटैची और बिस्तर । अभी तो वहा जाकर 'ज्वायन' करके चला आऊंगा । क्योकि दो दिनों बाद दो दिनों की छुट्टिया पड रही हैं—पहले वहां रहने की तो व्यवस्था हो । फिर आगे देखा जाएगा ।"

"और अम्मा !"

"अम्मा मेरे साथ जाएगी नही, यही महीने-भर रहेगी । एक माह सगम स्नान करके जाएंगी । मैं भी हर शनिवार की रात को यहां आता रहूंगा । वहां भी तो मकान-वकान ठीक करना होगा ।"

"तुम लोगों को तो मकान की कठिनाई तो नही पड़नी चाहिए क्योकि 'गजटेड' अफसरों को तो पहले से मकान एलाट रहते हैं ।"

"असलियत तो वहा जाने पर पता चलेगी ?"

"वहां कितने साल रहना पड़ेगा ।"

"कम-से-कम दो-तीन साल । उसके बाद जहां की बदली हो जाए।"

घर आ गया था । दोनो रिक्शा से उतर पड़े । दीपा हाथ मे लिफाफा लिए हुए तेजी से अहाते मे दाखिल हो गई । पीरू बाबू रोज की तरह बरामदे में तख्त पर बैठे हुए बेटी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे । जाते ही दीपा ने लिफाफा पिता के हाथों में थमा दिया ।

"यह क्या है ?" पीरू बाबू ने पूछा ।

"गंगाजल का एप्वाइंटमेंट लेटर। प्रतापगढ़ में पोस्टिंग हुई है।"

"गुड, वेरी गुड।" पीछे खड़े चंद्रमोहन ने पीरू बाबू का पैर छू प्रणाम किया। पीरू बाबू ने चद्रमोहन के सिर पर हाथ फेरते हुए उसे बगल मे बिठा लिया, "प्रतापगढ तो बहुत समीप है। कब ज्वायन करना है ?"

"अगले मगल को।"

"बहुत अच्छा।"

चद्रमोहन उठने लगा तो पीरू बाबू बोले, "कहां ?"

"अभी घर जाऊंगा। वहा से चौक जाऊंगा, कुछ आवश्यक काम है।"

"लौटोगे कब तक ?"

"लगभग नौ बजे तक।"

चद्रमोहन चला गया।

दीपा कमरे मे कपडे बदलती हुई धीरे-धीरे गुनगुनाती रही—'पिया ऐसो मन में समाय गयो रे···हो···रे···पिया···'

मगलवार की सुबह वह स्टेशन जाने के लिए तैयार हो गया। गाड़ी नौ बजे दिन को जाती थी। प्रयाग स्टेशन से ही बैठना था। पीरू बाबू, दीपा और चंद्रमोहन की मां तीनों स्टेशन गए। गाडी समय से आ गई। चंद्रमोहन ने झुककर पहले मां के पैर छुए फिर पीरू बाबू के। पीरू बाबू के पैर छू जब वह दोनों के सामने खडा हुआ था कि दीपा चंद्रमोहन के पैरों पर झुक गई।

"अरे रे. यह क्या ?" चंद्रमोहन उसे रोकते हुए बोले।

"रोकता क्या है, पैर छूने दे, यह उसका धर्म है, तुझसे छोटी भी है।" चद्रमोहन की मां बोल पडी।

"अच्छा भाई, तब लो—छू लो।" चंद्रमोहन सहज भाव से बोलते हुए खड़ा हो गया।

पीरू बाबू मुस्कराते हुए बोले, "इसके स्वभाव की यही निष्कपटता

और निश्छलता तो मन को बांध लेती है। मैं तो भूल चला था कि मेरे कोई बेटा नहीं है। बोल-बतिया, हस-खेल, घर को मनसायन करके आप दूसरी जगह चल पड़ा···। ठीक ही है। निर्मल जल गतिमान होता ही है, शीतल, सुखद, पावन गंगाजल !"

ट्रेन चली गई।

पीरू बाबू, चंद्रमोहन की मा और दीपा, पैदल ही बतियाते हुए घर लौट आए।

चौदह

स्टेशन से लौटने के बाद मन उदास हो गया। किंतु दफ्तर तो जाना ही था। जल्दी-जल्दी दीपा ने कपडे बदले और लडकियों के होस्टल के सामने वाली सड़क पर रिक्शा के लिए आ खड़ी हुई। खाना खाने का न तो समय था, न मन था। डिब्बे में बंद करके साथ ले लिया। आज रिक्शा पर दफ्तर के लिए पहली बार अकेली बैठी। विश्वविद्यालय तथा दफ्तर को जाने वाले लोगों की भीड़ शुरू हो गई। सभी तेजी से आगे निकल जाने को उतावले। बायीं-दायीं दोनों पटरियों पर पैदल, सायकिल, स्कूटरों पर भागते लोगों की गहरी भीड़, तनिक-सी असावधानी हुई कि दुर्घटना। कटरा के चौराहे पर निकास कम होने के कारण, भीड की गति मंद पड़ जाती है। साइंस कालेज पार कर, जब मनमोहन पार्क का चौराहा बीत गया तब कुछ राहत मिली। खुली-

चौड़ी सड़क, उन्मुक्त वातावरण, लेकिन अपने मे खोई हुई खामोश दीपा सोच रही थी कि प्रतापगढ कैसा शहर होगा···? गंगाजल का मन कैसे लगेगा ?

आज दफ्तर की चहल-पहल मे भी मन नही लगा। हाजिरी बनाने के बाद चुपचाप अपनी कुर्सी पर बैठकर काम करती रही। मन ऊबने लगा तो ग्यारह बजे उठी, और दूसरे सेक्शन की दो लडकियो के पास जा बैठी। ठड बढ गई थी, वे लडकिया भी दीपा को लेकर बाहर धूप मे आ गई और दूकान से चाय मगा पीने लगी।

किसी तरह वह दिन बीता। पाच बजा। घर जाने को लोगों की भीड निकली। पैदल, सायकिल, रिक्शे, स्कूटरो का तांता फिर शुरू हुआ। दीपा रिक्त मन से रिक्शे पर चुपचाप बैठ गई, रिक्शा चल पड़ा, लेकिन कब मोड़ बीते, कटरा बीता, और घर आ गया उसे पता ही नहीं चला। घर के पास वाली निश्चित जगह पर जब रिक्शा रुका तब उसे लगा कि घर आ गया और उसे उतरना है। वह उतर पडी।

फाटक खोल अहाते मे दाखिल हुई, तो देखा—बाबा बरामदे की चौकी पर प्रसन्न मन, प्रतीक्षा मे बैठे हैं।

"आ गई बेटी ?" पीरू बाबू ने मुस्कराते हुए पूछा।

"हां बाबा ! आज प्रसन्न दिख रहे हो, बात क्या है ?"

"बात कुछ नहीं है बेटी, हो भी क्या सकती है, आज गंगाजल की माता जी आई थी, लगभग घटे-भर बैठी रहीं। अभी पाच मिनट हुए, गई हैं। हालांकि मैंने कहा कि कुछ देर और रुकिए, दीपा आ ही रही होगी पर बोली, "मुझे दवा खानी है, दीपा से बोल दीजिएगा।" दीपा ने बाबा का उत्तर ध्यान से सुना, वह बोली कुछ नहीं, कपडे बदलने के लिए अपने कमरे मे चली गई। कपड़े बदले, दो कप चाय बनाकर लाई। एक पिता को दिया, एक खुद लेकर, ऊंचे बरामदे की फर्श पर बैठ, पैर लटका, बाहर देखती हुई चाय पीने लगी। पीरू बाबू बेटी की मनोदशा भापते रहे, पर बोले कुछ नही। आधी चाय पी चुकी, तो मन हुआ वायलिन बजाने का, लेकिन ध्यान आया कि अभी भोजन बनाना है। मन मारकर रह गई, पूछा, "बाबा, आज खाना क्या बनेगा ?"

"चाय समाप्त कर लो तो बताता हूं. वैसे आज भूख लग नहीं रही है। सोचा था, दफ्तर से वापसी में तुम कुछ लेती आओगी तो वही खा लेंगे।"

"कोई विशेष वस्तु खाने का मन हो तो अब जाकर ले आऊं ?"

"नहीं, नहीं, मैंने वैसे ही कहा, जलपान ही मेरे लिए आज की रात पर्याप्त होगा। तुमने आज दिन मे कुछ खाया नही क्या ?"

"हा, आज मन ही नहीं हुआ। काम करने में जी भी नही लगा। मा कुछ कह रही थी ?"

"नहीं, कोई खास बात नहीं, सिवा इसके कि गगाजल के जाने से उन्हें घर मे सूना लग रहा है। अकेली हो गईं न ! इतना व्यावहारिक होती हुई भी ममता और करुणा से भरी हुई हैं। कहने लगी—बाप का सग छूट गया, यह एक बेटा बचा था, उसके भी साथ रहने को भाग्य में नहीं बदा है। लेकिन वश ही क्या है, जहा रहे सुख से रहे। अब तो उसके ही सुख मे अपना सुख है।" बाप की ओर देखती हुई दीपा ने बाकी चाय खत्म की।

"चाय पी लिया ?" पीरू बाबू ने पूछा।

"हा, कुछ मेरे बारे मे भी मा कह रही थी ?"

"पीरू बाबू मुस्कराए, "सबके बारे मे बातें होती रही, तुम क्या परिवार से अलग हो ? मा, मां होती है, संतान का सुख ही सर्वोपरि देखती है। आज मन खुश है। तो बेटी, आज जरा वायलिन सुनाओ, तुमसे वायलिन सुनने को जी चाह रहा है।"

"मेरे मन की बात कैसे जान गए।" दीपा भीतर मे वायलिन निकाल के बोली, "क्या बजाऊं ?"

"तुम्हारे मन की बात मैं जान गया तो मेरे मन की तुम जानो बेटा ?" विनोद-भरे स्वर में पीरू बाबू बोले।

दीपा ने कुछ देर को दोनों आंखें मूंद लीं, फिर राग ललित शुरू किया —वायलिन पर कान लगाए पीरू बाबू दूसरी ओर देखने लगे। वातावरण मे करुणा बिखर गई—कलाकार पिता के मन मे कुछ अधिक करुणा भरने लगी—फरवरी की डूबती साझ में, इस छोटे से घर के आगे लगी

हुई फुलवारी के रजनीगंधा, वेला और बोगन वेलिया को करुणा की
लहरों ने ढक लिया।

महीनों से बिना रियाज किए हुए हाथ वैसे ही नपे-तुले ढंग से चल
रहे थे। देह का सचालन तो मन करता है। कलाकार पिता ने बेटी की
मनोदशा समझी। राग के पूरे उठान पर, वे करुणा मे भर गए।
दीवार से पीठ टेक उन्होंने आखें मूद लीं। फाटक के पास लगी रजनी-
गधा की झाडी के ऊपर से, देखती हुई दीपा अतर्मन में न जाने कहां
खो गई; तन्मयता मे कालबोध जैसे लुप्त हो गया था। भूत, भविष्य
और वर्तमान की बाधा से मुक्त होकर, राग ललित की स्वर-लहरी मे
लवलीन हो गई थी, आकठ डूब गई। ठीक सवा घटे के बाद राग
समाप्त हुआ। वायलिन बगल में रखकर बरामदे के खभे से पीठ टेक
दीपा ने आंखें मूंद लीं।

पीरू बाबू ने बेटी को उस रूप मे देखा तो देखते ही रह गए। बंद
पलकों वाले चेहरे पर करुणा बिखेरे आत्मजा थककर सुस्ता रही थी।
किंतु पीरू बाबू बेटी को निहारते ही रह गए।

दस मिनटो बाद दीपा ने आंखें खोलीं तो देखा—बाबा उसी को
ताक रहे हैं।

"अरे! बडी देर हो गई बाबा, तुमने टोका क्यों नही!"

"थकी हुई बेटी को टोकना उचित नही समझा।"

धीरे से वायलिन उठाकर दीपा जब भीतर जाने लगी तो पीरू बाबू
बोले, "मन छोटा नहीं करते बेटी, ईश्वर की बाह बडी लबी होती है,
उस पर विश्वास करना चाहिए।

दीपा चुपचाप वायलिन रखने के लिए भीतर चली गई।

जाने के बाद पहले इतवार को चंद्रमोहन आ नही सका। मकान
'एलाट' कराने के चक्कर मे डी० एम० से मिलना था। जिले से बाहर
जाने के लिए जिला जज की अनुमति भी नहीं ले सका था। साथ के
पढ़े दो और मुंसिफ मिल गए जिनकी पोस्टिंग पहले से ही वहां हुई थी,

उन लोगों ने चंद्रमोहन को उस दिन खाने पर बुला लिया।

दीपा शनिवार की शाम और रात के ग्यारह बजे तक चंद्रमोहन के आने की प्रतीक्षा करती रही, लेकिन वह नहीं आया। सोचा, सुबह छः बजे की गाड़ी से आए। सुबह सात बजे, आठ बज गए, नौ बज गए, तो दस बजे नहा-धोकर बाबा से बताकर चंद्रमोहन के घर गई। मां पूजा पर से उठी थी। द्वार खोला, दीपा भीतर गई। मां बेहद प्रसन्न हुई और देखते ही बोली, "कल से ही मन उदास था, कल रात को ही आने को कह गया था, पर अभी तक नहीं आया? दिन में कोई और गाडी आती है क्या?"

"नहीं, गाडी तो प्रतापगढ से कोई नहीं आती, बस के बारे में नहीं बता सकती।" दीपा अपनी ही जिज्ञासा छिपाती हुई बोली, "आना होता तो सुबह छः बजे की गाडी से आ जाते। अब दो-चार घंटों के लिए आने से फायदा?"

"हां, लगता है कोई रोक लग गई होगी। इस आपातकालीन *स्थिति में जिला के बाहर जाने के लिए अनुमति तो लेनी पडती है।* हो सकता है, वही न मिल सकी हो।"

"पर आने की आस धराकर न आने से प्रतीक्षा करने वाले की बेचैनी तो जल्दी शांत नहीं होती।"

दीपा के मन की बात जब मां ने कही तो दीपा की आखें झुक गईं, कुछ बोल न सकी।

"खाना-पीना हो गया?" मा ने फिर पूछा।

"बाबा को खिला दिया, अपना रख आई हूं, खाने को जी नहीं कर रहा था, सोचा पहले आपके पास हो आऊं।"

"तो फिर चलो, कुछ हम भी बनाएं।"

"अरे, आपने अभी बनाया भी नहीं, चलिए मैं बनाती हूं, क्या खाएंगी?"

"आज तो बेटी, खिचड़ी खाने की तबीयत है, अगर तुम्हारी इच्छा कुछ और बनाने की हो तो बनाओ।"

"नहीं मा, जो आपकी इच्छा हो वही बनाऊंगी, मैं तो अपनी

इच्छानुसार बनाकर रख आई हूं।"

"लेकिन तुमको भी आज यहीं खाना होगा।"

"खाना ढककर चलने से पहले मुझे भी ऐसा ही लगा था। बाबा, अपने-आप ही बोले थे कि लौटना तो तुम्हारा अब शाम तक ही होगा।"

"तुमने क्या कहा ?"

"कहा कि दूसरे के घर जा रही हूं तो लौटना अपने मन से कैसे होगा।"

उत्तर में मां मुस्कराने लगी और कुछ देर दीपा की आंखों में देखने के बाद अपने दोनों हाथों से उसकी दोनों कनपटियों पर के बाल संवारती हुई बोली, "चल चौके मे, तुझे तो दाल-भात प्रिय है, वही बना।"

"नहीं मां, खिचडी ही बनेगी।"

"नहीं बेटी, वह तो मैंने हंसी की थी। अकेले के लिए क्या अधिक ताम-झाम करना, एक मुट्ठी दाल जल्दी पकती भी तो नहीं। दाल-भात, तरकारी-रोटी बनाओ। फिर हम लोग भी जमकर खाएं।"

दीपा मां के साथ हंसने लगी।

खाते-पीते बारह बज गए तो मां बोली, "अब चलो कुछ देर आराम कर लें। फिर कटरा चलेंगे, कुछ सामान खरीदने। सोचती थी चंद्रमोहन आएगा तो खरीद देगा, पर अब तो तेरी पसद से ही चीजें खरीदूगी। शारदा के लिए कुछ कपड़े खरीदने हैं। विलायत से लौटने वाली है।"

"चलना है तो थोड़ा आराम करके जल्दी चलें। नहीं तो छुट्टी का दिन है, भीड़ बहुत हो जाती है।"

"चल, दो बजे चलेंगे। अभी दो घंटे आराम कर लें, महरी भी आती ही होगी।"

कपड़े-लत्ते खरीदने में पांच बज गए। लौटते समय चंद्रमोहन की मां दीपा को उसके घर छोड़ती आई।

खा-पीकर रात को दीपा बिस्तर पर आ गई तो नींद नही आई। मां के साथ इतनी देर रहने के बाद भी भीतर का सूनापन दूर नहीं

हुआ। उठकर मेज के पास कुर्सी लगाकर पत्र लिखने बैठ गई—

गगाजल !

मा तुम्हें गगाजल कहती है, यह बात जब तुम्हें मैंने बताई थी तो पहले तुम खिलखिलाकर हसे थे, फिर थोडा-सा गभीर होकर बोले थे कि गगाजल का एक दूसरा पहलू भी होता है जो एकदम विनाशकारी है। गगाजल जहां उफनता है उस जगह को ध्वस करके ही रहता है और हटने के बाद वहा की धरती सडन की दुर्गंध में डूब जाती है।

लगता है, इस घर की धरती का भी अब वही हाल होना है। तुम थे, तो सब-कुछ था। लेकिन अब ! अब तो, अंगना यह पर्वत भयो, देहरी भयो विदेश'''। आगे की पंक्ति इसके साथ मत जोड़ लेना, वह शायद अभी दूर की बात है। कम-से-कम मेरे सदर्भ में। कहोगे, कैसी बातें करती हूं। अच्छी-खासी तनख्वाह मिलती है। तन ढंकने को कपडा, और पेट भरने को रोटी का सवाल हल हो गया है। लेकिन इतना ही तो सब-कुछ नही होता। इससे भी बडा एक आवश्यक सवाल हर किसी की देह से जुड़ा रहता है, वह किससे कहूं, उसके लिए किसको याद करूं ? जब तक आफिस में रहती हूं मन बुझा रहता है, लेकिन उसके बाद सब-कुछ खाली-खाली और सूना, उदास, ठहरा हुआ लगता है, मन जाने कैसा हो जाता है ! समझ नही पाती इस मरुभूमि के तपन-भरे गर्म झंकोरों को कब तक सहना पड़ेगा ? या जल की तलाश मे प्यासी हिरनी की तरह इस मरुभूमि मे गड़ जाऊंगी ? सोचा था, शनिवार को आओगे तो इतवार को तुम्हारे साथ म्योराबाद होते हुए फाफामऊ के पुल पर से, या बंदरोड से नागवासुकी तक, सरसों-मटर के लाल-पीले फूलों की चादर ओढकर गंगा का कछार देखने एक बार फिर चलूंगी। लेकिन मेरी सोची हुई बातें पूरी ही कब हुई है ? एक इतवार बीता, दूसरा इतवार बीता, कल तीसरा इतवार भी बीत गया। राह ताकने का मतलब पहले नहीं समझती थी। आज-कल तो फूल ही फूल हैं। गगा के कछार मे, कपनी बाग में, सीनेट हाल के आगे-पीछे के लॉन में, लेकिन यह मौसम तो उन्हें निकट से

देखने का है, छूते हुए पास से गुजरने का है, फूलों की गंध से मन-प्राण को भरने और सोचने का है। लेकिन यह सब-कुछ नसीब वालों को ही मिलता है, मेरे नसीब मे वसंत का सुख कहा है ?

मेरी सीमाएं जानने वाला तो कोसों दूर है। वसत की फूल-भरी क्यारिया, और कछार की पीत-वसना धरती को देखने की चाह कौन करे, जब दिखाने वाले को ही देखने को मन तरस जाए। सुना है, लहरो को जगाने के लिए विराट् व्यक्तित्व चाहिए, पर पूरनमासी की छाया पडने मे विशाल सागर की लहरें जब उद्वेलित हो जाती है तो छोटी-सी सीपी मे बंद मन को कौन रोके ? कभी-कभी ऐसा भी लगने लगता है कि उस चद्रमा को छूने का प्रयास भला वह करे जो हर ओर से बौना और क्लीव है ? लेकिन, इन्सान अपनी नीयत भला कब जान पाया है ? इसी मे कहती हूं कि आचार्य संहिता की बात मत करना। प्रकृति के वेग के आगे विवेक कभी भी टिक नहीं पाया है, इसलिए किसी उद्धव से संदेश भेजने की भूल मत करना।

बार-बार मा कहती है कि उन्हें हरदोई जाना है। लेकिन तुम्हारे आए बिना उनका जाना कैसे होगा ? एक की प्रतीक्षा अनेक करें, क्या यह कम भाग्य की बात है ? कब आओगे ?

तुम्हारी
दीपा

पत्र को लिफाफे मे बंद किया। सुबह दफ्तर में दाखिल होने से पहले रिक्शा से उतरकर लेटर-बाक्स मे पोस्ट किया।

दीपा

पत्र तुम्हारा तब मिला, जब मैं इजलास मे बैठा हुआ मुकदमे के दोनों पक्षों के वकीलों की बहस सुन रहा था। पत्र तुम्हारा है यह समझ लेने के बाद मन चचल हो गया, लेकिन विवशता यह थी कि बगल की कुर्सी पर मेरे सीनियर मुसिफ बैठे थे, इसलिए बहस के दौरान पत्र खोलकर पढने की वहा पर आजादी नही थी। अकेला होता तो शायद यह छूट लेने की कोशिश भी करता। लंच की छुट्टी मे पत्र पढकर मन

को ठीक वैसा ही हुआ जैसा कि जलती हुई अग्नि मे कोई घी डाल दे। यदि तुम सोचती हो, मैं हाड-मास का नही हूं तो मेरे लिए यह बहुत अचरज की बात नहीं है क्योंकि इसका जिम्मेदार मैं ही हूं। कभी-कभी मन और मौके के खिलाफ मैंने आचार्य सहिता का झूठा नकाब लगाया है, और बाद मे बार-बार, जी भरके पछताया, शायद इसलिए भीतर के अपने आत्मपीडन और आत्मप्रवंचना की आग में हरी घास की तरह सुलग-सुलगकर जला हूं। क्या करूं, मन के इस संस्कार को जो असलियत मे मुझे सदा दूर ही खींचता रहा है। मां कहती थी, खूबसूरत फल देख सभी के मन में लालच जगती है, हर खूबसूरत फल मीठा भी होगा, इतना ही मैंने स्वीकार नही किया था, अपने दोनों भाइयों को, एक ही लड़की के पीछे आत्महत्या कर लेने के फलस्वरूप। अपना बच्चा हर मां को खूबसूरत लगता है, लेकिन दो-एक बार अपने रूप के बारे मे दूसरो से भी सुन लिया तो मन मे थोड़ी-सी सतर्कता जरूर भर गई, अहम नही, विश्वास करना, और शायद उसी सतर्कता का परिणाम था कि बहुत अधिक मिलने-जुलने से बचने की आदत पड गई; पड़ी तो, लेकिन एकाकी मन करे क्या ? शायद इसी मन.स्थिति का परिणाम था, वाद्य-संगीत की ओर अपना झुकाव। सितार की मीठी ध्वनि ने मन को बांध लिया था, बाबा के आशीर्वाद और सीख से मन केंद्रित होने लगा था, मन रमने लगा था, लेकिन खेल-खेल ही मे कुछ और ही हो जाएगा, यही मैं पहले नहीं जान सका। इसका अहसास तब हुआ जब मन मे तुम्हारी आवश्यकता महसूस होने लगी। पहली बार तुम्हारे साथ जब डाक्टर को दिखाने के लिए गया था तो जानती हो, चेंबर से तुमको बाहर भेजकर डाक्टर ने मुझसे बहुत-सी बातें पूछकर मुझसे क्या कहा था ? तुम जान भी कैसे सकती थी, मैंने तुम्हारी दवाइयों की बात की तो बोला—मेरे खूबसूरत नौजवान दोस्त, इस लड़की को असली दवाई तुम हो, तुम्हारा सान्निध्य है, तुम चाहो तो इसे जीवन दो, या ले लो। मैंने कहा—डॉक्टर, ये आप कह क्या रहे हैं, मैं कहां का, और यह दीपा...तो डाक्टर अपने मुह पर अपनी उंगली रखते हुए धीमे से बोला था—अगर तुम्हारे मन मे इसके लिए कुछ नही भी है, तो भी इस

लड़की के जीवन के लिए तुम्हें इसका दिखावा करना पड़ेगा। क्या जानता था कि शुरू का यह दिखावा अनायास असलियत बनकर मन की गहराई में उतरकर देह-मन दोनों को अपनी गुजलक में कस लेगा! दूसरे का मोल उससे दूर हो जाने के बाद ही समझ में आता है, तुम पास थीं, कुछ नहीं था, अब अलग हूं तो इस अकेले के सूनेपन का कोई ओर-छोर नहीं मिलता। इस कुर्सी की लालच ही यहां खींच लाई है, पर मन को जो सुख और अपनापा इलाहाबाद में मिलता था, इस सूने, उजाड़ प्रतापगढ़ में ही क्या, शायद और कहीं भी नहीं मिलेगा?

उद्धव से संदेश कृष्ण ही भेज सकते थे, वे युगावतार थे, अनेकों के लिए एक। मेरा एक कौन होगा, इसका दावा करने लायक भी तो अभी मैं नहीं हूं। जाम के प्याले और होंठों की दूरी वाली कहावत तो तुम जानती ही हो। किंतु कृष्ण की याद उद्धव के ही संबंध में क्यों आई? रुक्मिणी के संदर्भ में क्यों नहीं आई?

आचार्य संहिता की बात फिर करने का अब साहस नहीं है, कभी किया था तो मन की कमजोरी दबाने के लिए. यह स्वीकार करने में लज्जित नहीं हूं, शायद उसी करनी का फल मेरे सामने आ रहा है कि यक्ष की भांति इस प्रतापगढ़ में निष्कासित होकर कैद कर दिया गया हू। और अब आषाढ़ के पहले मेघ की खोज में, अनवरत पलक उठाए रहता हूं कि शायद किसी मेघ को मुझ पर दया आ जाए और मेरा यह संदेश पहुंचा दे—

> भित्व सद्यः किसलय पुन्टान्देव रुद्रमाणं
>
> ये तंरक्षीरंस्रु ति सुरभयो ऽदक्षिण्यो नप्रवृत्ताः
>
> आलिंगयन्ते गुणवति भयाते तुषाण द्रिताः
>
> पूर्व स्पृष्टं यदि किल भवदेहः मेभिस्तेवतिः

(हे गुणवती, देवदारु के कोमल पत्तों को अपने झोंके से तत्काल तोड़कर और उसके रस की गंध लेकर, हिमालय के जो पवन दक्षिण की ओर से चले आ रहे हैं, उन्हें मैं यही समझकर हृदय से लगा रहा हूं कि ये उधर से तुम्हारा स्पर्श करके आ रहे हैं।)

अर्थ समझने में कठिनाई न पड़े, इसीलिए लिख दिया। लेकिन

इतना होने के बाद भी कहीं मेरी स्थिति राजा पुरुरवा की हो गई तो मैं उर्वशी को कहा-कहा हेरता फिरूंगा ? तब किसको याद करूंगा ?

किसका व्यक्तित्व पर्वत और मेघ की मालाएं छू सका है ?

हर कोई किसी-न-किसी पहलू से बौना और क्लीव होता है। क्या यह नहीं जानती कि कृष्ण जैसा व्यक्तित्व भी एक अदना बहेलिए के हाथों मारा गया।

मन छोटा करने का कोई कारण नहीं देखता, कम-से-कम अपनी ओर से तो कोई भी नहीं। लड़कियां तो बहुत प्रैक्टिकल होती है। पर तुम जरूरत से अधिक सोचती हो, चिंता मुझे इसी की रहती है। आज से ठीक दस दिनों के बाद पड़ने वाले शनिवार को मैं इलाहाबाद पहुंच रहा हू, जब सीनेट हाल तथा कंपनी बाग मे फूल ही फूल होंगे और म्योराबाद और नागवासुकी से दीखने वाला गंगा का कछार भी पीत-वसना ही होगा।

मा को भी चिट्ठी मिली है। बाकी बातें मिलने पर ही कहूं-सुनूगा। वायलिन पर रियाज तो चालू है न ? मैं तो साथ मे सितार नही ला सका, क्या जानता था, पहली ही बार इतने दिनों तक छुट्टी नही मिल पाएगी। यह सब इमरजेंसी का परिणाम है। बाबा से मेरा प्रणाम जरूर कहना।

अमित स्नेह से
चंद्रमोहन

तीसरे दिन पत्र मिला, जब दीपा आफिस से लौटकर आई। पीरू बाबू ने बेटी को पत्र पकड़ा दिया। दीपा ने एक बार उलट-पुलटकर बंद लिफाफे को देखा, दूसरी ओर बाप को एक बार देखकर अपने कमरे मे चली गई। कुर्सी पर बैठ पहले खत खोलकर पढा। एक सांस मे, एक बार, दो बार, तीन बार, फिर लिफाफे में बंद कर आलमारी मे रख दिया। चौके में जा चाय का पानी चढाया और तब कपडे बदलना शुरू किया।

चौदह

शुक्रवार आया, चंद्रमोहन ने बाहर जाने के लिए सोमवार, मंगलवार, दो दिनों की छुट्टी ली और शनिवार को अदालत से जल्दी घर आकर शाम की ट्रेन से इलाहाबाद के लिए चल पड़ा। रात में नौ बजे प्रयाग पहुंचा। रिक्शा किया और ठीक पंद्रह मिनट में दीपा के घर के फाटक पर हाजिर। फाटक खोल भीतर गया, बरामदे का द्वार खुला हुआ था। पीरू बाबू और दीपा के कमरे की बत्तियां जल रही थीं। दीपा अपने कमरे में नहीं थी। देखा बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठी आसमान की ओर ताक रही है। ध्यान बंटाने के लिए चंद्रमोहन ने धीमे से खांसा। दीपा ने चौंककर सिर घुमाया और कुर्सी के पास चंद्रमोहन को खड़ा पा कुर्सी से उठकर खड़ी हो विस्मय भरी आंखों से देखती हुई बोल पड़ी, "अरे, तुम आ गए?"

"हां, आ गया।"

पल-भर चंद्रमोहन का मुंह निहारने के बाद, दीपा उसके पैरों पर झुक गई।

दोनों कंधे पकड़कर उसे उठाते हुए चंद्रमोहन बोला, "बाबा कहां हैं?"

दीपा ने अंगुली दिखाते हुए कहा, "अपने कमरे में।"

चंद्रमोहन दीपा की कलाई पकड़े पीरू बाबू के कमरे की ओर बढ़ गया।

"पीरू बाबू पलंग पर लेटे हुए कुछ पढ़ रहे थे। देखते ही उठके बैठकर बोले, "आओ-आओ, बड़ी देर कर दी। यहां पहले ही इतवार को आने की बात थी! हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे। कब आए?"

पीरू बाबू के पैर छू, खाट पर बैठते हुए बोला, "बाबा, अभी तो

स्टेशन से सीधे चला आ रहा हूं।"

"अभी घर नहीं गए। पहले घर जाना था बेटा, मां का हक अधिक होता है, हम लोग तो बाद में आते है।"

चंद्रमोहन मुस्कराया।

"चलो, हम लोग तुम्हारे घर चलते है।"

"आप आराम करिए।"

यात्रा से थककर तुम आए हो, आराम हम करें, तुम्हे देखकर ही मन को आराम मिल गया बेटा, चलो।"

बाहर हल्की-सी सर्दी थी। पीरू बाबू ने देह पर ऊनी चादर डाल ली। दीपा वैसी ही चलने लगी तो चंद्रमोहन ने टोका, "और तुम...।"

"मुझे सर्दी नही लगती।"

"अगर यह सच है, तो भी अभी बचाव करना चाहिए, इलाहाबाद का मौसम खतरनाक होता है, भरोसे के लायक कत्तई नहीं। शाल ले लो तो कोई हर्ज न होगा।"

एक बार दीपा ने चंद्रमोहन की ओर देखा, और कमरे मे अपना ऊनी शाल लेने को मुड गई।

आगे पीरू बाबू, पीछे चंद्रमोहन और लाल शाल ओढ़े दीपा निकली। घर पहुचे, द्वार खटखटाया। मा ने द्वार खोला, चंद्रमोहन मा के पैरो पर झुक गया, "बस, बस ! तू आ गया, बहुत है। इस समय कौन-सी गाड़ी आती है ?"

अभी नौ बजे पॅसिजर आती है। रास्ते में बाबा को प्रणाम करने गया तो बोले, "पहले मां का हक होता है, चलो हम भी चलते है ?"

मां हंस पड़ी, "नही-नही, पीरू बाबू, बड़े हो जाने पर बेटा और बेटी दोनो पराये हो जाते है। सारे दुखों की जड यह आस ही तो होती है, लेकिन आस भी न लगाएं तो करें क्या ? देखिए, यह पहले इतवार को आनेवाला था, एक की जगह तीन इतवार बीत गए। हम, आप, दीपा सभी किस तरह थे, शायद इसको पता न होगा।"

"पता क्यों नहीं था।" चंद्रमोहन हंसते हुए बोला, "लेकिन इस सरकारी नौकरी को यह सब कहां पता चलता है, वह इतनी दूर तक

कहां सोचती है ।"

"चल, कपड़े उतार, तेरे खाने-पीने का प्रबंध करूं। आइए, घोपाल बाबू !"

"आपकी तबीयत कुछ भारी लगती है क्या ?" पीरू बाबू ने पूछा।

"हां, आज कुछ अनमनी हो गई है, सो रही थी, पर आस भी लगी हुई थी कि शायद यह आ जाए।"

"क्या बनेगा मा, मैं बनाती हूं।"

"हां, मुझे आज्ञा दीजिए, मेरी भी वही हालत है, आज कमर में हल्की-सी पीड़ा है, पूरे दाहिने अंग में ही पांच-सात दिन से कुछ कष्ट है। मैं जाकर लेटूंगा। दीपा को बाद में गंगाजल पहुंचा देगा।"

"आप जाएं। कल इतवार है, आज खाने-पीने में देर होगी। दीपा मेरे पास सो जाएगी, अब सुबह भी घर नहीं जाएगी, आप भी टहलने निकलते हैं न, तो चाय इधर से ही पीते जाएं। और कल दिन में आप-हम सभी लोगों का खाना यहीं होगा।"

पीरू बाबू के पोपले मुंह पर मुस्कराहट बिखर गई, "बेटे के आने की खुशी में होना ही चाहिए, अच्छा मैं चलता हूं।"

पीरू बाबू लौट आए। दीपा रुक गई। मा के इस अप्रत्याशित व्यवहार पर उसे विस्मय हो रहा था, पर साथ ही मन में अपार खुशी भी भर गई थी। नये सिरे से, नयी तरह की खुशी—जो देह-मन दोनों को पुलकित कर रही थी।

दीपा ने स्टोव जलाया और तरकारी छौंक दी। फिर पूरियां निकालने के लिए आटा गूंथने लगी। बगल में एक चटाई पर चंद्रमोहन और मा बैठी थीं।

मां इस नयी नौकरी में रहने और खान-पान की व्यवस्था के बारे में पूछ रही थी। और चंद्रमोहन एक-एक करके सविस्तर मा को बताता जा रहा था।

खाते-पीते रात को बारह बज गए। सोने की तैयारी हुई—एक ही कमरे में अगल-बगल एक चारपाई पर चंद्रमोहन, दूसरी पर मा और दीपा सोईं। नींद किसी को नहीं आ रही थी, बातों का अंत नहीं

था। रात के दो बजे उन लोगों को झपकी आई। और दीपा की नींद खुली तो उस समय सुबह के सात बज रहे थे। देखा, चंद्रमोहन गहरी नींद में सो रहा है और मां सुबह के कामों से निवृत्त हो स्नान की तैयारी कर रही है।

आगन में गई, मां का पैर छू प्रणाम किया तो मां ने उसे प्यार से आशीष देते हुए बाहों में बांध लिया, "तू भी उठ गई? देर से सोई तो देर से जागना भी चाहिए था।"

"नहीं मां, देर हो गई। अगर आप कहें तो मैं घंटे-भर में घर से लौट आऊं। बाबा को देखकर उन्हें एक कप चाय पिला आऊं, कमर का दर्द न जाने कैसा हो।"

मां एक सुखद विस्मय से दीपा को देखती हुई बोली, "हां, जाओ पर जल्दी आ जाना, तेरे बिना अच्छा नहीं लगेगा, जानती है न खाना-पीना यहीं होना है।"

"हां, मैं नहा-धोकर अभी आती हूं। कपड़े भी तो नहीं लाई हूं।" शाल ओढ़कर दीपा धीरे से बाहर निकल गई। घर पहुंची तो देखा—पीरू बाबू आंगन के नल पर आंखों को पानी के छींटे दे रहे थे।

"तुम आ गई बेटा? क्या हुआ?"

"सोचा, तुमको चाय कैसे मिलेगी?"

पीरू बाबू हंसे, "अब इतनी चिंता करने से काम कैसे चलेगा। समय के साथ इंसान को बदलना ही चाहिए।" चाय बना पिता के आगे पेट भराऊ जलपान रखा तो बोले, "इतना!"

"हां, आज खाना देर से मिलेगा। तब तक भूखे रहोगे।" पीरू बाबू जलपान करने लगे तो दीपा ने कपड़े बदले, चंद्रमोहन के पसंद की पीले रंग की तांत की साड़ी, उसी रंग का ब्लाउज पहन बालों का हल्का-सा जूड़ा करके बोली, "बाबा, जाती हूं—मां से कहकर घंटे-भर के लिए आई थी, वहां भी सभी कुछ हमीं को करना है।"

"हां जाओ। पर मैं बारह बजे के लगभग आऊंगा।"

"अच्छी बात है।" दीपा कंधे पर तह किया हुआ शाल रख के चंद्रमोहन के घर पहुंची तो पौने नौ बज रहे थे। देखा स्टोव पर पानी

खोल रहा है और दोने में जलेबी और समोसे रखे हुए चंद्रमोहन चटाई पर बैठा है। मां तुलसी के पेड़ के पास, आंगन की धूप में बैठकर पूजा कर रही है।

दीपा चंद्रमोहन के पास अपराधिनी की तरह बैठती हुई बोली, "मुझे थोड़ी देर हो गई, बाबा को चाय देने लगी।"

"इसमें इतना घबराने की बात क्या है, बैठो चाय-वाय बनाओ।" दीपा की पीठ पर हल्की थाप देते हुए चंद्रमोहन बोला। पीठ पर चंद्रमोहन के हाथों का स्पर्श पा दीपा सिहर गई। मां ने तभी पूजा समाप्त की और चटाई पर आ बैठी। दीपा चाय बना सभी के आगे रखने लगी। मां चाय का गिलास उठाती हुई बोली, "तू बुधवार की सुबह चला जाएगा?"

"छुट्टी महज दो दिनों तक मिली है।"

"तो ठीक है, हो सकता है, मैं भी तेरे साथ चलूंगी और दो-एक दिन प्रतापगढ़ में रहकर हरदोई चली जाऊंगी।"

"यह तुमने चिट्ठी में तो एक बार भी नहीं लिखा।"

"इसमें लिखने-लिखाने की क्या बात है? और लिख भी देती तो फर्क क्या पड़ता। जब मैं तेरे पास नहीं रहती तो चाहे हरदोई रहूं या बद्रीकाश्रम जाऊं। अरे बाबा, अब तो तू अपने पैरों पर खड़ा हो गया, कमाने-खाने लगा, अब तेरे माया-मोह से मैं मुक्त होना चाहती हूं।"

"यह पिता कह सकता है, मां नहीं।" दीपा हंसती हुई बोली।

"हां, लेकिन मुझे तो दोनों का फर्ज अदा करना है बेटी। यह तू क्यों भूलती है कि अपना भला-बुरा सोचने के लिए तुम लोग समर्थ हो गए तो इसकी भी जरूरत मैं अब नहीं समझती। मां की ममता सदा संतान के आगे हारी ही है बेटी, तुम यह सब समझोगी जब मां बन जाओगी।"

दीपा निरुत्तर ही खामोश हो गई तो चंद्रमोहन बोला, "बद्रीकाश्रम आने-जाने में दिन कितने लगते हैं।"

"यह मैं नहीं जानती, लेकिन अनुमान से कहती हूं—महीने-डेढ़ महीने से कम क्या लगते होंगे। अब तो बस से आने-जाने के कारण

आराम हो गया है, समय भी बहुत कम लगता है।"

"यह मकान रखा जाए या छोड दिया जाए ?"

"यह तो तुम समझो, अपनी सुविधा-असुविधा की बात !"

"तुम कहती थी कि प्रयाग मे रहना चाहती हूं, बद्रीकाश्रम से लौट-कर यदि प्रयाग में रहने का इरादा हो तो मकान रख लिया जाए। यदि नहीं, तो ताला बंद करके किराया देते रहने मे लाभ क्या है ?"

"फिर मुझको माया-मोह मे फंसाना चाहता है। मैं तो बहते पानी की तरह रहना चाहती हूं। तेरे आगे का कार्यक्रम क्या है, यह तू जाने। प्रतापगढ मे तुझे अभी कम-से-कम दो-तीन साल रहना ही होगा।"

"उसके बाद, यह कहा तय है कि मेरा तबादला फिर इलाहाबाद के लिए हो जाएगा, हालांकि मैं इस बात की पूरी कोशिश करूंगा। यदि ऐसा हो गया, तब के लिए यह मकान आरामदेह रहेगा।"

"तुम अफसरों को सरकारी बगले क्या नही मिलते ?"

"छोटे शहरों मे तो मिल जाते है, पर बडे शहरो मे तो अधिकतर अपना ही इतजाम करना पड़ता है।"

"लेकिन इस वर्ष के लिए तुम बद्रीकाश्रम जाने की बात स्थगित रखो, अगले साल जाना, इस साल खेती संभाल दो।"

"लाओ झोला दो, सब्जी ले आऊ, आज तो तुमने लोगों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया है ?"

"लोगो को आमन्त्रित क्या किया है, बस घर के हमी लोग है। आज दीपा के हाथ की रसोई खाने को मन हो आया, तो सोचा, इससे बढकर दूसरा तरीका और क्या होगा ? इसी बहाने हम लोग कुछ देर साथ तो रहेंगे।"

चन्द्रमोहन झोला लेकर सब्जी खरीदने बाहर निकल गया। लेकिन उसकी मां और दीपा वहीं बैठी रही। मां चाय बहुत धीरे-धीरे पीती थी, मां और दीपा दोनों आमने-सामने बैठी थीं। दीवार से पीठ टेकती हुई मां बोली, "पीरू बाबू की तबीयत इधर कैसे रहती है ?"

"कुछ खास ठीक नहीं रहती। देह के दायें हिस्से में अक्सर दर्द की शिकायत करते हैं। डाक्टर के पास ले गए तो बोले कि रक्तचाप की

शिकायत है, कुछ दवा भी ले आई थी।"

"और तुम्हारी तबीयत ?"

"मैं तो ठीक हूं मां, देखती ही हो, तुम्हारे सामने हूं।"

मां हंसी, "भीतर से मन तो ठीक रहता है न ?"

"नौकरी मिल जाने से जब रोटी-कपड़े की समस्याएं हल हो गईं तो मन ठीक रहेगा ही।"

"पीरू बाबू ने तुम्हारी शादी-ब्याह की बात नहीं चलाई ?"

दीपा ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप चटाई पर ही आंखें गड़ाए रही तो मां ने फिर पूछा, "यह भी एक जरूरी सवाल है, समय से हर काम होना चाहिए।"

"बात अपनी जगह पर सच हो सकती है मां, पर हर बात व्यवहार में भी आती हो, इसका दावा भी तो नहीं किया जा सकता, कम से कम मेरे जैसे अकिंचन के संदर्भ में ?"

"क्यों, तुझे क्या हुआ है ? तुझमें कमी किस बात की है ?"

दीपा ने फिर एक बार मां की ओर देखा और धीरे से बोली, "मुझमें है क्या मां, न रूप न गुन, न मेरे बाबा के पास धन। अगर यह नौकरी न मिली होती तो शायद भूखा ही मरना होता—मां का श्राद्ध करने को तो हम लोगों के पास पैसे थे नहीं, आपसे छिपा क्या है ? मेरी ओर कौन नजर फेरेगा, भगवान की कृपा हो जाए तो बात दूसरी है।"

"भगवान की कृपा से तो सभी कुछ होना है बेटी, लेकिन तुमने अपना मन इतना छोटा क्यों कर लिया है ?"

"होश संभालने में अब तक जितना कुछ मुझे याद है, उसमें मुझे तकलीफ, निराशा और उदासी के सिवा कुछ नहीं मिला है मां। बड़ी साध थी—एम० ए० पास करके पी-एच० डी० करने की, लेकिन एम० ए० के पहले साल में ही जानलेवा बीमारी ने पकड़ लिया, पढ़ाई छूट गई, छोड़नी ही पड़ी, जिंदगी ही खतरे में पड़ गई तो पढ़ने की बात कौन करे। घर का आसरा, एक सयाना भाई था, वह भी चल बसा। हम लोग हर ओर से टूट गए। बाबा बूढ़े होने के कारण नौकरी से रिटायर हो गए। आमदनी एकाएक घट गई। खर्च की तंगी पड़ी

बाबा ने मकान का आधा हिस्सा बेच दिया। किसी तरह काम चलता रहा। किस्मत से बीमारी दब गई या समाप्त हो गई। लेकिन हुई—पर इस घर की रोशनी ही बुझा दी। मां चल बसी। यह तो नौकरी लग गई तो रोटी का सहारा हो गया, वरना भगवान ही जानता है कि आगे क्या होता ? आप ही बताएं, अगर मन बड़ा करूं तो किस बल-बूते पर, किस आस पर ? मेरे आगे-पीछे है कौन ? बाबा जब तक जीवित हैं, बहुत बडा आसरा है, लेकिन उसके बाद तो बस चारों ओर अंधकार ही अंधकार है ?"

"अपने नातेदार या सबधियो में कोई ऐसा लड़का नही दिखा जो मन पर चढ़ा हो ?"

"संबंधियों में आज तक कभी भी किसी को इस निगाह से नही देखा है मां, और न यह सब बातें पहले कभी मन मे आई थी। किंतु मां के मरने के बाद बाबा की तबीयत की हालत देखती हूं तो मन अथाह सागर में डूब जाता है। कोई ओर-छोर नही मिलता कि बाबा के बाद क्या होगा ?"

दीपा की बडी-बडी आखें भर आई। मोती-से आंसू टप्‌टप् साड़ी पर गिरने लगे। मां दूसरी ओर देख रही थी, जैसे ही दीपा की ओर निगाहें गई तो वह चौक पडी, "बेटी, यह क्या ? रोते नही, दुनिया मे सभी अकेले होते हैं, सभी का सहारा भगवान होता है, कौन जानता है कि किस मौके पर कौन काम आ जाएगा।" मा अपने आंचल से दीपा की आखें पोछती हुई उसका सिर सहला रही थी, कि बाहर दरवाजे की जंजीर बजी। मा की आज्ञा से दीपा द्वार खोलने लगी तो देखा, पीरू बाबू खडे थे, "बाबा ! कुछ अचरज मे दीपा बोल पड़ी।" मां द्वार की ओर बढती हुई बोली, "आइए, आइए।"

बडी प्यारी, सहज, भोली मुस्कान से पीरू बाबू बोले, "मन नहीं लग रहा था मां, आज गंगाजल से सितार सुनने को मन हो आया।"

"आइए, आइए, चाय तैयार करो बेटी, आपकी कमी खल रही थी। सब लोग जब यहा हैं तो आपका वहा अकेले रहना रुचता भी नही था। चलिए, ऊपर चलिए, या यहीं आंगन मे कुर्सी निकलवाऊं ?

वह तो सब्जी लेने गया है, आता ही होगा।"

"तब तो यहीं कुर्सी ले आओ दीपा, आंगन में ही बैठेंगे। गंगाजल आएगा, तब ऊपर चलेंगे।"

पीरू बाबू अमरूद के पेड़ की छाया से हटकर, आंगन में ही कुर्सी पर बैठ गए। दीपा ने चाय का प्याला बाप के हाथ में पकड़ा दिया। वे चाय आधी ही पी पाए थे कि चंद्रमोहन तरकारी लिए हुए आ गया।

"ओह, बाबा, आप आ गए, मैं सोचता था, आपको लेता ही चलूं। पर झोला भारी होने से नहीं गया। रखकर जाता।"

"इसीलिए तो चला आया।" पीरू बाबू बोले, "अब तुम लोगों के बिना अकेले नहीं रहा जाता, आज सितार सुनाओ।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, ऊपर चलिए, लगभग महीना-भर हो चला सितार बजाए, मन व्याकुल हो रहा है।"

चाय पी, पीरू बाबू चंद्रमोहन के साथ ऊपर के कमरे में चले गए। चंद्रमोहन ने कोने में खड़ा किया सितार निकाला, उस पर की खोल हटाई और सामने की तख्त पर पीरू बाबू को बिठा फर्श पर अपने लिए चटाई बिछा, बैठने से पहले पीरू बाबू का पैर छू प्रणाम किया। पीरू बाबू ने बड़ी वत्सलता से चंद्रमोहन के सिर पर हाथ फेरा। चंद्रमोहन सितार बजाने बैठा, खमाज शुरू किया। एक घंटे सितार सुनकर पीरू बाबू प्रसन्न हो गए। प्यार से आशीष दिया।

खाते-पीते दो बज गए। महरी आई, बर्तन साफ हुए। इधर-उधर के बिखरे सामान दीपा ने अपनी जगह पर लगा दिए। तीन बजे पीरू बाबू ऊपर से उतरे और दीपा से बोले, "अब तो मां से चलने की आज्ञा मांगो।"

अमरूद के पेड़ तले आंगन में दीपा, चंद्रमोहन, उसकी मां तथा पीरू बाबू खड़े हो एक-दूसरे को देख रहे थे।

"दीपा भी जाएगी?"

"यह तो आपकी इच्छा पर है, वैसे घर में भी जूठे बर्तन पड़े हैं, महरी आएगी—वह सब कराना मेरे वश का नहीं है।"

"तो आप पांच मिनट बैठ जाएं।" पास का स्टूल पीरू बाबू के

आगे करके मा कमरे मे गई, वहां से लौटकर चौके मे आ, टिफिन कैरियर मे दो आदमियों के लिए पूरियां, तरकारी, खीर तथा मिठाइयां रख के लाकर दीपा को पकडा दिया।

"ये क्या है ?" पीरू बाबू ने पूछा।

"आप लोगों के लिए रात का भोजन, जिससे दीपा को दुबारा मेहनत न करनी पडे।"

पीरू बाबू खामोश हो गए तो दाए हाथ मे पकड़ी हुई दीपा की मां की जजीर चद्रमोहन की मा दोनों हाथों से दीपा के गले में पहनाती हुई बोली, "ये, हा।"

"यह क्या मां ?" दीपा लाकेट वाली अपनी मां की जंजीर पहचानती हुई बोली।

"चद्रमोहन के मुसिफी मे आने की खुशी मे तुझे कुछ दिया नही था बेटी।"

दीपा ने बगल मे खड़े पिता की ओर देखा। पत्नी की जंजीर पहचानकर, पीरू बाबू ने पलभर को आखें मूद ली और स्टूल पर फिर बैठ गए। भरी हुई आंखें चादर की छोर से पोछते हुए बोले, "मां, यह तुमने क्या किया ?"

"जो कुछ भी किया है बहुत सोच-समझ के किया है। तब अगर जजीर लौटाकर आपको रुपए भेजती तो शायद आपके आत्म-सम्मान को चोट लगती।"

"तब तो मा आपने हमे कर्ज के बंधन मे बांध दिया ?"

"नही, नहीं, घोषाल बाबू, यह सब-कुछ अपनी ओर से मैंने दीपा को दिया है। जाने क्यों ऐसा लगा कि समय आ गया, यह दीपा के गले मे अब पड़ ही जानी चाहिए। इस बार जाने के बाद पता नही मेरा लौटना कब हो। हो, न हो ! दूसरे की चीज मैं कहा-कहां ढोती फिरूंगी।"

पत्नी की जंजीर एक बार हाथो मे छूकर पीरू बाबू दीपा से बोले, "तूने बदले में मां का पैर तक नही छुआ ?"

जैसे भूला हुआ कुछ याद आ गया हो, फुर्ती से दीपा मां के पैरो

पर झुक गई।

"नहीं बेटी, मैं तुम्हें ऐसे ही आशीश देती हूं। जाओ बेटा, इन लोगों को घर तक पहुंचा आओ।"

"द्वार से बाहर निकलकर, पीरू बाबू ने मां को पहले की तरह झुककर विनीत भाव से प्रणाम किया और आगे बढ़े, पीछे दीपा और चंद्रमोहन चल पड़े।

घर पहुंचकर पीरू बाबू बरामदे की तख्त पर बैठते हुए बोले, "तुम्हारा आज शाम का कार्यक्रम क्या है बेटा?"

"यदि आपकी अनुमति हो तो दीपा को एक अंग्रेजी पिक्चर दिखा लाऊं?"

"अभी मेरी अनुमति की आवश्यकता बची ही है बेटा?"

"आप जब तक जीवित रहेंगे, पग-पग पर आपकी अनुमति चाहिए। दीपा, तुम तब तक तैयार हो, मैं कपड़े बदलकर आता हूं—साढ़े तीन बजेंगे अब। पांच बजे से निकलेंगे। मैं साढ़े चार बजे आऊंगा।

चंद्रमोहन के जाने के आधा घंटा बाद, दीपा तैयार होने लगी। हल्के बादामी रंग की जार्जेट की साड़ी, ब्लाउज, गले में सोने की जंजीर, गोरी देह खिल गई। पैरों में काले पट्टों का चप्पल, और कंधे पर लटकता हुआ काला वैनिटी बैग, सिर पर रूखे, पर सवारे हुए केश, और ललाट पर कुमकुम की छोटी-सी लाल बिंदी, आंखों में आइब्रो पेंसिल का हल्का-सा टच। ऊपर से नीचे तक सब कुछ उजागर हो गया था।

चंद्रमोहन ठीक समय से आया। दीपा सामने आई तो उसके मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ा, "क्या बात है?"

दीपा लजाकर बोली, "क्यों?"

"कुछ नहीं, चलो, मैं तो तुम्हारे साथ फीका पड़ जाऊंगा।"

"इस काले सूट में गोरी देह वाले मुंसिफ साहब, चश्मे बद्दू...।"

चंद्रमोहन के पीछे दीपा बाहर निकली। बरामदे की तख्त पर चुपचाप बैठे हुए पीरू बाबू आम की बौरों वाले छोटे-से पेड़ को देख रहे थे।

"जा रही हूं बाबा !"

"जाओ, पर मेरा सितार ला दो ।"

"सितार !"

"हां बेटी, तुम लोगो को आज इस तरह से साथ जाते देखकर मैं भीतर से प्रसन्न हो गया हू । खुशी मे कुछ करना तो चाहिए ।"

भीतर से सितार ला, दीपा चद्रमोहन के साथ निकल गई ।

पीरू वावू प्रसन्न मन से सितार वजाने लगे ।

पंद्रह

दूसरे दिन सुबह आठ बजे, पीरू वावू अपनी दाढ़ी वनाने बैठे तो दाहिना हाथ ऊपर उठाने मे कुछ कठिनाई पडी । साबुन-लगा ब्रश तख्त पर रख दिया और दीपा को बुलाकर बोले, "मेरी दाढी मे साबुन लगा दे बेटा ।"

"क्यों ?"

"रात देर तक सितार बजाता रहा, लगता है, नसें थक गई हैं, हाथ ऊपर नही उठ रहा है ।"

दीपा साबुन-लगा ब्रश बाप की दाढ़ी पर फेरने लगी, तो एकाएक दाहिने कंधे मे जोर से फड़कन हुई । वह रुक गई । उसके बाद, दो-तीन-चार बार फिर वैसी ही फडकनें हुईं ?

"क्या बात है बाबा ?"

"समझ में नही आता बेटी, मन भी भारी लग रहा है, तुम दाढी बना दो तो मैं लेटूंगा।"

दीपा ने बाप की दाढी बनाकर मुह तौलिए मे पोछ, कमरे मे ले जाने के लिए बाह पकड़कर सहारा दिया तो पाया कि देह तप रही है, "बाबा, तुम्हें तो ज्वर है!"

पीरू बाबू कुछ बोल नही पाए, वे चुपचाप कमरे मे चारपाई पर लेट गए। दीपा ने थर्मामीटर लगाकर देखा तो १०३ डिग्री बुखार था। माथा आंवे की तरह जल रहा था, "बाबा, बुखार तो तेज है।"

"हा, मेरी तबीयत घबरा रही है, जाओ गगाजल को बुला लाओ।"

दीपा बाहर से दरवाजा भिड़ाकर चद्रमोहन के घर भागी। चंद्रमोहन मा के साथ बैठा हुआ चाय पी रहा था। सूचना सुनते ही चाय छोड़ उठ गया। मा भी उठ गई, और घर मे ताला बद कर तीनों लोग बाहर निकल गए। घर आए तो देखा—पीरू बाबू आंखें मूदे हुए चुपचाप पड़े हुए थे।

"बाबा ?" चद्रमोहन ने धीरे से पुकारकर माथे पर हाथ रखा।

पीरू बाबू ने आंखें खोली, "आ गए बेटा!"

"हां, आपको क्या हुआ ?" चंद्रमोहन की मां ने पूछा।

"अरे! आप भी आ गईं।" पीरू बाबू ने प्रणाम करने के लिए दोनों हाथ उठाना चाहा तो दाहिना हाथ उठ नही सका।

"नही, नहीं, तकलीफ मत करिए, चद्रमोहन ने हाथ पकड के रोक दिया। लेकिन, यह हुआ क्या ?"

"यही तो समझ नहीं पाता, दाया हाथ एकाएक फड़कने लगा, और बहुत तेज बुखार हो आया है, भीतर से मन बहुत घबरा रहा है। बेहद कमजोरी मालूम दे रही है।" पीरू बाबू की बडी-बडी शिशुवत आखों मे जल भर आया।

"आप रोएं नही। बेटा, डाक्टर बुलाओ।"

चंद्रमोहन वैसे ही बाहर निकल गया। दीपा पिता की आखें अपने आंचल मे पोंछने लगी तो बेटी को देखकर पीरू बाबू की आखों से फिर

आसू निकल पड़े ।

"पीरू बाबू, यह क्या, अधीर क्यों हो रहे हैं ?"

"बेटी को देखकर अधीर हो गया मां, यह काम अभी पूरा नही हुआ, और लगता है मेरे चला-चली की वेला आ गई ।"

"यदि आ भी गई तो अधीर नही होना चाहिए । आप तो जीवन मे तपे हुए व्यक्ति हैं ।"

"इस बेटी का क्या होगा मां ?"

दीपा को बांहों मे घेरती हुई चंद्रमोहन की मां बोली, "इतनी-सी बात के लिए आपकी आंखों में आंसू घोपाल बाबू, इसका भार वही सभालेगा जो अब तक संभालता आया है, वह सर्वशक्तिमान है, उत्तम पुरुष···इसमे हम क्या—आप क्या ? लेकिन आप शीघ्र अच्छे हो जाएंगे ।"

पीरू बाबू कुछ शांत हुए, अंगोछे से आखें पोंछते हुए बोले, "मेरे लिए बहुत बड़ी बात है मां, मैं तो हर तरह मे लाचार हूं, धन-जन, दोनो से असमर्थ !"

"असमर्थ सभी है, भगवान को छोड़कर । नौकरी लग गई, बहुत बडा सहारा मिला । जीवन की बाकी बातें अपने-आप सुलझाई जाएंगी । घोपाल बाबू, आप निश्चित हों, हम लोग भी तो दीपा के साथ हैं ।"

फाटक के पास कार रुकते ही हार्न बजने की आवाज हुई तो दीपा बोली, "डाक्टर आ गए ।"

डाक्टर का बैग लिए आगे-आगे चंद्रमोहन, पीछे-पीछे डाक्टर, आया ।

डाक्टर ने बुखार देखा—१०४ डिग्री हो गया था । फिर रक्तचाप की परीक्षा करके बोला, "हाई ब्लड प्रेशर, और दाहिने अंग में पैरेलिसिस का आक्रमण । लेकिन पीरू बाबू, चिंता की कोई बात नही, आपको मैं ठीक कर दूंगा ।"

पीरू बाबू सहज मुस्कान से बोले, "दवाई दो डॉक्टर, ठीक होना-न होना तो ऊपर वाले पर निर्भर है, वैसे बहुत जी लिया, पैरेलिसिस की बीमारी ! ना-ना, अब बिस्तर पर नही रहना चाहता, डाक्टर मुझे

अंतिम सेज चाहिए, अंतिम, एकदम फाइनल डाक्टर'''।" पीरू बाबू की जबान एकाएक बंद हो गई'''डाक्टर ने फौरन सुई दी, और घंटे-घंटे पर दो तरह की गोलियां खाने के लिए बीस गोलियां।

बाहर बरामदे में निकल दीपा, चंद्रमोहन और उसकी मां को बुलाकर डाक्टर बोला, "सुनो बेटी, बीमारी तो खतरनाक है, पर घबराना मत। खतरनाक इसलिए कहा कि बाबा की उम्र काफी हो गई है, शरीर से दुबले, मानसिक चिंता से परेशान, ऐसी देह कितने धक्के सहेगी ? हो सकता है, इन्हें बिस्तर पर ही कुछ दिनों रहना पड़े। लेकिन वह स्थिति भी मैं अच्छी नहीं समझता। मैं तो पूरी कोशिश करता हूं। चूंकि तुम्हारा इलाज किया है, इसलिए तुमसे स्पष्ट कहने में मुझे संकोच नहीं है, कि तुम हर स्थिति के लिए अपने को तैयार रखो, मन में धीरज रख के। क्यों बेटे ?" डाक्टर ने चंद्रमोहन की पीठ ठोंकी, "यह तुम थे जिसने इस लड़की को जीवन-दान दिया है, और आप ?"

"ये मेरी मां हैं।" चंद्रमोहन बोला।

डाक्टर ने दोनों हाथ जोड़कर मां को आदर से प्रणाम करते हुए कहा, "आपका जैसा लडका मैंने कम देखा है, माता जी।"

"क्यों डाक्टर साहब ?"

"जल में पुरइन के पत्ते की तरह, तुमने खूब निभाया भाई।"

दीपा ने चंद्रमोहन के हाथ में पंद्रह रुपए लाकर पकड़ा दिए, "डाक्टर, आपकी फीस ?"

"नहीं बेटा, पीरू बाबू से मैं फीस नहीं लेता—मेरी बेटी के ये गुरु हैं, उसे सितार सिखाया है, बिना गुरु-दक्षिणा के। आज कलकत्ते के एक कालेज में वह म्युजिक की हेड है, यह मैं कैसे भूल सकता हूं। ये दवा और सुई के सेंपुल हैं—मेरे साथ दूकान चलो, एक दवा और ले आनी है—वहां की दवाई के पैसे दूकान पर दे देना।"

"चलिए !" चंद्रमोहन डाक्टर के साथ कार में वापस चला गया। आधा घंटे बाद जब लौटकर आया तो पीरू बाबू दवा के असर से सो गए थे।

आगन के बरामदे मे बैठकर दीपा, चद्रमोहन और उसकी मां बातें करने लगे। दीपा की आंखें भर आती थी। चंद्रमोहन की मा उसे समझाने लगी, "दीपा, तुम पढ़ी-लिखी, समझदार हो, मैं नहीं समझती कि डाक्टर के सब-कुछ कह जाने के बाद भी कुछ बाकी रह जाता है, जो तुमसे कहा जाए। यह तो बेटी, जीवन का ऐसा सत्य है जिससे बचने की कोई राह नही है। जब बचा नही जा सकता, तो घबरा के, अपने को कमजोर साबित करना उचित नहीं है। ईश्वर ने जीवन दिया है तो मौत भी देगा—अब, जिस रूप मे दे। तुमने तो अपनी मां की मौत देखी है—मैंने अपने दो जवान बेटों की मौत देखी है, छाती पर पत्थर रखकर सहा और भोगा है, जिंदगी तुम्हारे सामने है, मां बनोगी, गोद मे सतान आएगी, तब समझोगी कि सतान का मोह क्या होता है। दो-दो लड़के खोए, पति खोया, तीन-तीन मौतों के घाव इस कलेजे को छलनी किए हुए है, लेकिन करूं तो क्या, बस भी क्या है, अब तो भगवान पर अपने को छोड़ देने के अलावा चारा ही क्या है? हां, कर्म करते रहो, उसमे चूकना गलत है, जितना तुम्हारे भाग्य में होगा वह तो तुम्हारे पास रहेगा ही, जो जानेवाला होगा, उसको तुम-हम रोक भी नहीं सकते। यह एक बहुत छोटी-सी बात है, लेकिन, इसी पर यदि मन को मना लिया जाए तो बहुत-सी तकलीफें अपने-आप समाप्त हो जाती है। जीवन मे संग-साथ की बात जरूर महत्त्वपूर्ण होती है, उसी का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। क्योकि यही साथी जीवन के सुख और दुख दोनो का साझीदार होता है। दोनों को एक-दूसरे के साथ कंधे मिलाकर चलने की जरूरत इसीलिए पड़ती है—इसको खूब ठोक-बजाकर पकड़ना चाहिए। बाहरी रूप आंखों को थोड़ी देर को आकर्षित जरूर कर लेता है, लेकिन, आखिर तक काम उसका गुन ही देता है।"

"जब भाग्य की ही बात करती हो मां, तो ठोकना-बजाना क्या, देखना-परखना क्या?" दीपा बोली।

"नही-नहीं, बेटी, इसीलिए तो मैंने कर्म की बात भी की है। ईश्वर ने बुद्धि और विवेक दिया है, उसका भी कुछ उपयोग होता है।"

"सब सही है मा, किंतु विश्वास भी कुछ होता है, सपूर्ण समर्पण के,

बाद ही शायद कुछ हासिल होता है। चाहे भगवान मे या आदमी मे। भगवान की बात तो एक खास स्थिति पार कर लेने के बाद आती है। पहले तो हम-तुम आमने-सामने होते है—इस विश्वास के बाद यदि हम छले भी जाते है तो मन मे उतनी तकलीफ नही होती। काठ की हांडी अधिक-से-अधिक एक बार ही आग पर चढाई जा सकती है, क्या मैं गलत कहती हूं। समर्पण की दूसरी स्थिति मीरा की थी, गिरधर के लिए, 'कि अब तो बात फैल गई कहा करे कोई, मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई···' इसमे किसी तरह का कोई दावा नही, भीख है, आंचल फैलाई हुई, बेसहारा भिखारिन की प्रार्थना है मां।"

चंद्रमोहन तख्त पर से उठकर, बरामदे मे टहलने लगा। मा दीपा की आखें पोंछती हुई उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरती बोली, "दुनिया मे तुझे कभी कोई तकलीफ न होगी बेटी, तेरी मनचाही बात हमेशा पूरी होगी। आज मैं सच्चे मन से तुझे आशीष देती हू। अपनी चिंता करो। उठो, बाबा के पास बैठो, समय से उन्हे दवा दो। मैं घर चलती हूं, स्नान और पूजा करनी है, तुम भी नहा-धो लेना। बाबा की बीमारी से जीवन अस्तव्यस्त मत करो, यह बीमारी प्राय' लंबी होती है। सो तुम अपना काम समय से करती रहो। क्योंकि बीमार की तीमारदारी ही असली चीज होती है। चंद्रमोहन यही रहेगा। बाबा के पास अभी एक-दो दिनों तक हर समय किसी का रहना जरूरी है। तुम खाना-वाना मत बनाना, चंद्रमोहन नहाने आएगा, तो तुम्हारे लिए खाना लेता आएगा—बस बाबा का ध्यान रखो।"

चंद्रमोहन की मां चली गई तो दीपा और चंद्रमोहन दोनों पीरू बाबू की पलंग के पास कुर्सी रखकर बैठ गए।

कुछ देर इधर-उधर की बीमारी से संबंधित बातें करने के बाद चंद्रमोहन ने दीपा से नहा-धोकर एक कप चाय बनाने को कहा।

"पहले चाय दू।"

"नहीं जी, पहले तुम नहा लो, तब चाय बनाओ।"

"बिना नहाए चाय बनाऊंगी तो नही पीओगे ?"

"यही समझ लो, तुम बेकार दलील करती हो।"

नहा-धोकर कुछ जलपान के साथ दो कप चाय बना बरामदे की तख्त पर रखके दीपा चंद्रमोहन को बुलाने आई।

"हां, वहीं चलो, बाबा सो रहे हैं, हम लोगों की बातचीत में शायद उन्हें बाधा पड़े।" तख्त पर बैठते हुए जलपान देखकर बोला, "जलपान की तो कोई जरूरत थी नहीं?"

"क्यों नहीं थी, सुबह तो आगे की चाय और जलपान वैसे ही छोड़कर तुम दौड़ आए थे। मां को अभी घंटा-डेढ़ घंटा से कम स्नान-पूजा में नहीं लगेगा, तब वो खाना बनाएंगी। तब तक भूखे ही रहते?"

चंद्रमोहन अचार से बेसन के परांठे खाने लगा तो दीपा बोली, "कल चले जाओगे?"

"यही तो सोच रहा हूं, पर समझ में नहीं आता कि करूं क्या।"

"आपत्कालीन स्थिति है, छुट्टी बढ़ाओगे भी तो किस आधार पर?"

"डाक्टर क्या मेडिकल सर्टिफिकेट नहीं दे सकता?" चंद्रमोहन बोला।

"देने को तो दे सकता है, लेकिन गलत काम करने को मैं नहीं कहूंगी। मां कहती है, यह बीमारी लंबी होती है, कल तक कुछ-न-कुछ पता लग ही जाएगा, यदि बुखार उतर गया तब शायद खतरा टल जाए, और नहीं, यदि कल के बाद कुछ अप्रिय हुआ, तो तार दूंगी। वहां तैयार रहना। तब तो आना ही होगा, नहीं तो अकेली मैं इस सागर में डूब जाऊंगी।"

"तुम अशुभ ही क्यों सोचती हो? मैं यहां के अपने एक परिचित को सारी स्थिति बताकर, सहेज जाता हूं, तुम्हारी हर तरह की सहायता हो सकती है।"

"कौन है वे?"

मेरे घर के पास वाले डाक्टर मुकर्जी का लड़का देवेश। मेरा सह-पाठी है, यहीं विश्वविद्यालय में कानून विभाग में लेक्चरर हो गया है।"

"मैं उनके परिवार को जानती हूं, घर में मां, बाप, बेटा, तीन आदमियों का तो परिवार है, बड़ा भाई विदेश में है। बहुत पहले बाबा

बीमार होने की बात इन्होंने बताई तो मैं अपने को रोक भी न सका। बाबा किसके इलाज मे हैं ?"

"डा० चौधरी के। वे मेरे फेमली डाक्टर भी है।"

"हा, ठीक है। वे एक कुशल डाक्टर हैं। अब बाबा की क्या हालत है ?"

"आइए, खुद देख लीजिए।"

"चलिए।" आगे-आगे दीपा, पीछे चंद्रमोहन और उसके पीछे देवेश, पीरू बाबू के कमरे मे दाखिल हुए। पीरू बाबू, आंखें मूंदे चुप-चाप पडे थे। पैरों की आवाज और बातचीत के कारण उन्होंने आखें खोली और देवेश को पहचानते हुए-से देखा।

देवेश ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, पीरू बाबू ने आखों की पलकें गिराकर आशीर्वाद दिया। और चुपचाप ताकते रहे।

चार-पांच मिनट बातें करने के बाद, चंद्रमोहन के साथ देवेश बाहर आकर बरामदे में कुर्सी पर बैठ गया। एक गोल मेज ले आकर दीपा ने दोनों के बीच मे रखा और बाद मे भीतर से ट्रे मे सजाकर जलपान और चाय ले आई।

"अरे रे, यह क्या ?"

"इसे चाय कहते हैं देवेश, लो पीओ।"

"देवेश कुछ झेंपा। दीपा मुस्कराई, तो बोला, "तुम्हारी नखरे करने की आदत अभी गई नही, हालांकि विश्वविद्यालय मे पढाने लगे हो !"

"नही, मेरा यह मतलब नही था चंद्रमोहन, अभी तो घर से तुम्हारे साथ चाय पीकर आ रहा हूं।"

"देवेश जी," दीपा शांत, पर सधे स्वर मे बोली, "छोटे लोगो के घर भी कभी-कभी खाया-पिया जाता है !"

"आपने तो और भी तूल दे दिया।" कहते हुए देवेश ने प्लेट से एक मिठाई लेकर मुंह मे रखी और फिर चाय का प्याला हाथ मे लेकर नमकीन खाने लगा। चाय की पहली घूंट लेकर बोला, "तो कल तुम चले जाओगे ?"

"हां, परेशानी इसी कारण थोडी अधिक है, छुट्टी मुझे अभी अधिक मिल नही सकती।"

"आजकल इमरजेंसी है न, लेकिन इसमें परेशानी की क्या बात है ? हम लोग तो हैं ही।"

"हमने दीपा से कहा था कि किसी भी समय तुम देवेश के पास जा सकती हो, लेकिन इनके सकोची स्वभाव को जानने के कारण मैंने सोचा कि पहले तुम्हें एक बार यहा ले आऊं, इनका संकोच तो टूट जाए।"

"सो तो मैं आ गया, तो आपका संकोच टूट गया होगा दीपा जी ?" देवेश मुस्कराते हुए बोला।

दीपा भी हल्के से मुस्करा उठी।

देवेश फिर कहने लगा, "बाबा जैसे कलाकार की जो प्रतिष्ठा इस नगर में है, चंद्रमोहन, शायद तुम्हें पूरा पता न हो। ऐसे पुरुष की सेवा करके हर कोई अपने को धन्य समझेगा। मैं तो तुम्हें बेहद भाग्यवान समझता हूं कि ऐसे कलाकार का आशीर्वाद तुमको प्राप्त हुआ। आप आजकल करती क्या हैं ?"

"अरे, तुमको नही बताया क्या, ये भी तो ए० जी० आफिस में नौकरी कर रही है।"

"ओह, बहुत अच्छा, यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। आप अपने पैरों पर खडी है, यह तो बहुत अच्छी बात है, बाबा बूढे भी तो हो चले। जीवन की लगभग सारी परेशानिया खत्म हो जाती हैं यदि हम आत्मनिर्भर हों।"

"तुम्हारे बड़े भाई साहब···?"

"वे अमेरिका में है ?"

"उनका तो ब्याह हो गया है ?" चद्रमोहन ने पूछा।

"हां, उन्होंने एक स्वेडिश लडकी से ब्याह कर लिया है।"

"तुम किसी नारमियन से करना !" चंद्रमोहन हंसा।

"नहीं भाई, यदि ब्याह करना ही पड़ा तो मैं विशुद्ध भ लड़की से करूंगा।"

"वैसे इरादा है नही क्या ?" चंद्रमोहन ने कहा ।

चाय पीकर खाली प्याला रखते हुए देवेश फिर बोला, "फिलहाल यही समझो ।"

"तो दीपा जी, अब तो मुझे सूचना भेजने मे आपको कोई सकोच नही होगा ।"

दीपा ने कुछ कहा नही, तो चंद्रमोहन बोला, "समय पर सारी बातें हल हो जाती हैं देवेश, यू दुःख मे तो आदमी बिना बुलाए जाता है ।"

"पर उसे खबर हो तब तो ?"

"हा, यह खबर तुम्हें मिल गई, आगे तुम्हारा दायित्व इस पर निर्भर नही करता कि दीपा तुम्हें सूचना दे ।"

"मैं हार गया चंद्रमोहन, मैं कानून पढाता हूं, तुम निर्णय करते हो, जीत तुम्हारी हर हालत मे होनी ही है । अब चलूगा ।"

"देवेश ने खड़े होकर दीपा को हाथ जोड़ा । दीपा ने भी प्रत्युत्तर दिया । चद्रमोहन उसे फाटक तक छोड आया । दूसरे दिन पीरू बाबा की हालत कुछ सुधरी. बुखार १०० डिग्री तक आ गया । दाहिना अंग पूरी तरह लकवे से प्रभावित हो गया था । बुखार कम था, इसलिए वे पहले से अपेक्षाकृत शांत और पूरी तरह होशोहवास मे थे ।

दीपा ने दफ्तर से पंद्रह दिनो के लिए छुट्टी ले ली थी । डाक्टर के यहा से चद्रमोहन दिन के दस बजे दवाइयां लेकर लौटा । डाक्टर ने आज दवा बदली थी । कैप्सूल के साथ कोई मिक्सचर भी दिया जा रहा था ।

"भीतर से तबीयत कैसी है बाबा ?" चंद्रमोहन ने दवा पिलाकर पूछा ।

पीरू बाबू थोड़ा मुस्कराकर बोले, "डाक्टर क्या बोला ?"

"डाक्टर कह रहा था कि बुखार कम हो गया, तो बीमारी काबू में आ जाएगी ।"

पीरू बाबू फिर मुस्कराए । चंद्रमोहन उनका मुंह देखता रहा तो पीरू बाबू बोले, "इस बीमारी का उपचार अंग्रेजी दवाइयों में नही है,

केवल आयुर्वेद में है, और वह उपचार भी काफी लंबा होता है।"

"किसी वैद्य को बुलवाया जाए।"

"नहीं बेटा नहीं, मैंने तुम लोगों को बताया, जिससे तुम लोग अधिक चिंतित मत हो। इस उम्र का यह रोग जाता नहीं है, अब तो यह देह जितने दिनों चल सके'''तुम्हारे साथ क्या मां भी जा रही हैं?"

"पहले इरादा था, पर वे रुक जाएंगी। कह रही थीं कि आपकी तबीयत में सुधार हो जाने पर दो-चार दिनों के बाद वे हरदोई ही चली जाएंगी, आप कहें तो मैं भी छुट्टी बढ़ा दूं।"

"नहीं, नहीं बेटा, छुट्टी बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। दवाइयां वगैरह दीपा ला ही देगी, विशेष कोई जरूरत पड़ी तो आ जाना। मेरे लिए नहीं—दीपा को सभालने के लिए, अपनी ओर से मुझे इतना ही कहना है। दीपा का सारा भार तुम पर है।"

चंद्रमोहन खाट से कुर्सी सटाकर उस पर बैठा था। पीरू बाबू छत की ओर ताकते हुए कुछ सोच रहे थे तो चंद्रमोहन ने टोका, "बाबा, रुपए'''।"

"रुपए-पैसों की बात दीपा से करो बेटा। यह सब वही जानती है। कमाती वह है, खर्च भी वही करती है।"

बगल में बैठी हुई दीपा की ओर जिज्ञासु भाव से चंद्रमोहन ने देखा।

"अभी तो पास बुक में मेरे पांच सौ हैं, वे चुक जाएंगे तो देखा जाएगा।"

"इस समय घर में कितना है?"

"घर में कुल सत्तर रुपए थे, सुबह तुमको पचास दिए थे, तुमने तीस लौटाए थे, अब पचास बचे।"

"काम करती हो एकाउंट्स में, जोड़-घटाने का यह हाल।" चंद्रमोहन मुस्कराया और सौ-सौ के दो नोट निकालकर दीपा की ओर बढ़ाते हुए बोला, "लो, इन्हें भी रख लो।"

"इतने रुपए क्या होंगे?"

"पकड़ो भी तो, जो कहता हूं करो, हर समय तर्क नहीं किया करते ?" चद्रमोहन ने घूरकर दीपा को देखा।

आज्ञाकारी शिशु की तरह रुपए पकड़ती हुई दीपा बोली, "तुम कहीं जा रहे हो क्या ?"

"हा, दो घटे के लिए ऑफिस जा रहा हूं, मेरे यहां के डिस्ट्रिक्ट जज के फड का कुछ काम है। दो बजे तक आ जाऊंगा।"

चद्रमोहन चला गया, लेकिन जंगले के पास खड़ी होकर दीपा चंद्रमोहन का जाना देखती रही, तब तक जब तक वह मुख्य सड़क पर जाकर रिक्शे पर न बैठ गया।

पीरू बाबू की तबीयत में उस दिन काफी सुधार रहा। वे दिन में आराम से लेटे रहे। भीतर कोई परेशानी नहीं थी।

शाम को, चंद्रमोहन जाने से पहले पीरू बाबू को प्रणाम करने आया। पीरू बाबू का पैर छूने लगा तो वे रोने लगे, "अरे बाबा ! यह क्या ?" पीरू बाबू बोले कुछ नहीं, इशारे से चंद्रमोहन को पास बुलाया, उसके सिर और गालों पर हाथ फेरकर आंख के इशारे से जाने की अनुमति दी।

दीपा ने उसके पैर छुए और फाटक तक उसे पहुंचाकर बोली, "कब आओगे ?"

"अगर मौका मिल सका तो शनिवार की शाम को जरूर आऊंगा, पर बाबा की तबीयत के बारे मे तुम मुझे रोज एक पोस्टकार्ड भेज दिया करना। तुम्हारी अलमारी मे एक दर्जन पोस्टकार्ड रख दिये है।"

दीपा कुछ देर चुप रहकर बोली, "सुनो !"

"बोलो !"

"कुछ रुपए पास बुक से निकाल के रख लू ?" चंद्रमोहन एकाएक चुप लगाकर कुछ सोचने लगा, तो दीपा ही बोली, "यूं तो, तुमने दो सौ दिया ही है, पर बीमारी की बात है, कब कैसी जरूरत आ पडे, इसी से सोचती हूं कि···"

"अगर मन कहता है तो और निकाल लो।"

"कितना ?" दीपा ने सहज भाव से पूछा।

"सौ-दो सौ और निकाल लो।"

"हां, मैं भी यही सोचती हूं।"

"पर सुनो, अगर कोई बात हो भी तो घबराना मत, फौरन तार भेजना या देवेश के पास निस्संकोच चली जाना।"

"अब जाओ। नहीं तो ट्रेन छूट जाएगी।" कलाई की घड़ी देखती हुई दीपा बोली, "देखो आजकल गाड़ियां बहुत समय से चल रही हैं—छह-दस हो गया, छह-बीस पर गाड़ी छूट जाती है।" चन्द्रमोहन ने विदा देती हुई दीपा की डबडबायी आंखों में एक बार फिर देखा और बायीं ओर घूम गया।

दीपा फाटक की ऊपरी लकड़ी पर कनपटी टेक खड़ी हो गई और जाते हुए चंद्रमोहन के पीछे निहारती रही—तब तक जब तक वह मुख्य सड़क पर पहुंच, मुड़कर दाहिने मकान की ओट में न हो गया।

सोलह

सड़क पर कोई रिक्शा नहीं मिला, चन्द्रमोहन तेज चाल से प्रयाग स्टेशन की ओर बढ़ रहा था। चुंगी आई, इंजीनियरिंग कालेज की ओर जाने-वाली सड़क पार की, फिर भी कोई रिक्शा नहीं मिला। प्रयाग स्टेशन यहां से अब था ही कितनी दूर? तभी इंजन की सीटी सुन पड़ी। चंद्रमोहन ने चाल तेज की। स्टेशन की ओर जैसे ही मुड़ा कि प्लेटफार्म पर गाड़ी लगी हुई दिखी, दौड़ा लेकिन, टिकट घर तक पहुंचते-पहुं

गाडी छूट गई। खिड़की पर अटैची रख चद्रमोहन ने सुस्ताते हुए टिकट बाबू से पूछा, "अब प्रतापगढ़ के लिए गाडी कब मिलेगी ?"

"भोर मे ठीक छह बजे।" चंद्रमोहन ने अटैची उठायी, एक खाली रिक्शे पर बैठ गया। रिक्शा दीपा के घर पर रोक उतर गया। रिक्शे-वाले को पैसे दे भीतर दाखिल हुआ तो दीपा दौड़कर पास आई, "क्या हुआ, गाडी छूट गई क्या ?"

"हां, पहुंचते-पहुंचते छूट गई ?"

"अरे बाप रे, दूसरी गाडी कब मिलेगी ?"

"सुबह ठीक छह बजे।"

"चलो, नौ बजे तक तो वहां पहुंच जाओगे, और अदालत में दस बजे तक।"

"हां, उसमें कोई कठिनाई नही है, इस समय चला जाता तो नहा-धोकर आराम से अदालत पहुंचता।"

"लेकिन अच्छा ही हुआ कि ट्रेन छूट गई। आज भीतर से मन भी नही करता था जाने को।" दीपा चंद्रमोहन की आंखों में देखती हुई बोली, "फिर घर जाओगे ?"

"जाना ही होगा, रहूंगा कहां ? रात कैसे बीतेगी।" चंद्रमोहन ने सहज भाव से उत्तर दिया।

"रात यहा नही बीत सकती ?" दीपा धीमे से बोली।

"यहां ! और दस कदमों पर मां वहा ?"

"समझ लो प्रतापगढ मे हो। गाड़ी मिल गई होती तो क्या होता ?"

पल-भर सोचकर चंद्रमोहन बोला, "किंतु मां को मालूम हो जाएगा; तब ?"

"हां, इसका भय हो तो जाओ, मैं नही रोकूगी।"

चंद्रमोहन कुछ नही बोला, और अटैची दीपा को पकडा दी। अटैची पकड़ती हुई बोली, "मैं तो चाहती थी कि आज तुम प्रतापगढ़ न जाते तो···?"

"तो···?"

"रख दिया नहले पर दहला ! कमाल है !"

"तुम हंसी करते हो, मैं अपनी आत्मा की बात कहती हूं। आखिर तुम्हे मेरी बात पर कब विश्वास आएगा ? ह्वाट आइ से, आइ मीन...।'

तकिये के नीचे रखी हुई घडी देख दीपा बोली, "साढ़े सात बज गए, पता ही नही चला। खाना ले आऊं ?"

"खाना ?"

"और क्या, खाना नही खाओगे क्या ? घर जाकर मां को कष्ट देते, जानते ही हो कि वे एक जून भोजन बनाती हैं।"

"तकलीफ नही देना है, भोजन तो मेरे साथ मे है ही।"

"तो वही खा लो, कुछ मुझे भी उसमे का चखा दो।"

"थैले में से निकालो।"

"कपडे नही बदलोगे ? फिर पेंट-कोट की क्रीज मुड़ जाएगी तो कहोगे, तुम्हारे पास बैठने से क्रीज खराब हो गई !" दीपा ने अलमारी पर से अटैची उतारकर चद्रमोहन के आगे खोल मेज पर रख दी। और कोट की जेब मे हाथ डाल ताली निकालने लगी। ताली ऊपर की भीतर वाली जेब मे होगी, दीपा जानती थी। चद्रमोहन ने कोई प्रतिरोध नही डाला। ताली निकाल, अटैची खोल के उसमें से पायजामा निकाल चद्रमोहन को थमाते हुए कहा, "लो इसे पहनो, मैं पानी ले आऊ, और कोट भी निकालकर टांग दो।"

चद्रमोहन खड़े होकर कपड़े बदलने लगा। दीपा चौके मे गई और थाली में परसकर खाना, तथा गिलास में जल लेकर आ गई। धरती पर बिछी हुई शीतल पाटी पर थाली रखकर बोली, "आओ ! अरे, अभी कोट नही उतारा।"

"सर्दी लगेगी।"

"फुर्ती से उसके पीछे जा दोनों कंधों पर से कालर के पास कोट पकड़कर दीपा ने चंद्रमोहन के देह का कोट उतारा, हैंगर में लटकाकर खूंटी पर टांग दिया और सिरहाने तय किये हुए ऊनी शाल से उसकी देह ढकती हुई बोली, "लो महाराज, न जाने तुमको कितनी सर्दी लगती है !"

चंद्रमोहन शाल ओढकर, शीतल पाटी पर से गिलास उठा, बरामदे में जाकर हाथ धोकर बैठ गया। दीपा ने चद्रमोहन के खाने मे से पूरी-तरकारी खोलकर, एक तश्तरी मे रख दिया।

"आओ चलो।" चंद्रमोहन बैठते हुए बोला।

"तुम खा लो, मैं बाद मे खाऊंगी।"

"चलो जी, बाद में खाऊंगी। बाद मे क्या खाओगी ?" चद्रमोहन उसकी कलाई पकड़कर थालो में खीचते हुए बोला, "मैं खाऊंगा और तब तक तुम मुंह ताकोगी ?"

हंसती हुई दीपा थाली के परांठे मे से कौर तोड़ती हुई बोली, "दरअसल, तुम्हें खाते हुए देखना भी मुझे बड़ा रुचता है, छोटा-सा मुंह, छोटे-छोटे कौर, भगवान ने क्या सूरत गढी है !"

"इस शाल मे कैसा लगता हूं।" खाते हुए चद्रमोहन बोला।

"असल मे भगवान तुमको औरत बना रहा था, उस समय लगता है उन्हें नीद आ गई होगी और तुम मर्द बन गए होगे।"

"यदि औरत होता तो तुमसे भेंट कैसे होती ?"

"सच है, लेकिन अब लगता है कि यदि यह भेंट न हुई होती तो शायद अधिक अच्छा होता।"

"चंद्रमोहन कुछ नही बोला और चुपचाप खाता रहा। दीपा खाती कम, चंद्रमोहन को खाते हुए देखती अधिक थी।

खा-पीकर चंद्रमोहन फिर उसी कुर्सी पर बैठ गया। दीपा जूठे बर्तन उठाकर आंगन मे रख आई और हाथ धो खाट पर बैठती हुई बोली, "अभी तो तुम प्रतापगढ नहीं पहुंचे होते ?"

"नही, पर नजदीक पहुंच रहा होता।"

"काले गाउन मे तुम इजलास में बैठे हुए कैसे लगते होगे ?"

"दो-एक दिन के लिए मेरे साथ प्रतापगढ़ चली चलो, वहां रहकर देख लेना।" चंद्रमोहन अपने व्यंग्य पर स्वयं ही मुस्कराने लगा।

"इसमें मुस्कराने की क्या बात है, अगर बाबा बीमार न होते तो मैं चली चलती।"

"और कोई यदि पूछता कि मैं तुम्हारा कौन हूं, तो क्या उत्तर

देती ?"

"वन की राह मे राम के साथ चलती हुई सीता ने जो उत्तर कुछ स्त्रियों को दिया था।

खामोश होकर चंद्रमोहन दीपा को देखने लगा तो दीपा ने ही पूछा, "क्या सोचने लगे ?"

"सोचने लगा कि सीता को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी थी।"

आगे की छोटी-सी मेज पर दाहिनी कुहनी टेकती हुई दीपा एकाएक गभीर होकर बोली, "भूमि मे मृत्युशैया पर पड़े रावण के पैरों के पास जब लक्ष्मण खड़े हुए तो रावण ने अपनी मुदी पलकें खोलकर, लक्ष्मण को अनुभव की सीख देते हुए कहा—सुना लक्ष्मण, काल को मैंने बाधना चाहा था, मुझमे इतनी सामर्थ्य भी थी, पर मैं टालता गया। और आज असहाय होकर उसी काल की प्रतीक्षा कर रहा हूं। सो कोई भी काम कल पर मत टालना, समय किसी की प्रतीक्षा नही करता'''।"

"तुम्हारी बात समझ में नही आई।"

"राम युगावतार थे," दीपा कहने लगी, "सीता धरती-पुत्री थी। राम द्वारा रचित, इस खेल की साझीदार, राम की सहायिका, एक अंग। समाज को दिखाने के लिए राम को उनकी भी अग्नि-परीक्षा लेने की जरूरत पड़ गई। वे देवी थी, हर पहलू से निर्दोष, अग्नि-परीक्षा में विजयी होकर भी वे धरती मे तिरोहित हो गयी। मैं तो साधारण नारी हूं, लेकिन कभी तुमने वह प्रश्नचिह्न मेरे सामने लगाया तो चिता में कूदने मे मैं कतई संकोच नही करूंगी, लेकिन इस बात को कल पर क्यों टालो, यदि मन मे कही भी कुछ हो तो साफ कर लो।" चद्रमोहन हल्की-सी मुस्कान के साथ दीपा की ओर ताकता रहा तो कुछ देर दीपा भी चद्रमोहन को उसी तरह देखने के बाद बोली, "मेरी बात का तुमने कोई उत्तर नही दिया ?"

"उत्तर, मैं नही, समय देगा दीपा। समय अपने प्रवाह मे शायद कभी हम दोनों से एक साथ इस प्रश्न का उत्तर मांगे, मैं उसी समय की बात कह रहा हूं। उस राम के द्वारा यह प्रश्न सीता मे नही किया गया जो युगावतार थे, वरन् उस राम के द्वारा किया गया था जो

मर्यादा मे बंधे हुए थे, एक आवश्यक सामाजिक संदर्भ से जुड़े हुए मर्यादा पुरुषोत्तम राम थे।"

दीपा कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई तो उसके आंचल का एक छोर पकड़ कर चंद्रमोहन बोला, "कहां ?"

"कहीं नहीं, यहीं हूं। बालों में तनिक कंघी कर लूं, इन्हें खींचने-तानने का समय हो आ आया। देखो, नौ बज रहे हैं, इन्हे भी भोजन दे दूं।"

बाहर खुलने वाली खिड़की के पास लगे हुए एक बड़े से शीशे के सामने जाकर दीपा खड़ी हो गई। दोनों हाथों से बालों का जूड़ा खोल दिया। लंबे-लंबे घने बाल कमर तक लहरा गए। शीशे के बगल मे रखे हुए काले-चौड़े कंघे को दीपा बालों पर फेरने लगी। पांच-सात बार ऊपर से नीचे की ओर कंघा चलाकर बालों को बाएं सीने पर आगे की ओर कर लिया। एकाएक कंघा चलाती हुई ही चंद्रमोहन की ओर घूम गई और खड़ी हो, उन काले रेशमी बालों पर कंघा चलाने लगी।

"तुम्हारे बाल भी क्या हैं, कमाल है, जूड़ा कर लेती हो तो पता ही नहीं चलता। इतने लंबे कैसे हो गए ?"

"तुम इतने सुंदर कैसे हो गए ?" बालों पर चलनेवाला हाथ दीपा ने रोक दिया ?

"मैं, मैं सुंदर नहीं हूं दीपा—यह तुम्हारा दृष्टि-दोष है।"

"हां।" दीपा तनिक रुककर बोली, "मैं मानती हूं, पर यह दोष दूर कैसे हो ? जो नहीं दीखता उसे कैसे देखूं ?" और जो देख नहीं सकती, उसके लिए मन में कोई परेशानी नहीं है, किंतु जो दिख रहा है, वह सुखद और प्रीतिकर है। यह जब नहीं दिखेगा तभी मन मे परेशानी होगी। इसीलिए, ईश्वर से प्रार्थिनी हूं कि यह दृष्टि-दोष मेरे जीवन-पर्यंत बना रहे।"

दीपा रुक गई। पल-भर चंद्रमोहन की आंखों मे देखने के बाद बालों पर फिर कंघा फेरने लगी—ऊपर से नीचे तक, बाएं हाथ मे बालों को लटका कर। और चंद्रमोहन पलंग पर करवट लेटा हुआ चुपचाप दीपा को निहारता रहा।

लगभग दस मिनटों के बाद दीपा ने कंघी फेरना बंद किया और उसमें टूटकर फंसे बालों को साफ कर खिड़की से बाहर फेंक दिया। कंघा अपनी जगह पर रख, बालों की चोटी गूथना शुरू कर दिया। तेज हाथों से।

"इस वक्त कंघा करने का तुक मेरी समझ में नही आया।" चंद्रमोहन ने पूछा।

"तुक की बात ये है कि यही बालो का भोजन है। इन्हें कायम रखने का यही ढंग है, अन्यथा, ये टूटने लगते है, समय से पहले अपनी जगह छोडने लगते है।" चोटी करके दीपा जब फिर कुर्सी पर आकर बैठी तो चंद्रमोहन ने कहा, "और ललाट पर बिंदी नहीं लगाओगी, सूना लग रहा है।"

"ओह!", हल्की-सी मुस्कराहट के साथ दीपा उठ गई। शीशे के बगल मे रखी हुई—लाल बिंदी वाली पेंसिल से ललाट पर छोटी-सी बिंदी लगाकर चंद्रमोहन की ओर घूमकर दिखाती हुई बोली, "अब ठीक है?"

"ना, मैं आऊं?"

"आओ।"

चद्रमोहन खाट पर से उठकर दीपा के पास खड़ा होकर बोला, "पेंसिल मुझे दो।"

दीपा ने लाल टीकेवाली पेंसिल चंद्रमोहन को पकड़ा दी। दीपा से सटकर खडा हो, बाएं हाथ से उसके सिर का पिछला हिस्सा पकड़, दाहिने हाथ से उसके ललाट पर की बिंदी को पेंसिल से बड़ा करने लगा—हल्के हाथ से रुक-रुककर, अलग हट-हटकर एक-दो बार, देखते हुए चवन्नी के आकार से थोड़ा-सा बड़ा कर दिया, पूरनमासी के उगते हुए चंद्रमा-सा गोल, रक्ताभ टीका, दीपा का कोमल, गोरा मुंह, गुलाब की तरह खिल गया। चंद्रमोहन दीपा को पल-भर निहारता ही रह गया।

"हो गया?"

"हां।" चद्रमोहन ने दीपा के दोनों कधे पकड़कर उसका मुह शीशे

की ओर घुमा दिया ।

दीपा ने शीशे में मुंह देखा, तो एकदम से लजा गई । चेहरा हल्के गुलाबी रंग से भर गया ।

"कैसा लगा ?" चंद्रमोहन ने अपने हाथ दीपा के दोनों कधों पर रख दिए।

चंद्रमोहन की आंखों में देखती हुई दीपा बोली, "सफेद माग वाले ललाट पर यह लाल टीका, अकेला लगता है—और हर अकेला अपने में छोटा होता है ।"

"सफेद मांग तो समय पर सिंदूर से भरेगी, फिलहाल यह टीका कैसा लगता है ?"

दीपा की आंखों मे जैसे आलस्य भर आया था । बिना तर्क किए उसने चुपचाप चंद्रमोहन की आखो में देखा । चद्रमोहन ने अपनी दोनों बाहें फैलाईं । दीपा चुंबक की तरह खिचकर उन फैली हुई बाहों में समा गई ! चंद्रमोहन ने एक हाथ से दीपा की ठुड्डी पकड़कर ऊपर उठाई । आम की फांक-सी बड़ी-बड़ी आखें, एक-दूसरे पर ठहर गईं । पल-भर निहारने के बाद, चंद्रमोहन ने दीपा के बंद होंठों पर अपने होठ रख दिए । गर्म, नर्म ओठ, एक-दूसरे को छूकर सट गए । सम्मोहन मे डूबती हुई दीपा की आंखों की पलकें अपने-आप जैसे सम्पुट मे बद हो गईं—चंद्रमोहन ने दीपा को बांहों में बांध लिया ।

घर की ईंट-ईंट में जैसे एक थरथराहट भर गई, दीपा नख-शिख से कंपित हो गई, शिरा-शिरा में सिहरन भर गई ।

साक्षी हों वसंत का यह निरभ्र आकाश, बगिया मे बौरों से लदी हुई आम की डालें, घर की दीवारों के भीतर रात का यह सन्नाटा, और साक्षी हो संपूर्ण की यह बेला, जिसमें इतने दिनों का यह लवा धीरज आज अनायास टूट गया था ।

ओठों को अलग करते हुए चंद्रमोहन ने उस मुखछवि को एक बार फिर निहारा ।

"इतनी रूपराशि आज कहां से एकाएक भर गई ?"

"तुम अब तक कहां थे ?" दीपा ने हल्के से पूछा ।

"तुमने खोजने की कोशिश ही नहीं की।"

"आओ चलें।

चंद्रमोहन दीपा को बांहों में लिए-लिए ही खाट की ओर बढ़ा। चद्रमोहन पलग पर बैठा, दीपा कुर्सी पर बैठ गई।

"वहा क्यो, मेरे पास आओ।" चद्रमोहन ने उसकी कलाई पकड़कर पलंग की ओर खीचा।

पलग की ओर हल्की-सी झुकी हुई दीपा चुपचाप चंद्रमोहन की ओर देखती रही।

"आओ मेरे पास आओ, पलंग पर।" चद्रमोहन ने बात दोहरायी।

"नहीं, गगाजल, वहां अभी नहीं।"

"अभी नहीं ?" चंद्रमोहन ने विस्मय से पूछा।

"हा, अभी नहीं।" दीपा धीरे से बोली।

"क्यो ?"

"ऐसे ही।"

सागर का तूफान जैसे एकाएक ठहर गया। चंद्रमोहन ने दीपा का हाथ छोड़ दिया। संचारित होने वाली विद्युत की धारा कट गई। दीपा कुर्सी से पीठ टेक चंद्रमोहन की ओर चुपचाप देखने लगी। चद्रमोहन दीपा को निहारने लगा।

"ऐसे मत देखो, मुझे डर लगता है।"

"मैं जानवर नहीं हूं, डरो नही।" चंद्रमोहन मुस्कराते हुए उठ गया।

"कहा जा रहे हो ?"

"अभी आया।" वह बाहर आंगन मे निकल गया। बाथरूम गया, हाथ-मुह धोया, और तब वापस आ दीपा की कुर्सी पर बैठा तो मन कुछ शांत हुआ। घडी देखी।

"समय क्या हुआ ?"

"एक बज रहा है।"

"चार घटे और हैं ?"

"हा।" चंद्रमोहन बोला, "दो आरजू में कट गए, दो इंतजार मे।" उत्तर सन्नाटे को भेद गया। चंद्रमोहन चादर ओढ़कर दोनों बाहों को

सिर के नीचे दबा, छत की ओर देखते हुए चित लेट गया।

दीपा चंद्रमोहन की ओर कुछ देर देखने के बाद उठ गई और चौके में जा दो कप चाय बनाकर ले आई। प्याला चंद्रमोहन की ओर बढ़ाती हुई बोली, "लो चाय पीयो ?"

"अरे वाह !" चंद्रमोहन ऊपर से खुशी जाहिर करते हुए बोला, "यही तो चाहता था।"

"चाहते थे तो कहा क्यों नहीं ?"

चाय की एक चुस्की लेते हुए बोला, "वाह ! क्या चाय बनी है !"

"मेरी बात का उत्तर दो।"

दूसरी चुस्की ले, दीपा की ओर देख मुस्कराते हुए बोला, "बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून।"

"दीपा कुछ नहीं बोली। चाय खत्म कर चंद्रमोहन फिर बोला, "ताश है ?"

"क्यों ?"

"हों तो रमी खेलते, वक्त कैसे कटे ?"

"कल दिन-भर तुम्हें अदालत में बैठे रहना होगा, कुछ देर सो लो, नहीं तो मुकदमे कैसे सुनोगे ?"

चंद्रमोहन मुस्कराकर बोला, "सोने को बहुत रातें मिलेंगी, लेकिन इस तरह से तुम कहां मिलोगी ?"

"मैं दूसरे कमरे में चली जाऊं ?"

"तुम्हारा मन करता हो तो चली जाओ, पर मैं ऐसा नहीं चाहूंगा। जिसके लिए घर नहीं गया वही पास नहीं रही, तो रहने से क्या फायदा ?"

"मैं यहां बैठी हूं तो तुम्हें सोने में बाधा क्या है ?" दीपा कुर्सी पर से उठ गई और बगल के बक्से में रखा हुआ लिहाफ चंद्रमोहन को ओढ़ाती हुई बोली, "गर्मी लगेगी तो आनन्द आएगा, और तब तुम [illegible] हो।"

[illegible] ना उसका बचाव ले, ओढ़कर फिर दुबारा कुर्सी पर बैठ गई, [illegible] भी उठकर बैठकर दीपा से बोला, "आज भी मैं तुम्हारी [illegible] एक बात मानो।"

"यह क्या कह रहे हो ?"

"यदि सुनना चाहो तो कहूं।"

"कहो !"

"ललाट पर का टीका मिटा दो !"

"क्या, अब अच्छा नहीं लगता ?"

"पहले मिटा दो तब बताऊंगा।"

"तुम अपने हाथ से मिटा दो।"

फुर्ती से चंद्रमोहन उठा और कुर्सी पर रखी हुई तौलिया से दीपा के ललाट की ओर झुका। दोनों हाथ अपने और चंद्रमोहन के बीच मे फैलाकर उसे रोकती हुई दीपा बोली, "अरे ! सचमुच मिटा दोगे क्या ?"

लेकिन चद्रमोहन माना नही। दीपा के रोकने के बावजूद उसने तौलिया से ललाट पर से टीका पोंछ दिया। फिर वापस पलंग पर लिहाफ ओढते हुए बोला, "अब ठीक है, बेमतलब के देख-देख के मन परेशान हो रहा था, लेकिन गलती हर किसी से होती है।"

"गगाजल !" दीपा के स्वर मे जैसे पछतावा भर आया था।

"इतना ही तो भूल गया था दीपा, कि इस घर के लिए मुझे केवल गंगाजल होना चाहिए—एकदम शीतल, मैं दिग्भ्रमित हो गया था, अपनी इस देह के आगे झुक गया था, जिसमे गर्म लहू बहता है। दीपा, मैं अपनी असलियत पर उतर आया था—अवस होकर। लेकिन इसका पछतावा मुझे जीवन-भर रहेगा।"

दीपा चुपचाप टकटकी लगाए चंद्रमोहन को ताकती रही। चंद्रमोहन भी वैसे ही दीपा को ताकता रहा। फिर थोड़ी देर बाद आखें मूद ली।

कुछ देर बाद आंखें खुली तो देखा, दीपा कुर्सी पर वैसे ही सिकुड़कर सो रही है। घड़ी देखी तो ठीक पाच बज रहे थे।

वह चुपचाप धीरे से उठा। बाथरूम गया और लौटकर कपड़े पहन अपनी अटैची ठीक कर धीरे से दीपा का सिर हिलाकर जगाया।

"आंख खोल, चंद्रमोहन को तैयार देख हड़बड़ाकर दीपा खडी हो गई, तो चंद्रमोहन बोला, "मैं जा रहा हूं, साढ़े पाच बज रहे है।"

"मुझे पहले क्यो नही जगाया, ठहरो चाय बनाती हूं।"

"नहीं, अब समय नहीं है, मैं चला, बाबा की तबीयत का समाचार देती रहना, मैं प्रतीक्षा करूंगा।"

दीपा चंद्रमोहन से सटकर खड़ी हो, दोनों हाथ चंद्रमोहन के कंधों पर रखके, अपना मुंह, उसके मुह की ओर उठाती हुई बोली, "ऐसे ही चले जाओगे ?"

"कैसे ?"

उत्तर मे दीपा चंद्रमोहन के दोनों गालों पर अपने दोनों हाथ रखकर बोली, "कुछ दोगे नही ?"

"मेरे पास अब देने को बचा क्या है ?" चंद्रमोहन दीपा के याचक होंठों को चूमने के बजाय उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला।

"लेकिन मैं पुरुष नही हो सकती !"

"अब चलते समय, तुम्हें मेरे अपमानित पुरुष की जरूरत कैसे महसूस हुई।" और दीपा के दोनों हाथों को अपने कधो पर से हटाकर वह दरवाजे की ओर बढ़ गया।

सत्रह

इलाहाबाद

प्रिय गंगाजल,

इस बार तुम रूठकर गए हो, अब मेरे मन मे कोई संदेह नही रहा। जाते समय मैं जो कुछ भी तुम से चाहती थी, न पाने पर अपनी

स्थिति समझ गई। यह मेरा विस्मरण था कि तुम्हारे पांव नहीं छू सकी।

रोज डाकिए का इन्तजार करती हूं कि तुम्हारा पत्र आए, लेकिन डाकिया जब घर के सामने से गुजर जाता है तो मन मसोसकर रह जाती हूं। डाकिया घर के सामने से चला जाए तब उसे टोकना कितनी बड़ी बेवकूफी है, पर यह बेवकूफी बार-बार हो जाती है। दस दिन हो गए और तुमने कुशल-क्षेम का एक कार्ड तक न डाला, तुम्हारा मन कैसे मान जाता है?

अनजाने में मुझसे कुछ हो गया हो तो नहीं कह सकती, लेकिन जानबूझकर मैंने तुम्हें रूठने का कोई अवसर नहीं दिया है। हां, उस रात के बाद से तुम्हारा रुख देखती हूं तो मन कांप जाता है, 'एइ जो हिया थरो-थरो, कांपे आज एमन करो।' इतनी सावधानी, श्रम और लगन से बनाए हुए उस घरौंदे का अब क्या होना है?

मैं व्यावहारिक नहीं हूं। अब तक जो भी संस्कार मुझे मिले हैं, वे बाबा और मां से मिले हैं। उन्हीं के माध्यम से मैंने संसार को देखा है। इसके अलावा मैं कुछ नहीं जानती। बाबा और मां को, एक-दूसरे के प्रति अपनी सारी निष्ठा, नेह-छोह से समर्पित पाया है। उसकी कितनी छाप मुझ पर पड़ी है, यह कैसे बताऊं, पर उन लोगों के बाद, यदि किसी का जाना है तो तुमको, क्योंकि तुमने मुझे जीवन दिया है, यह स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है। इसीलिए मेरे आगे तुम्हारे सिवा और कोई भी विकल्प नहीं है। मेरे लिए विकल्प का होना, लतर का अपना सहारा छोड़कर ढह जाना, छितरा जाना है। कहीं न, अपने से ही कोई भला चकनाचूर होना चाहेगा? आज तक तुमसे पाती ही रही हूं, बदले में तुमको कुछ दिया नहीं है। दे भी क्या सकती हूं? मैं तो स्वयं याचिका रही हूं, और रहूंगी, लेकिन अब एक प्रश्न सामने आ रहा है कि जिंदगी शुरू कैसे होगी? उस सिलसिले में, उस रात के बाद से मेरा तो आत्मविश्वास जैसे हिल गया है। तुम जज हो, निर्णय बदलना तुम नहीं जानते, इसीलिए इतना निवेदन करना चाहती हूं कि निर्णय लेने से पहले, मेरी भी फरियाद सुनने का

एक अवसर मुझे जरूर देना। वावा के स्वास्थ्य मे अभी कोई सुधार नही है। मेरी भी छुट्टी समाप्त होने को आई। सोचती हू कि इन्हे घर मे अकेले छोड़कर कैसे जाऊगी ? यदि दफ्तर न जाऊ तो खर्च कैसे चलेगा ? क्या करूं, कुछ समझ मे नही आता। उस कानून पढ़ाने वाले अपने मित्र देवेश मुकर्जी से तुमने नाहक परिचय कराया। मैंने उन्हे एक दिन घर आने के लिए परोक्ष रूप से मना कर दिया। मैंने यहां तक कहा कि वे आने का व्यर्थ कष्ट न करें, कोई आवश्यकता पड़ेगी तो मैं उनको सूचना दे दूगी, पर वे मानते नही है, किसी-न-किसी बहाने मेरे पास आ जाते है। सोचती हू, गले की यह मछली कैसे निकले !

मेरा आदर भरा प्रणाम लो।

तुम्हारी ही
दीपा

प्रतापगढ

प्रिय दीपा

तुम्हारा पत्र पाच दिन पहले मिला था। वावा के स्वास्थ्य मे कोई सुधार नही है, यह जानकर मन थोड़ा सोच मे पड गया है। यहा कई लोगों से मैंने इस वारे में वातचीत की है। लोगो का कहना है, इस उम्र का पक्षाघात, घातक से अधिक कष्टदायक होना है। विस्तर पर पंगु होकर पड़ जाने का अर्थ ही होता है कि घर के एक दूसरे व्यक्ति को भी निरंतर अपनी सेवा में समेटे रहना। यह वीमारी प्रायः लवी खिचती है, इस उम्र मे इस वीमारी से अच्छे हो जाने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता—मैंने ऐसे कई केस देखे है, आयु के साथ शरीर के अवयव यू ही शिथिल पड़ जाते हैं, यदि ऊपर से रोग उन्हे तोड दे तव उनमें फिर से शक्ति कहां से आएगी ? इसलिए दीपा, मन से तुम्हें हर स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए कि इस दुर्दिन की चरम सीमा को तुम सह सको। यह एक कटुसत्य है। अव प्रश्न तुम्हारी छुट्टी का है। जो महरी तुम्हारे वर्तन धोती है, वह वूढ़ी और ईमानदार भी लगती

है, मेरी राय है यदि वह दिन-भर घर में देख-रेख करने को राजी हो जाए तो उसे राजी कर लो। मैंने पिछली बार भी तुमसे यह बात कही थी। उस पर होने वाले अधिक खर्च से तुम तनिक भी घबराना नहीं, जब कभी रुपयों की जरूरत पड़े निस्संकोच लिख दिया करना। मैं जानता हूं, शायद तुम ऐसा न करो, क्योंकि तुम्हारा संकोची मन शायद तुम्हें इसकी अनुमति न दे। किंतु, ऐसा संकोच भी किस काम का जो हमें बेमौके तोड दे। जितनी तुम्हारी तनख्वाह है, वह मुझसे छिपी नहीं है। बाबा की बीमारी के बाद उसमे जिस तरह से खर्च चल सकता है वह भी मैं समझ रहा हूं। मैंने परसों दो सौ रुपए का मनीआर्डर भेज दिया है, उसे ले लेना। इस समय खर्च की आवश्यकता न हो तो पास बुक मे डाल देना या रखे रहना। कौन जाने कब, एकाएक रुपयों की आवश्यकता पड जाए।

देवेश मुकर्जी से तुम्हें किसी प्रकार की शिकायत होगी, ऐसा तो मैं नही सोच सका था किंतु जब जीवन मे प्रवेश किया तो ऊंच-नीच की स्थितियां सामने आएंगी ही। उनका सामना तो करना ही होगा। यह और बात है कि सभी लोग चंद्रमोहन नहीं हो सकते! लेकिन तुम तो हर तरह से समर्थ हो। गले मे मछली तो डूब के पानी पीने पर ही अटकती है। ऐसी स्थिति यदि तुम्हारे सामने आ गई है, या उसकी संभावना है तो जिम्मेदारी एक पक्ष पर ही मढ देना, एकतरफा बात होगी। इसमें मेरी ओर से कुछ भी कहे जाने की गुंजाइश अब कहा है?

चंद्रमोहन

इलाहाबाद

गंगाजल

परसों तुम्हारा पत्र मिल गया था। पढकर एक झटका-सा लगा, कि मेरी धारणा से भी दो-चार कदम आगे की बात तुमने सोच ली, ऐसा मैं तो सपने मे भी नही सोचती थी, ऐसी तटस्थता की कौन सराहना करेगा—कि आखों के आगे दूसरा पोर-पोर से टूटकर छितरा

जाए और हम देखते रह जाए, उसे बेसहारा छोड़ दें ?

तुमने मेरे पत्र का उत्तर नही दिया। जिन दो बातों का उत्तर तुमने दिया है, वे गौण है। क्योंकि उन्हें उलझाने या सुलझाने का सारा दायित्व मेरा है। इस बारे मे मै तुमसे सहमत हू। लेकिन महाराज मेरे, उससे हिसाब-किताब कैसे करूं, जो मुझसे कोसों दूर है, और सबल है ? तुम्हारा भेजा हुआ रुपया अभी मुझ तक पहुंचा नही है। उसे लू या नही, अभी कोई निर्णय मैंने नही किया है—अभी तो तुम्हारे उस पत्र की प्रतीक्षा है जो मेरे पहले पत्र की अनुत्तरित बातों के उत्तर में होगा। उसका उत्तर देकर मुझे मेरे मानसिक उत्पीड़न से मुक्ति दो। देना ही होगा—प्रतीक्षा उसकी है। मां परसों चली गई—इसकी सूचना तुम्हे उनके पत्र से भी मिलेगी।

मेरा प्रणाम लो—
दीपा

प्रतापगढ़

प्रिय दीपा,

तुमसे कह सकने को कुछ भी बाकी रह गया हो, ऐसा मैं नही समझता, इसीलिए जितना तुम्हारे पत्र का उत्तर देना था, मैंने दे दिया था। बाकी बातों का भी तुम उत्तर मांगोगी, मैंने नही सोचा था, इसलिए उस ओर मेरा ध्यान भी नही गया था। अब फिर से उनके बारे में सोचना मुझे जली आग पर पड़ी हुई राख की पर्तों को फूंक मारके उड़ाना होगा। लेकिन तुम्हारी इच्छा ही ऐसी है तो करूं क्या ?

कई दिनों पहले तुम्हारा यह पत्र मिल गया था, किंतु मन के आलस्यवश उत्तर नही दे पाया था। तुम्ही ने कभी कहा था कि संसार की हर घटना सापेक्ष होती है क्योंकि आज हम वैसा नही रहते जैसा कल थे। यह सब कुछ मैं भोग रहा हूं। कभी सोचता था, सारे आकाश को अपनी बाहों में समेट लूगा। किंतु यह भ्रम टूट गया, अच्छा हुआ। इसीलिए कही से भी मन में दुहाई या उलझन की बात नही आती। मैं अपने भीतर की पीड़ा को भोगना चाहता हूं। इसका

कुछ अर्थ भी होता है, नहीं जानता। लेकिन मेरी आंखों के आगे आस-मान सूना ही लगता है। तब यह जो अपने सामने घटित होता जा रहा है, वह किस अभिप्राय से, किस उद्देश्य से!

जीवन की अनिवार्यता की भी बात मैं नहीं करता, जो शर्तों के रूप में स्वीकार कर ली गई है, इसीलिए पहली और अंतिम सीढ़ी की बात करने का अब मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। उस रात की बात मैं क्या कहूं जो बीत गई, जब मैंने तुम्हारी देह का स्पर्श मांगा था—उसकी गरमाई को अपने में समाहित कर लेना चाहा था। निश्चय ही उस रात की अनुशासनहीनता का अर्थ था, अपने को एक बड़े अनुशासन में बांधना, सिर पर एक बड़ी जिम्मेदारी ले लेना। इस सब कुछ को एक आकार देने के लिए, एक निश्चित रूप कायम करने के लिए। अपने मन के पूरे निर्णय के बाद ही यह मानकर आगे उमड़ पड़ा था कि तुम मेरी हो, क्योंकि विश्वास हो गया था कि मेरी सीमा—मेरी मंजिल तुम हो, केवल तुम! लेकिन अब लगता है वह मेरा भ्रम था। जीवन को देखने का तुम्हारा अलग तरीका हो सकता है, पर मैं अपनी बात करता हूं। जो हो, उस रात तुम्हें वह स्वीकार नहीं था। तुम कहती हो—पुरुष सबल होता है! तो क्या तुम्हारा यह तात्पर्य है कि उस रात मैं अपने बल का प्रयोग करता? नहीं, यह कदापि संभव नहीं था—मेरी मान्यताएं अलग है, मेरे जीने का ढंग अलग है, मैं किसी से भी तिरस्कृत नहीं होना चाहता। अब तुमसे मांगने को रह क्या गया? इसलिए जो उस रात नहीं हो सका—शायद इस जीवन में अब कभी न हो! भूखी-प्यासी देह सान्निध्य और समर्पण मांगती है, मर्यादाओं के बंधन नहीं। यदि अपने विगत जीवन के सारे संदर्भों की यह अनिवार्य परिणति थी, तो उस समय तर्क की गुंजाइश कहां थी? यदि थी, तो उस रात तक तुम्हारे बारे में मेरी सारी धारणाएं गलत थी। इसलिए अब मन में ऐसा लगता है कि तुम सामने पड़ी तो मैं फिर अपने को वैसे ही अपमानित, लांछित और हेय समझने लगूंगा। यह सब-कुछ सोच करके मन बेहद लज्जा से भर जाता है।

तब अपने मन के परिताप को पकाते रहने के सिवा मेरे पास दूसरी

और कोई राह नही है। सुना है, हर पीडा फलवती होती है, मेरे मन की व्यथा भी शायद कभी निखरकर कोई सुघड रूप ले सके। लेकिन तब, हम दोनो न जाने कहा, किस रूप मे रहे ?

तुम भी मुझे गंगाजल कहती हो—और यह भी कहती हो कि उफना हुआ गंगाजल जहां से हटता है, वहा की धरती सडन की दुर्गंध में डूब जाती है। अब मैं भी चाहता हू कि तुम्हारे लिए, और कम-से-कम तुम्हारे उस घर से गंगाजल के ही रूप मे हट जाऊं, हटने का समय भी आ गया, पर यह कदापि नही चाहूंगा कि वहा की धरती सडन की दुर्गंध मे डूब जाए; क्योकि तुम्हारे लिए मेरे मन मे कही भी मैल नही है।

मैं निश्चय ही तुम्हारे नए सुखमय भविष्य की कामना करता हू—और चाहता हूं, कि जो मेरे मन मे तुम्हारे लिए अब नए सिरे से आ समाया है, वह शीघ्र एक निश्चित आकार ले ले, तुम फूलो-फलोगी—जो तुम्हारे मन मे कही कुछ है, उसे खुलकर स्वीकार करना ही होगा, आज नही तो कल, कल नही तो परसो। अन्यथा गले मे मछली अटकी रहेगी—हो सके तो कोशिश करना कि यह सदर्भ हमारे-तुम्हारे बीच फिर कभी न उठे, तुम हर तरह से मुक्त हो।

तुमको अपने पर भरोसा है इसलिए ऐसा कह रहा हूं।

....

गंगाजल

प्रिय गंगाजल,

इलाहाबाद

तुम्हारा पत्र पाए आज दस दिन हो गए। इन दस दिनो मे मैं जिन परिस्थितियो मे गुजरी हूं, काश तुम जान पाते। मेरा कहना यदि काफी है तो इतना ही कहूंगी कि इन दस दिनों मे मेरे दसों कर्म हो गए।

अब तक यही सोचती रही हूं कि तुम्हारे बड़े-बड़े अक्षरो में लिखे, 'अस्वीकार भरे' इस पत्र में कही भी ज्योति की कोई ऐसी किरण है,

जो मेरे मन को सबल दे सके, मैं आगे बढने का आधार पा सकूं। तुम हर पहलू से सही हो, मैं हर पहलू से गलत, मैं यही मानकर चलती हू। इस गलत-सही होने का निपटारा तो हो जाएगा, लेकिन महाराज मेरे, तुम इससे भी कई कदम आगे सोच गए, मन मे इतनी बड़ी गलत-फहमी भर ली। मैं तुम्हारी तुनकमिजाजी जानती हूं, इसलिए जो तुम्हारे मन मे आ समाया है, उसका कोई आधार भी है, यह मैं नही मानती।

तुम्हारा यह पत्र पाकर सचेत जरूर हो गई हूं, और उस रात अपने से हो गई उस हरकत का अहसास मुझे अब तक हो रहा है। मुझे भी वैसे ही सोचना और समझना चाहिए था। मैं ऐसा क्यों नहीं सोच सकी कि प्रियतम मेरा, सुहागिन बनाने से पहले ही सुहाग रात मना लेना चाहता था, और विशेषकर तब, जबकि जनक मेरे बगल के कमरे मे मरणसेज पर पड़े थे। मैंने क्यों नही सोचा कि यदि देह से तुम्हारे पास थी, तो संपूर्ण मन से भी रहना चाहिए था? क्यों नही सोचा कि देह के क्षणिक सुख के लिए, मरणसेज पर पड़े हुए पिता से भी विश्वास-घात करना अनिवार्य है।

मैं तुम्हारी 'चाकर' हूं, लेकिन अपने और मेरे बीच, मेरे जनक के लिए इतनी जगह तो छोडोगे ही! इतना तो अब भी अपने पर विश्वास-है कि मुझसे ऐसा कोई काम न होगा जिससे तुमसे तिरस्कार मिले, फिर भी यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने को तो सभाल लूंगी, पर उस स्थिति को क्या तुम भी सह सकोगे? क्योंकि अब तक जितनी भी तट-स्थता तुमने मेरे साथ बरती है, बावजूद उसके, मैं तुम्हारा मन जानती हूं। लेकिन क्या तुम ये नही जानते कि इतनी मेहनत से पाई हुई चीज कोई इतनी आसानी से छोड़ देना चाहेगा? यदि नही जानते तो जान लो कि एक निश्चित दूरी तय कर लेने के बाद दुनिया की कोई भी औरत आसानी से वापस नहीं लौटती! लौटना या मुडना विनाशकारी और भयावह होता है, किसी औरत को लौटने भी नही देना चाहिए। इसलिए अपने निर्णय पर फिर से विचार करो, एक दिन के लिए ही इलाहाबाद आ जाओ, बाबा तुम्हें देखना चाहते है। यदि नहीं, तो मुझे

आना पड़ेगा—तुम्हारी अदालत में फरियाद करने सीधे हाजिर हो जाऊंगी, इसमें मेरे लिए अब कोई रोक-टोक न होगी।

महाराज मेरे, मेरा स्नेहभरा प्रणाम लो।

तुम्हारी ही
दीपा

अठारह

शनिवार की सुबह, पीरू बाबू की तबीयत में सुधार था। दीपा से कहकर वे पीठ से मसनद टेककर बैठे थे, दीपा खुश थी। ठंड काफी कम हो चली थी। लेकिन प्रयाग की ठंड भी अपनी ही तरह की होती है। ठंड कम हो जाने के बावजूद हवा में ऐसी सुनक थी—जो देह में पानी का स्पर्श हो जाने के बाद गलन पैदा कर देती थी। दीपा ने आज घर का सारा फर्श धोया था। पूजा-घर की सफाई की था। उसकी दीवार के एक किनारे पर टंगी मां की तस्वीर उतारकर उसे सावधानी से पोंछा था। पूजा के बाद पिता को उनका प्रिय भोजन, दूध-डबल रोटी खिलाई, फिर उन्हें चाय पकड़ाई और स्वयं भी उनकी खाट के बगल में कुर्सी पर बैठकर एक प्याला चाय पीने लगी। कप से पहली घूंट लेकर पीरू बाबू हल्के से बोले, "आज चाय अच्छी लग रही है और मेरा मन भी प्रसन्न है।" फिर दो-तीन घूंट पीते के बाद बोले, "बेटा, आज तुम्हारी मां की याद आ रही है। रात में मैंने उन्हें स्वप्न में देखा था,

आकर इस चारपाई के पास खड़ी थीं। मैंने बैठने को कहा तो बोली—मेरी चिंता मत करो, अब अपनी तैयारी करो।"

"कैसी तैयारी ?" दीपा ने उत्सुक हो पूछा।

पीरू बाबू मुस्कराए, "तैयारी तो बहुत तरह की हो सकती है बेटा, तुम्हारे ब्याह की तैयारी, अपनी तैयारी, करना ही तो शेष है, कामों की कमी कहा है ?" फिर पीरू बाबू शांत हो गए और चुपचाप चाय पीने के बाद बोले, "लगता है बेटा, अब तैयारी करनी ही होगी, मेरे चला-चली की बेला आ गई, इस उम्र की इस बीमारी का क्या भरोसा ?"

"बाबा, यह क्या बोलते हो ?"

"यह शाश्वत सत्य है बेटी, बहुत अप्रिय, लेकिन यह होना ही है; आज नही तो कल। हो सके तो गगाजल को तार देके बुलवा लो, उसे देखना चाहता हूं। अभी अरोरा साहब के लडके को बुलाकर तार देने के लिए भेज दो, शाम तक मिल जाएगा। उठो, पहला काम यह कर लो, तब दूसरा काम बताऊं।"

दीपा ने तार भिजवा दिया।

लगभग पैंतालीस मिनटों में लड़का तार देकर लौट आया। दीपा ने पीरू बाबू को इस काम के हो जाने की सूचना दी तो पीरू बाबू बोले, "अब जाओ, भोजन बना लो, तो अगला काम बताऊं।"

पिता के इस निर्देश पर दीपा आज प्रसन्न भी थी, और चकित भी। घर में आज ताजगी और प्रफुल्लता भर आई थी, अपनी चरम सीमा की। यह किस दिशा का सकेत था ?

भोजन बनाते-खाते एक बज गया। पीरू बाबू ने केवल मूंग की दाल ली और थोड़ी देर को आंखें मूंदकर पड़े रहे।

दीपा अपने कमरे से विश्राम कर दो बजे बाबा को दवा खिलाने आई तो पीरू बाबू बोले, "अब दवा खाने का मन नहीं होता बेटा।"

"क्यों ?"

पीरू बाबू बगल में खड़ी हुई बेटी की आंखों में ताक कर बोले, "अच्छा, आज-भर रहने दो, क्योंकि आज मेरा मन ठीक है, कल से देखी जाएगी।"

"जिस दवा के लाभ से आज इस लायक हुए हो, उसे खाओगे नही तो कैसा होगा ?"

"नही बेटा, कम-से-कम आज-भर रहने दो, मेरी बात मानो, दवा रख दो। दवा से मन अब हट गया।" दीपा ने दवा रख दी तो बोले, "आज अपने मन से मुझे वायलिन सुनाओ।"

पल-भर दीपा ने बाप के चेहरे को देखा, गाधार शैली में बनी हुई बुद्ध की प्रतिमा की तरह पिता की करुणामयी बड़ी-बड़ी झुकी हुई आंखें जीवन की कितनी पीड़ा, कितना दुख आत्मसात किए हुए थी। रागो का यह शिल्पी अपनी आत्मजा से आज क्या सुनना चाहता था ? दीपा पलंग के बगल में पड़ी हुई तख्त, जिस पर मा सोती थी, वायलिन ले कर बैठ गई, "कौन-सा राग बजाऊं बाबा ?"

"कहा तो, अपने मन से बजाओ।"

दीपा ने राग पीलू मे ठुमरी शुरू की, जिसके बोल थे, "सैयां न माने मोरी बात···।"

घर-आंगन में वायलिन की लहर रस घोल गई। सारा वातावरण ही रसमय हो गया, जैसे वर्षा की हल्की फुहारो से सूखी धरती से सोंधी गंध उठने लगे ? दानेदार तानें लगाकर, अदाकारी मे मुखड़ा पकड़कर बार-बार सफाई से यही बोल पौन घटे तक बजाती रही। पीरू बाबू चुपचाप कान लगाकर सुनते रहे। बजाना समाप्त किया तो पास बुला पाटी पर विठाकर बड़े प्यार से बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "अपने इस गुण को कायम रखना बेटी, यह बहुत साधना से प्राप्त होता है। अपनी संतान को भी यह शिक्षा अवश्य देना।" दीपा कुछ नही बोली। नीची आंखों से चुपचाप देखती रही तो पीरू बाबू फिर बोले, "पिछले दिनों से देख रहा हूं कि जब से गंगाजल गया है, तुम उदास रहने लगी हो, लेकिन बेटा, उदास मत हो। गगाजल तुम्हे मिलेगा, मैं आशीर्वाद देता हूं। मैं चाहता था, वह सब अपनी आखों से भी देख लेता—लेकिन लगता है, हो नही पाएगा।

"बाबा···।" दीपा ने पीरू बाबू का हाथ पकड़ा।

शांत, सधी हुई आवाज मे पीरू बाबू फिर कहने लगे, "संसार का

हर काम अपने समय से ही होता है, कोई किसी के लिए रुकता नहीं है। इसीलिए बेटा, बुद्धि और विवेक से जो उचित लगे, जीवन में वही करना, ईश्वर तुम्हें बुद्धि और विवेक दे। समय कितना हुआ?"

"अब चार बजेंगे।" दीपा ने दीवार-घड़ी की ओर देखकर कहा।

प्रतापगढ से गाडी कब आती है?"

"एक शाम को लगभग सात बजे, दूसरी रात को दस बजे।"

"तार मिल गया होगा।"

"जरूर मिल गया होगा, लेकिन देखें, आना कब होता है?"

"तार मिलते ही आएगा, वह देव पुरुष है—ऐसे पुरुष जल्दी मिलते नहीं। सर्वगुण-सपन्न। मेरा मन कहता है वह आएगा। यदि सांझ को नही तो रात की ट्रेन से अवश्य ही आएगा। अब तुम जाओ, एक कप चाय बनाओ और पीओ, और एक बीड़ी जला दो।"

बीडी जला, बाप के मुंह मे लगाकर दीपा आंगन मे रसोईघर की ओर निकल गई। पीरू बाबू की इन बातों से उसके मन में बहुत ढाढस हुआ था। लगभग बीस मिनटों मे वह पीरू बाबू के लिए भी एक कप चाय बनाकर लाई तो पीरू बाबू बीडी समाप्त कर चित लेटे हुए आसमान की ओर ताक रहे थे। चाय पीने से उन्होंने इन्कार कर दिया।"

पूछा, "महरी बर्तन साफ कर गई?"

"नही, आती ही होगी?"

"तो जाओ, चाय पी लो। मैं नही पीऊंगा, मेरे लिए क्यों लाई? मैंने तो तुम्हारे लिए कहा था, वायलिन बजाने से तुम थक गई थी।"

"लेकिन बाबा···?"

"क्या?"

"डाक्टर के यहां दवा लेने भी तो जाना है?"

करुणा-भरी मुस्कराहट पीरू बाबू के चेहरे पर फिर फैल गई, "मैंने तो पहले ही कहा था बेटा, आज-भर मुझे दवा मत दो, भूल गई क्या? केवल आज-भर।"

"भूली नही बाबा, डरती हूं कि दवा की अनुपस्थिति में बीमारी बढ़ न जाए।"

"नही बेटा, नही, ऐसा नही होगा । बीमारी को जो कुछ करना था कर गई ।"

"लेकिन, डाक्टर से हालचाल तो कम-से-कम बताना आवश्यक है ।"

"नही, आज उसकी भी आवश्यकता नही, कल देखा जाएगा । आज तो तेरा गंगाजल आ रहा है, उसके खाने-पीने की तैयारी नही करेगी ? जाकर चौराहे से कुछ अच्छी, ताजी तरकारी ले आओ । अभी तुम्हारी छुट्टी कितनी बाकी है ?"

"छह दिन की । क्यो, तरकारी के बाद, मेरी छुट्टी की याद तुमको कैसे आ गई ?"

"कुछ नही, ऐसे ही पूछा । अच्छा जाओ, तरकारी ले आओ, और मेरे लिए आज टमाटर का सूप बनाओ ।"

प्लास्टिक की नीली टोकरी उठाकर, दीपा बाजार की ओर जाने लगी, तो पीरू बाबू बोले, "जल्दी आना बेटा ।"

बाजार से दीपा लौटी तो उस समय साढे पाच बज गए थे । महरी आगन मे बर्तन निकालकर चौका धो रही थी ।

"आज बहुत देर कर दियो चाची ।"

"हां बिटिया, आज बहुत देर होइ गवा, हमरे घरा मे एक जो काली माई है, वहिके मारे नाक मे दम होई गवा बा, घर भर के लोगन का पानी पिआवत है ऊ । ऐसी कर्कसा नारि तो भगवान दुस्समन को भी न दे । गरिआवे लगत है न बिटिया तो, ओकर मुहो नही दुखत । अब आज से हम हंयी रहबै ।"

"तुम का रहबो चाची, हजार बार तो तुम कहि चुकि, लेकिन रह्यो एको बार नही ।"

"आज न जावे बिटिया, अब आज से हयी रहबै ।"

"अच्छा बर्तन साफ करो ।"

महरी बर्तन साफ करने लगी । दीपा तरकारी रख के पीरू बाबू के सिरहाने बीड़ी का बंडल रख आई । साढ़े सात बज गए, तो दीपा पीरू बाबू से बोली, "बाबा, सूप ले आऊं ।"

"हां बेटा, ले आओ। एक गाड़ी तो चली गई, अब लगता है, गंगा-जल रात की गाड़ी से आएगा।"

दीपा फूल के कटोरे में टमाटर का सूप ले आई और खाट की पाटी पर बैठकर चम्मच से पीरू बाबू को सूप देने लगी। सूप मन लायक था। पीरू बाबू प्रसन्न हो पी रहे थे। बीच-बीच में बेटी की प्रशंसा भी करते जा रहे थे, विनोद भरे मन से।

सूप ले आखें मूंदते हुए बोले, "अब तुम भी खा लो बेटा।"

"मैं दस बजे की गाड़ी देखकर खाऊंगी बाबा, बस आध घंटा और है।"

"ओह, हा, यह तो मुझसे भूल हो गई। अच्छा, चौके में ढंक कर, ठीक से बंद करके, हाथ-पैर धोकर मेरे पास आओ।"

दीपा बीस मिनटों में सभी कुछ व्यवस्थित कर चौके का दरवाजा बंद करके, हाथ-मुह धोकर कपड़े बदल, पिता के पास आई तो पीरू बाबू बोले, "बेटा, आज तुमसे भजन सुनने को मन होता है।"

"भजन!"

"हां बेटी, भजन! और मुझे करवट लिटा दो।" दीपा ने पिता को बाएं करवट लिटा दिया तो बोले, "कुर्सी लेकर मेरे सामने बैठो, ताकि तुम्हारा मुह दिखता रहे। और सारी खिड़कियां, दरवाजे खोल दो जिससे कमरे में स्वच्छ वायु भर जाए।"

दीपा ने कमरे की उत्तर और पूरब की चारो खिड़किया खोल दी। चांदनी पीरू बाबू की पलंग पर बिखर गई।

"आज पूरनमासी है क्या बेटा?"

"हां, बाबा।"

"ओहो, तभी चांदनी पूरी तरह से खिली हुई है।"

दीपा कुर्सी खीचकर पीरू बाबू के सामने बैठती हुई बोली, "क्या गाऊं बाबा?"

उसी समय द्वार पर थाप पडी।

"देखो!" पीरू बाबू बोले।

जंगले से देखा, हाथ में अटैची लिए चंद्रमोहन खड़ा था। द्वार

खोला, झुककर पैर छूती हुई बोली, "देर कहां कर दी ?"

"कुशल तो है, बाबा अच्छे तो है ?"

"हां, तुम्हारी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे है।"

"चलो।"

द्वार वंद करके चंद्रमोहन के पीछे दीपा आई।

"बाबा ?" पांव छूते हुए चद्रमोहन बोला।

"कभी प्रभु से प्रार्थना की थी कि जब मेरे प्रिय मेरे पास हो, तब मुझे संकेत देना। तुम आ गए, देख लिया, मन भर गया। कपड़े उतार, हल्के हो, हाथ-मुह धो के भोजन कर लो, फिर इत्मीनान से मुझे सितार सुनाओ, आज की यह रात्रि संगीत-गोष्ठी मे बीते।"

"सितार !" चंद्रमोहन चौंका, "लेकिन सितार यहा कहा है !"

"मेरा तो है, अब तो उसी को तुम्हे बजाना होगा !"

"मुझे !"

"हां, तुम्हें ही, अब उसे दूसरा बजाएगा कौन बेटा ? एक बार उसे बजाकर सुना दो, मेरी यह अतिम साध भी पूरी हो जाए। शाम की गाड़ी नही मिल सकी क्या ?"

"हां बाबा, स्टेशन पहुचते-पहुचते छूट गई।"

"अच्छा जाओ, कुछ खा-पी लो।"

दीपा के कमरे में जा कपड़े उतार हाथ-मुह धोकर चद्रमोहन चौके मे गया।

दीपा ने चूल्हे के पास आसन बिछा दिया—चंद्रमोहन बैठ गया तो वह आटा गूंथने लगी, "क्या खाओगे ?"

"बना कर रखा नही है क्या ?"

"नही।"

"क्यों ?"

"डर रही थी कि कौन जाने तुम्हारी नाराजगी अभी दूर हुई हो या नही। कही न आओ तो !"

"इतना अविश्वास !" चद्रमोहन ने दीपा की आखो मे देखा—दीपा आंखें न मिला सकी।

"क्या खाओगे, पूरियां या पराठे !"

"सब्जी किस चीज की है ?"

"सब्जी तो बनाकर रखी है, आलू-मटर की रसदार और टमाटर की मीठी चटनी।"

"वाह, बस पराठे सेंक दो।"

दीपा आटा गूंधती हुई बोली, "तार कब मिला था ?"

"दिन में बारह बजे। मैं तो घबरा गया था—इसलिए कल इतवार के अलावा दो दिनों की छुट्टी मंजूर करा ली, लेकिन बाबा तो प्रसन्न हैं, टन्न-टन्न बोल रहे हैं, दवा फायदा कर रही है ?"

"लेकिन आज से दवा खाना बंद कर दिया है।"

"क्यों ?"

"हां, डाक्टर के यहां हाल बताने तक को तो जाने ही नहीं दिया।"

"चंद्रमोहन खामोश हो गया। दीपा ने थाल परसकर पराठा डाला। वह खाने लगा तो दीपा बोली, "मां कहां हैं ?"

"हरदोई हैं और कहां जाएंगी। बीच में पांच-सात दिनों के लिए आई थी।"

"प्रतापगढ में बंगला मिला नहीं ?"

"मिल गया।"

"कहा है ? कितने कमरे है ?"

"तीन, कचहरी के पास ही है।"

"मा को क्यों नहीं बुलाते।"

"वे जून में आएंगी, खेती का काम निपटाकर। या फिर अगर बद्रीकाश्रम गईं तो वापसी के बाद।"

दो पराठे खाकर चंद्रमोहन बोला, "अब बस करो।"

"अरे, बस ! एक और लो।"

"फिर बैठा नहीं जाएगा, सितार बजाना है।"

"कुछ नहीं होगा, एक और।" दीपा ने तीसरा पराठा भी थाली में डाल दिया। वह खा चुका तो बोली, "तुम बाबा के पास चलो, मैं

खाकर आती हूं।" चद्रमोहन उठ गया तो एक पराठा उसी की जूठी थाली मे डाल, जल्दी से खाकर दीपा भी कमरे मे पहुच गई।

जब चद्रमोहन वापस आया तो वगल की तख्त पर दरी विछा, पीरू वावू के, कोने मे रखे, दीवार से टगे सितार की खोल उतारने लगा। वगल मे दीपा लोहे की कुर्सी पर बैठ गई।

चंद्रमोहन ने कलाई की घडी देखी—साढे ग्यारह वज रहे थे। पीरू वावू के पांव छू प्रणाम किया और तख्त पर बैठ सितार को हाथ मे लेकर तार मिलाने लगा। पीरू वावू ध्यान से देखते रहे, उत्सुक आंखें, प्रसन्न मन से एकटक···।

"कौन-सा राग वजाऊं वावा ?"

"पहले खमाज की ठुमरी सुनाओ—नदिया किनारे मेरा गाव···"

चंद्रमोहन ने मीड़ से कुछ विशेष खटका लगाया।

"पीरू वावू के मुह से अपने-आप प्रशसा भरा शब्द निकल पडा, "वाह !"

चद्रमोहन आगे वढा—कभी पीरू वावू को देखता, कभी सामने वैठी हुई दीपा को। सितार की मीठी ध्वनि, उस शांत, पवित्र चादनी में तैरने लगी, निरंतर खामोशी में डूबे रहने वाले इस घर से सितार की लहरें वहुत दिनो वाद प्रवाहित हो उठी, ठुमरी की उस सरसता मे पीरू वावू डूवने लगे। संपुट में वंद वडी-वड़ी करुणामयी आखें खिलने लगी। वहुत दिनो वाद उनके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव उभर आए। देह मे शक्ति होती तो उठकर वैठ जाते, सिर हिला-हिलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते रहे।

चद्रमोहन के लिए इतना वहुत था। गुरु का स्नेह-भरा आशीष पाकर वह भीतर से हुलस गया, ठीक एक वजे उसने ठुमरी समाप्त की।

"अद्भुत, कही कोई चूक नही, सव-कुछ ठीक, अपनी जगह पर। आज मन प्रसन्न हो गया वेटा। सोचता था, मेरे इस सितार का क्या होगा ? उस सोच से तो मुक्ति मिल गई।"

"समझ मे नही आता, आपके सितार पर मेरा हाथ इतनी अच्छी

तरह कैसे चल रहा है। मन को इतना विश्वास तो अपने सितार पर भी नहीं मिलता। अब आप जो भी सुनना चाहें, आज्ञा दें, मैं प्रयास करूं—ऐसा अवसर न जाने कब मिले ?"

पीरू बाबू हंसे, "मन लग गया है तो बजाओ, तुम्हारे मन को 'देश' भाता है न, वही बजाओ। किंतु चाहता था, इसके पहले पहाड़ी में कुछ सुना देते।"

चंद्रमोहन ने पल-भर पीरू बाबू की ओर देखा, फिर मन-ही-मन उन्हें दुबारा प्रणाम कर सितार संभाल लिया। इस बार राग पहाड़ी शुरू हुआ। घर का कोना-कोना जैसे रजनीगंधा की महक से भर गया। भीतर-बाहर, घर-आंगन खिले हुए गुलदाउदी के रंग-बिरंगे फूलों से महक गया। पीरू बाबू मुस्कराने लगे और रह-रहकर वाह-वाह करने लगे।

दीपा भीतर से हुलस के खिल गई। इतनी खुशी तो इस घर में कभी देखी ही नहीं थी। दोनों मंजे हुए कलाकार पीरू बाबू और दीपा इस तीसरे को देखने लगे। मिजराब पहनी हुई अंगुलियां कितनी सफाई से तारों को बजा रही थीं। एक के बाद एक, आरोह-अवरोह में चंद्रमोहन स्वयं डूब गया। पैंतालीस मिनटों के बाद उसने हाथ रोका। पीरू बाबू ने उसकी ओर बायां हाथ बढ़ा दिया। चंद्रमोहन ने बैठे-बैठे पीरू बाबू का पैर छू उनकी ओर अपना सिर बढ़ा दिया। बड़े प्यार से पीरू बाबू ने उसके सिर पर हाथ फेर आशीष दिया और तब बेटी की ओर ताक कर बोले, "अब बेटी, हम लोगों को चाय पिलाओ।"

दीपा चौके में चली गई तो पीरू बाबू बोले, "प्रतापगढ़ में अभ्यास चलता था क्या ?"

"हां बाबा, सांझ का समय कटे कैसे ? अकेले हूं।"

"तभी तो, हाथ बहुत निखर गया है। इसे कायम रखना बेटा। यह विद्या पूजा मांगती है, निरंतर अभ्यास। मन बड़ा प्रसन्न हुआ। यह सितार अब की लेते जाना। क्या तुम्हारी बदली यहां इलाहाबाद में नहीं हो सकती ?"

"हो जाएगी बाबा, लेकिन अभी दो वर्षों की देर है। एक जगह कम-से-कम तीन वर्ष रहना पड़ता है।"

"ओ···!"

"आज आपने दवा नही खाई।"

"क्या मुझे दवा खानी चाहिए, ऐसा तुम्हें लगता है ?"

"दवा से ही तो आप आज इस लायक हुए है।"

पीरू बाबू हंसे, "नही बेटा, इस रोग से जितनी क्षति होनी थी वह तो हो गई, देह का आधा अंग चला गया, उसमे शक्ति आनी नही है, क्योकि यह बुढापे की बीमारी है। भीतर से मुझे कोई कष्ट, कोई व्यथा नही है तो व्यर्थ दवाई खाने से क्या प्रयोजन। अब तो जितने दिन उतने वर्ष। चला-चली की बेला मे दवा-दारू क्या ? जानते हो, पूर्णावतार कृष्ण का जब सारा कार्य समाप्त हो गया तो अंतिम समय मे द्वारिका से बाहर जाकर एक झाडी मे लेट गए। और वही एक बहेलिए ने धोखे से उन्हें हिरन समझकर तीर का निशाना बना दिया। कृष्ण ने अपना शरीर वही रख दिया ! क्या यह सब उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ होगा। नही, कदापि नही। भगवान को पाप और पुण्य से क्या लेना-देना था। जितना दायित्व उन्हें श्रीकृष्ण के रूप मे वहन करना था, किया। उसे समाप्त करने के बाद, देह से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु का वरण करना पडा। मैं नही जानता, मृत्यु मे मुक्ति मिलती है या नही। किंतु काम समाप्त हो जाने के बाद बने रहने की जिजीविषा मे भी कोई तुक नही दीखता।-विशेषकर तब, जब देह के अवयव जवाब दे रहे हों। मैंने जीवन को खूब भोगा है, सही अर्थों में बेटा, दीपा की मा इस भोग मे मेरी एकमात्र संगिनी रही है। संगीत और उस नारी के सवा मैंने कुछ जाना ही नही। पूर्व जन्म की कोई चूक थी कि सयाना पुत्र आंखो के सामने चल बसा। बची दीपा, सो सयानी हो गई, नौकरी लग गई, पर उसका ब्याह नही कर सका। उसके भाग्य में जो होगा सो भोगेगी। सबकी सभी साधें पूरी थोड़े ही होती हैं। मेरे बाद तुम हो, जो तुम लोगों को उचित लगेगा, होगा वही। सच पूछो तो अब यह दायित्व तुम्हारा है। तब मैं किसलिए रुका रहूं, अब रुकने की न शक्ति है, न इच्छा है, कब क्या हो जाए, इसीलिए तुम्हें बुलाकर देखना-दिखाना कर लिया।

तभी दीपा दो कप मे चाय और एक टोंटीदार कप लेकर आ पहुची। एक कप चाय चंद्रमोहन को दी। खुद खाट की पाटी पर बैठकर टोटीदार बर्तन से पिता को चाय पिलाने लगी।

पीरू बाबू के चाय पीने तक चंद्रमोहन ने अपनी चाय भी ढककर रख दी थी।

पीरू बाबू को चाय पिला जब वह घूमी तो बोली, "अरे तुमने क्यों रख दी ?"

"क्योंकि हम और तुम संग पिएंगे।"

दीपा ने अपना कप उठा लिया और कुर्सी पर बैठकर चाय पीने लगी।

पीरू बाबू ने समय पूछा तो घड़ी देखकर चद्रमोहन बोला, "सवा दो बज रहे हैं।"

"ओ, तो अब बेटा, आधा घंटा राग जोगिया सुनाकर पूरा कर दो। अब मन विश्राम करना चाहता है।"

"बाबा सोओ न, जोगिया कल सुना दूंगा।"

"अरे बेटे, कल किसने देखा है, चलो शुरू करो।"

चद्रमोहन ने अंगुली मे मिजराब पहना और तार पर चलाया—'पिया मिलन की आस' मुखडा लेकर इस राग की अवतारणा शुरू की। निर्गुण का वातावरण फैलने लगा। पीरू बाबू इस बार आकाश की ओर ताकने लगे—खिडकी से दीखने वाले, दूसरी ओर झुक चले पूर्णमासी के चंद्रमा को। सितार का अवसाद-भरा स्वर कमरे मे भरने लगा। सन्नाटे को भेदने वाली अवसाद की पर्तें पर पर्तें जमने लगीं। पीरू बाबू ने इस बार आखें मूद लीं। उत्फुल्ल उत्साहित मन करुणा से भरने लगा। कमरे का कण-कण उसके बोझ से दबने लगा…।

घडी देखकर ठीक पौने तीन बजे चंद्रमोहन ने सितार बजाना बंद कर दिया। पीरू बाबू ने आंखें खोल दीं और इशारे से पास बुलाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए बोले, "जितना तुम्हें सिखाया था, तुम उससे आगे बढ़ गए—मैं आज अपनी गुरु-दक्षिणा पा गया, तुम उऋण हो गए बेटा!"

चंद्रमोहन ने पीरू बाबू की देह पर सिर झुका दिया। पीरू बाबू बेहद प्यार से आशीष देते हुए उसका सिर सहलाकर बोले, "अब तुम बैठो—अब दीपा की पारी है।"

दीपा अपना नाम सुन चैतन्य हुई, "क्या हुआ बाबा ?"

"बेटी, दो गीत सुना दो।"

"गीत, रात्रि के तीन बजे, क्या आज सोना-विश्राम नही करना है ?"

"उसी की तैयारी तो कर रहा हूं बेटी, यह सब उसी के लिए है, तुम गाओ कि गीत सुनते-सुनते इस ब्राह्म वेला मे मै सो जाऊं।"

"क्या सुनाऊं बाबा ?" दीपा ने शकित मन से पूछा।

"एक मेरे मन से 'परशमणि', दूसरा अपने मन से, कुल दो। अपने मन से पहले गाओ।

दो-एक मिनटो तक दीपा सोचती रही फिर एकाएक उसके कंठ से गीत फूट पडा—

क्लान्ति आमार क्षमा करो
क्षमा करो, हे प्रभू
पथे यदि पीछिए, पिछिये पडी कभू।
एइ-जे हिया थरो थरो, कांपे आजि ए मन तरो,
एइ वेदना क्षमा करो, क्षमा करो,
हे प्रभू
क्लान्ति आमार...............
एइ दीनता क्षमा करो, प्रभू,
पिछन पाने ताकाई यदि कभू
दिनेर तापे रौद्र ज्वालाय, शुकाय माला, पूजार थाताय
सेइ म्लानता, क्षमा करो, क्षमा करो हे प्रभू
कलान्ति आमार क्षमा करो, क्षमा करो
हे प्रभू

पीरू बाबू की दोनों आंखों से निरंतर आंसू बह रहे थे और वे

चुपचाप आंखें मूदे हुए पड़े थे। आंसू पोंछने का भी प्रयास नहीं किया।

दीपा ने गीत बंद किया। पीरू बाबू ने आंखें खोलीं और बेटी को इशारे से पास बुलाया। कुर्सी समेत एकदम पास बुलाकर पाटी से सटकर बैठने को कहा उसे, और चंद्रमोहन को भी।

दोनों जब पास गए, बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "बेटा, तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हुआ, दुख इस बात का है; पर क्या करूं—कोई वश नहीं चला! भगवान की यही इच्छा थी! किंतु तुम दुखी मत होना, ऊपर वाले की बड़ी लंबी बांह है, और सुनो, आवेश में कोई निर्णय मत लेना, असत्य के आगे झुकना भी नहीं। तुम्हें कोई क्लेश नहीं होगा—यह मेरा आशीष है!…"

दीपा रो पड़ी।

"रोओ मत, यह रोने का अवसर नहीं है। मेरे मन को दुर्बल मत करो, गीत गाओ, मुझे विदा दो। मेरे जाने की वेला क्रमशः समीप आती जा रही है। गाओ, उत्फुल्ल मन से गाओ बेटा, मेरी आंखों में खुमारी छाने लगी है—और धीरे-धीरे तब तक गाती रहना जब तक मैं एकदम सो न जाऊं।…"

चंद्रमोहन ने घड़ी देखी—ठीक पौने चार बज रहे थे। ब्राह्म वेला आरंभ हो चली थी। वातावरण में एकदम शांति फैली हुई थी। एकदम धीमी लय में दीपा ने गीत गाना शुरू किया—

आगुनेर परशमणि छोआओ प्राणे
ए जीवन पुण्य करो…
ए जीवन पुण्य-करो…
ए जीवन पुण्य-करो…

ए जीवन पुण्य करो दहने दाने।
आमार एई देह खाने तुले धरो
आमार एई देवालय प्रदीप करो
निशिदिन आलोक शिखा ज्वलुक गाने।

आगुनेर परशमणि छोआओ प्राणे
आधरेर गाये गाये परश तव
सारा रात फोटक तारा नव नव।
नयनेरे दृष्टि हते घुचबे काला
ये खाने पड़बे से थाप देखबे आलो—
व्यथा मोर उठबे, जले ऊर्ध्व पाने।
आगुनेर परशमणि छोआओ प्राणे
ए जीवन पुण्य करो···

चार बजने मे पाच मिनट थे—दीपा गीत गाती जा रही थी। पीरू बाबू ने एक बार अपने दोनों नयन खोले। कमरे के चारो ओर देखा, फिर दीपा से बोले, "आमी चोलेन···।"

उन्होने आंखें मूद ली। यह क्या—दीपा रुक गई। पीरू बाबू को हिला-हिलाकर बोली, "बाबा···बाबा···!" कोई उत्तर नही। पीरूबाबू बेटी की आवाज सुनते हुए भी उत्तर देने मे असमर्थ थे, वे धीरे-धीरे चेतनाशून्य होते जा रहे थे।

"दीपा, अभी गीत गाओ, बाबा अभी हैं, गए नही।" लेकिन दीपा गा नही सकी। चुप—खामोश, दोनों हाथ की हथेलियां कसकर बाधे, खामोश हो, जाते हुए जनक को देखती रही।

"दीपा गाओ, चुप मत रहो, बाबा का आदेश है। मेरा कहना सुनो, गाओ, आगुनेर परशमणि छोआओ प्राणे···"

दीपा ने चंद्रमोहन की बाह झकझोरी। गंगाजल! बाबा तो बोलते नहीं। तभी पीरू बाबू की देह एक बार कांपी और वे शांत हो गए। देह संज्ञा-विहीन हो गई, पार्थिव शरीर रह गया। दीपा चीत्कार कर उठी। पीरू बाबू की देह पर गिर पडी। चंद्रमोहन भी अपने को रोक न सका। पांच-सात मिनट रो लेने के बाद उसने दीपा को संभाला। पिता के शव पर गिरी हुई दीपा को उठाते हुए बोला, "दीपा, रोओ नहीं, अब ये समय रोने का नही है, ढाढ़स रखने का है। ऐसी मृत्यु तो ऋषि-मनीषियों की ही होती है, बाबा का समय आ गया, वे चले गए और कहकर गए।" उसी के आंचल मे उसकी आखें पोछते हुए विफरती

केशवप्रसाद मिश्र

जन्म : १९२६ मे, ग्राम बलिहार, जिला बलिया (उत्तर प्रदेश) में। शिक्षा : एम. ए. (प्रयाग विश्वविद्यालय) ।
सम्प्रति, केन्द्रीय सरकार की नौकरी ।

प्रकाशित रचनाएं :

- समहुत (कहानी संग्रह)
- कोहवर की शर्त (उपन्यास)
- देहरी के आरपार (उपन्यास)
- काली दीवार (उपन्यास)

शीघ्र प्रकाश्य :

- महुआ और सांप (उपन्यास)
- रोशनी मौत है (उपन्यास)
- कोयला भई न राख तथा अन्य कहानियां (कहानी संग्रह)
- और तुलसी लग गयी (कहानी संग्रह)
- विकल्पहीन (कहानी संग्रह)